व्यवसाय वित्त और विपणन

कक्षा 12 के लिए पाठ्यपुस्तक

लेखक

पी. सी. जैन दीपिका मेहरा

हर्ष वर्मा मीनू नंद्राजोग

संपादक

पी.के. घोष चन्द्रशेखर शर्मा

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जुलाई 2003
श्रावण 1925

PD 5T MB

ISBN : 81-7450-210-6

एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.[illegible] [illegible]टी. कैंपस	108, 100 फीट रोड, होस्डेकेरे	नवजीवन ट्रस्ट भवन	सी.डब्लू.सी. कैंपस
[illegible] मार्ग	हेली एक्सटेंशन बनाशंकरी III इस्टेज	डाकघर नवजीवन	निकट : धनकल बस स्टॉप
नई दिल्ली 110 016	बैंगलूर 560 085	अहमदाबाद 380 014	पनिहटी, कोलकाता 700 114

प्रकाशन सहयोग

संपादन : मरियम बारा
उत्पादन : अतुल सक्सेना

आवरण एवं सज्जा

कल्याण बैनर्जी

रू. 30.00

(एन.सी.ई.आर.टी. वाटर मार्क 70 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।)

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसेट वर्क्स, 335 खजूर रोड, करोलबाग, नई दिल्ली 110 015 द्वारा मुद्रित।

एक अर्थपूर्ण विद्यालयीय पाठ्यचर्या का समाजोन्मुखी होना आवश्यक है जो शिक्षार्थी की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करे। *विद्यालयीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा - 2000* ने जिन रुचिकर एवं आवश्यक क्षेत्रों का विस्तार से वर्णन किया है; विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रम को विकसित करते समय उन्हें ध्यान में रखना आवश्यक होता है।

बारहवीं कक्षा का पाठ्यक्रम व्यवसाय प्रबंध दो सेमेस्टरों में बाँटा गया है। प्रबंध के सिद्धांतों और कार्यों का अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी को प्रबंध के प्रकार्यात्मक क्षेत्र से परिचित होना है। व्यवसाय वित्त और विपणन एक विशेष क्षेत्र है जहाँ विद्यार्थी वित्त प्रबंध के मूलभूत सिद्धांतों, पूँजी बाज़ार, विपणन प्रबंध और उपभोक्ता संरक्षण से परिचित हो सकेगा।

सभी व्यवसाय निर्णयों के वित्तीय निहितार्थ होते हैं, इसलिए वित्तीय प्रबंध व्यवसाय निहितार्थ के सभी पहलुओं को आकृष्ट करता है। इसका संबंध लाभकारी ढंग से कोष की प्राप्ति तथा निवेश से और लाभ के मालिकों में वितरण से है। व्यवसाय के लिए फंड पूँजी बाज़ार से प्राप्त किया जा सकता है जो लंबी अवधि के लिए वित्तीय स्रोत हैं जैसे- शेयर तथा ऋणपत्र और बैंकों तथा वित्तीय संस्थानों से ऋण प्राप्ति। पुस्तक में पूँजी बाज़ार पर विस्तृत चर्चा भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड द्वारा जारी विषय निर्देश के आलोक में की गई है। विपणन आवश्यकता से बाज़ार के उपक्रम को प्रभावित करता है। उनमें शामिल किया गया 'ग्राहकों की अवधारणा' एक दर्शन है जो उपभोक्ता के महत्त्व पर प्रभाव डालता है। उपभोक्ता संरक्षण महत्त्वपूर्ण हो गया है और चालू वर्ष में गतिविधियाँ तेज़ी से होने लगी हैं। पुस्तक में इन सबका विस्तार से वर्णन किया गया है।

प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक आज के जटिल गतिशील वातावरण में व्यावसायिक उद्यम को समझाने के लिए एक व्यावसायिक ढाँचा प्रस्तुत करती है। विषयवस्तु को वास्तविक परिस्थितियों से जोड़ा गया है तथा इसमें व्यावसायिक जगत से उदाहरण उद्धृत किए गए हैं। विषयवस्तु को अधिक समृद्ध बनाने के लिए व्यावसायिक पत्र-पत्रिकाओं से लेखों के उद्धरणों को अतिरिक्त रूप से कोष्ठकों में जोड़ा गया है। इससे विद्यार्थियों को विषयवस्तु एवं व्यावसायिक उद्यम के परिचालन तथा प्रकाशित एवं इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से प्राप्त समाचारों में पारस्परिक संबंध स्थापित करने में सहायता मिलेगी।

मैं लेखक समूह, जिन्होंने पांडुलिपि को विकसित किया है तथा पुनरावलोकन समिति के सदस्यों के योगदान के लिए उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् इस पाठ्यपुस्तक में सुधार हेतु विचारों एवं सुझावों का सदा स्वागत करेगी।

जगमोहन सिंह राजपूत
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

जुलाई, 2003
नई दिल्ली

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं। जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ:

जो सबसे गरीब और कमज़ोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा। क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा? यानि क्या उससे उन करोड़ों लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे हैं और आत्मा अतृप्त है?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है।

मो॰ क॰ गांधी

पी.के. घोष
प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), वाणिज्य विभाग
दिल्ली स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

आर.जी. सक्सेना
निदेशक
आर.सी. इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नौलजी
जिजिएसआईपी विश्वविद्यालय से संबधित
दिल्ली

पी.सी. जैन
रीडर, वाणिज्य विभाग
श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

चन्द्रशेखर शर्मा
अध्यक्ष, वाणिज्य विभाग
श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

हर्ष वी वर्मा
रीडर, फैकल्टी ऑफ मैनेजमैंट स्टडीज़
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

एम.पी. बंसल
प्रोफेसर, व्यवसाय प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

आर.के. कोठारी
प्रोफेसर, व्यवसाय प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

प्रदीप शर्मा
रीडर, व्यवसाय प्रशासन विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

उपेन्द्र कौशिक
प्राधानाचार्य, भारतीय विद्या भवन
विद्याश्रम, जयपुर

मीना गोयल
उप-प्रधानाचार्य
नव हिंद कन्या उ. मा. विद्यालय
न्यू रोहतक रोड़, नई दिल्ली

उषा शर्मा
पी.जी.टी., वाणिज्य
भारतीय विद्या भवन
विद्याश्रम, जयपुर

स्मिता भटनागर
पी.जी.टी., वाणिज्य
भारतीय विद्या भवन
विद्याश्रम, जयपुर

निधि माथुर
पी.जी.टी. वाणिज्य
भारतीय विद्या भवन
विद्याश्रम, जयपुर

नीता शिवहरे
पी.जी.टी., वाणिज्य
सवाय मान सिंह स्कूल, जयपुर

एस.के. बंसल
पी. जी. टी., वाणिज्य
कमर्शियल उ. मा. विद्यालय, दरियागंज, दिल्ली

इंद्र प्रकाश श्रीवास्तव
लेक्चरर, मेरी लुकर कॉलेज
कचहरी रोड, इलाहाबाद

सा. वि. एवं मा. शि. विभाग

शिप्रा वैद्या
लेक्चरर

मीनू नंद्राजोग (**समन्वयक**)
रीडर

विषय सूची

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्त्तव्य

अनुच्छेद 51क

मूल कर्त्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्त्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे,

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे,

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे,

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे,

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों,

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे,

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे,

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे,

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे, और

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊंचाइयों को छू सके।

व्यवसाय वित्त और विपणन

वित्तीय प्रबंध

पूंजी बाज़ार

विपणन प्रबंध

उपभोक्ता संरक्षण

वित्तीय प्रबंध

अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप :

- वित्तीय प्रबंध का अर्थ बता सकेंगे;
- वित्तीय प्रबंध के उद्देश्य को समझा सकेंगे;
- आधुनिक व्यवसाय में वित्त कार्य के महत्व को समझा सकेंगे;
- वित्तीय नियोजन के अर्थ एवं महत्त्व को समझा सकेंगे;
- पूंजी के ढांचे को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का अध्ययन कर सकेंगे;
- अति पूंजीकरण एवं अव पूंजीकरण के कारणों की व्याख्या कर सकेंगे;
- अति पूंजीकरण एवं अव पूंजीकरण में अंतर कर सकेंगे;
- स्थायी पूंजी एवं कार्यशील पूंजी को प्रभावित करने वाले तत्त्वों का वर्णन कर सकेंगे; तथा
- लाभांश संबंध में निर्णय के निर्धारक तत्त्वों का वर्णन कर सकेंगे।

वित्त के प्रति आकर्षण एवं उद्वेग को कैलीफोर्निया की उच्च तकनीकी कंपनी XYZ कार्पोरेशन की कहानी के द्वारा भली-भांति चित्रित किया जा सकता है। स्टीव किम यूरीपिक ओवर (Steve KimjYri Pikover) ने अपना पैसा लगाकर 1993 में कंप्यूटर कार्य जाल के लिए संचार उपकरणों को डिजाइन करने एवं विनिर्माण के लिए एक कंपनी की स्थापना की। कंपनी को 1995 की चौथी तिमाही तक कोई लाभ नहीं हुआ लेकिन इसके उज्ज्वल भविष्य की संभावनाओं ने अनेक नियोजकों को आकर्षित किया। ABC एसोसिएट्स, जो कि एक नए उपक्रमों को वित्त प्रदान करती है, ने इसमें 40 लाख डॉलर निवेश किए।

XYZ ने प्रस्ताव कर सामान्य अंशों को सार्वजनिक रूप से प्रथम बार 17 मार्च 1996 को बेचा। इसका प्रबंधन न्यूयॉर्क की एक निवेश बैंक कंपनी, मॉरगान स्टैनले कंपनी ने किया। अधिकृत रूप से अंशों को 26 डॉलर प्रति अंश से प्रस्तावित किया लेकिन शीघ्र ही यह 55 डॉलर हो गया। इससे कंपनी के अंशों का बाजार मूल्य 2.3 बिलियन डॉलर हो गया। 64.6 करोड़ अंश, जो मुख्य कार्यकारी अधिकारी स्टीव किम एवं उसके परिवार के लोगों के स्वामित्व में थे, की कीमत 360 मिलियन डॉलर हो गई। इसने उनके 1995 के 112,500 डॉलर के वेतन को बौना बना दिया। ABC एसोसिएट्स के लाभ 400 मिलियन डॉलर थे जो कुल निवेश पर 5000% वार्षिक आय थी। XYZ कार्पोरेशन की स्थापना एवं इसके पश्चात् इसके सार्वजनिक वित्तीयन से अन्य बहुतों को भी लाभ पहुंचा। 'दी लॉस एंजेल्स टाइम्स' की टिप्पणी थी कि कैलाबसास, कैलीफोर्निया, जहां XYZ स्थित है, में कंपनी की गतिविधियों एवं इसके मालिक की धन संपदा के कारण, नागरिकों को अधिक रोजगार के अवसर प्राप्त हुए है, तथा कर आधार बढ़ा है। रोजगार के ये अवसर एवं कर संबंधी लाभ कई गुणा हो जाएंगे यदि XYZ की सफलता के कारण

अन्य उच्च तकनीक वाली कंपनियां इस क्षेत्र में आती हैं। इसके अतिरिक्त ABC एसोसिएट्स ने जब XYZ में 40 लाख डॉलर निवेश किए तब वह अन्य निवेशकों का प्रतिनिधित्व कर रही थी जिनमें मुख्य पैंशन पाने वाले लोग थे, क्योंकि अवकाश ग्रहण करने पर इनके पास खर्च करने को काफी पैसा होता है। ये लोग इतना पैसा अर्जित कर सकते हैं। जितना कि कोई एक लाटरी खुलने पर अर्जित करता है। XYZ कार्पोरेशन की कहानी नई एवं दिन-प्रतिदिन स्थापित होने वाली कंपनियों के लिए एक अद्भुत उदाहरण हैं। कंपनियां समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप उत्पादों को डिजाइन करने एवं नए उत्पाद एवं सेवाओं के उत्पादन में निवेश करती हैं। जो ऐसी सफल वस्तुओं का विकास करते हैं जो लाभ कमा सकेंगी, वित्तीय संस्थाओं एवं अन्य नियोजकों, जो स्वामी बन जाते हैं, से अतिरिक्त वित्त जुटा पाते हैं। इस प्रकार का वित्तीयन कंपनियों को प्रचालन के विस्तार की अनुमति देता है जिससे समाज में कार्य के अवसर एवं स्वामियों के लिए धन का निर्माण होता है। कोका कोला एक महत्वपूर्ण कंपनी है जिसने अपने मुख्य कार्यकारी अधिकारी रॉबर्ट ग्वेज्वेता के नेतृत्व में 1981 से इसके स्वामियों के लिए 60 बिलियन डॉलर की संपत्ति पैदा करने के लिए इन चरणों का अनुकरण किया।

जैसा कि हम जानते हैं किसी व्यवसाय को चलाने के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। इसकी आवश्यकता सभी प्रकार की संपत्तियों के क्रम के लिए होती है। ये संपत्तियां वास्तविक हो सकती हैं जैसे मशीनें, फैक्टरियां, भवन कार्यालय अथवा अवास्तविक जैसे व्यापार चिह्न, पेटेंट, तकनीकी विशेषज्ञता आदि। इसी प्रकार से व्यवसाय के दिन-प्रतिदिन के कार्यकलापों का केंद्रबिंदु भी वित्त है। जैसे कि आपूर्ति का क्रय, बिलों का भुगतान, वेतन, ग्राहकों से रोकड़ एकत्रित करना। व्यवसाय की सफलता काफी हद तक इस पर निर्भर करती है कि कोषों को कितनी सावधानी से संपत्ति एवं क्रियाओं में लगाया जाता है एवं व्यवसाय के अंदर से अथवा बाहर से किस प्रकार से समय पर एवं कम लागत पर वित्त की व्यवस्था की जाती है। वित्त प्रबंध वास्तव में व्यवसाय के इन पहलुओं और समस्याओं से संबंधित होता है। वित्त प्रबंध के अध्ययन के प्रारंभ में दो केंद्रीय मुद्दों पर ध्यान देंगे: प्रथम वित्त प्रबंध क्या है ? द्वितीय, इसके क्या उद्देश्य हैं ?

अर्थ

वित्त प्रबंध का अर्थ समझने के लिए कल्पना करें कि आप नया व्यवसाय प्रारंभ करना चाहते हैं। चाहे व्यवसाय कोई भी हो, आप को निम्न प्रश्नों का उत्तर देना होगा :

(i) आप कौन-सा दीर्घ अवधि निवेश चुनेंगे। आप किस प्रकार का व्यवसाय करेंगे। आप कौन-सी मशीनरी उपकरण एवं भवन खरीदेंगे।

(ii) आप दीर्घ अवधि निवेश के लिए वित्त की व्यवस्था कैसे करेंगे। क्या आप इसके लिए ऋण लेंगे अथवा समता अंश जारी कर अन्य लोगों के साथ स्वामित्व में भागीदारी करेंगे।

(iii) दिन-प्रतिदिन के व्यावसायिक कार्यों के वित्त प्रवाह का आप किस प्रकार प्रबंधन करेंगे? ये वित्त प्रवाह हैं देनदारों से वसूली, लेनदारों का भुगतान, पर्याप्त नकद शेष रखना जिससे कि तरलता की न अधिकता हो और न ही कमी।

(iv) आप उन निवेशकों को क्या प्रतिफल के रूप में देंगे जिनके पास व्यवसाय के समता अंश हैं। यह आपको निर्णय लेना है कि आप लाभ के कुछ भाग को अथवा पूरे के पूरें लाभ को लाभांश के रूप में बांट देंगे।

अतः वित्त प्रबंध का संबंध धनराशि को कुशलता से प्राप्त करने एवं उनके आबंटन से है। परिचालन की शब्दावली में इसका संबंध कोषों के प्रवाह का प्रबंधन है तथा इसमें कोषों को प्राप्त करना, उनका दीर्घ

अवधि एवं छोटी अवधि की संपत्तियों में विनियोग करना, अर्जन को स्वामियों में बांटना सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में, वित्त का केंद्रबिंदु निवेश, वित्तीय एवं लाभांश के संबंध में निर्णय लेना है।

उद्देश्य

इससे पहले वर्ग में हम यह बता चुके हैं कि वित्त प्रबंध में दीर्घ अवधि संपत्तियों में निवेश, कार्यशील पूंजी, संपत्तियों के वित्तीयन आदि के संबंध में निर्णय लेना सम्मिलित है। व्यवसाय का बचाव एवं विकास इन निर्णयों की सूझ-बूझ पर निर्भर करता है। इसके लिए इस बात का स्पष्टीकरण अनिवार्य है कि इन निर्णयों से हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं। अर्थात् हम कह सकते हैं कि वित्त प्रबंधकों को वित्त प्रबंध के माध्यम से जिन उद्देश्यों को प्राप्त करना है उनके संबंध में स्पष्ट दृष्टिकोण होना चाहिए। उद्देश्य उस ढांचे का निर्धारण करता है। जिसके अंतर्गत वित्त संबंधी निर्णय लिए जाते हैं। वर्तमान संदर्भ में उद्देश्य शब्द अतिविशिष्ट एवं सीमित रूप में प्रयुक्त होता है। यह निर्णयों के आधार के लिए प्रयुक्त होता है अथवा वित्त प्रबंध में सम्मिलित विभिन्न निर्णयों के स्तर के रूप में।

किसी कंपनी का वित्त प्रबंध इसके स्वामियों अर्थात् अंशधारियों की ओर से निर्णय लेता है। उसे तो उन वित्त संबंधी निर्णयों को क्रियान्वित करना है जो अंततोगत्वा अंशधारकों के लिए लाभप्रद होंगे। अंश-धारकों को लाभ तब होता है जब अंशों/शेयरों की बाज़ार में कीमत बढ़ती है। वित्त संबंधी निर्णय अंशधारकों की दृष्टि से तभी कुशल माना जाएगा जब इससे शेयरों की कीमत में वृद्धि हो। और यदि मूल्यों में गिरावट आती है तो इसका अर्थ यह हुआ कि निर्णय कमजोर है। अतः वित्त प्रबंधन के उद्देश्यों को हम स्पष्ट रूप से बता सकते हैं जो इस प्रकार हैं :

वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य कंपनी के समता अंशों के वर्तमान मूल्यों को अधिकतम ऊंचाई तक ले जाना है। दूसरे शब्दों में, वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य कंपनी के स्वामियों अर्थात् अंशधारकों के धन को अधिकतम बनाना है।

सामान्यतः, अंशधारकों के लिए उपलब्ध लाभ में वृद्धि के साथ अंशों के मूल्यों में वृद्धि की संभावना रहती है। अथवा लाभ में कमी से मूल्य में कमी आती है। हम जानते हैं कि समता अंशधारी अवशिष्ट स्वामी होते हैं क्योंकि इनको भुगतान तब किया जाता है जब कर्मचारी, आपूर्तिकर्ता, ऋणदाता, लेनदार एवं अन्य वैध दावेदार आदि सभी के दावों का भुगतान कर दिया जाता है। हम समूहों में से यदि कोई भी भुगतान के बिना रह जाता है तो अंशधारकों को कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि शेयर धारकों को लाभ हो रहा है तो इसका स्वतः ही यह अर्थ है कि अन्य दावेदारों को भी लाभ हो रहा है।

अतः वित्तीय प्रबंध का लक्ष्य समता अंशों के मूल्यों को ऊंचे से ऊंचा ले जाना है। वित्त प्रबंधक निवेश के उन क्षेत्रों, वित्तीयन के माध्यमों, कार्यशील पूंजी के विभिन्न अवयवों के तरीकों की पहचान करेंगे जिनके कारण समता अंशों के मूल्यों में वृद्धि होगी। ध्यान देने योग्य बात है कि समता अंशों के अधिकतम मूल्य का अर्थ यह नहीं है कि वित्तीय प्रबंधक अंशों के मूल्यों के संबंध में छलकपट का सहारा लें। उसे देखना है कि स्वामियों के शेयरों के मूल्य अधिकतम हों। इसके लिए उसे ऐसे निर्णय लेने होते हैं जो कंपनी के विकास के लिए आवश्यक है तथा अधिकांश निवेशक उनका सकारात्मक मूल्यांकन करते हैं।

वित्त कार्य

वित्त कार्य, वित्त प्रबंध द्वारा लिए जाने वाले तीन प्रमुख निर्णयों से संबंधित होते हैं, ये हैं : (i) निवेश

संबंधी निर्णय; (ii) वित्तीयन संबंधी निर्णय; (iii) लाभांश संबंधी निर्णय।

(i) निवेश संबंधी निर्णय : निवेश संबंधी निर्णयों का संबंध उन संपत्तियों के सुविचारित चयन से है जिनमें कंपनी अपने कोषों का निवेश करना चाहती है। दीर्घ अवधि अथवा अल्प अवधि संपत्तियों में निवेश को पूंजी बजट एवं बाद वालों से जुड़े निर्णयों को कार्यशील पूंजी कहते हैं। एक व्यवसाय में वित्तीय साधनों के निवेश की आवश्यकता नए व्यवसाय की स्थापना एवं विस्तार तथा आधुनिकीकरण के लिए होती है। विस्तार में विभिन्न कार्य योजनाओं में निवेश करना होता है। आधुनिकीकरण में नए प्लांट, मशीन, भवन आदि पुरानों का स्थान ले लेती है।

इसका निर्णय विभिन्न उपलब्ध विकल्पों के ध्यानपूर्वक की गई वित्तीय समीक्षा के पश्चात् लिया जाता है। उदाहरण के लिए, एयर कंडीशनर विनिर्माताओं द्वारा प्रयोग में लाए जाने वाले कंप्रेशर के निर्माता कुछ नई मशीनें बनाना चाहते हैं। वह बहुत से मशीन निर्माताओं से सूचना प्राप्त करते हैं तथा अंत में दो प्रकार की मशीनों को पसंद करते हैं। जिनकी विशेषताएं, मूल्य एवं प्रचालन लागत अलग-अलग हैं। वित्त प्रबंधक दोनों ही की वित्तीय आवश्यकताओं का मूल्यांकन करेगा। इनके मूल्य, संभावित प्रचालन, लागत एवं संभावित नकद प्राप्ति के संदर्भ में वह उन मशीनों का चयन करेंगे जिनके संभावित आर्थिक लाभ अधिक हैं।

व्यवसाय में निवेश से संबंधित निर्णय बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसके कारण निम्नलिखित हैं ;

- यह दीर्घ अवधि के लिए होते हैं। इसलिए यह अपरिवर्तनीय हैं। एक बार क्रियान्वयन हो जाने के पश्चात् इनको इस्तेमाल में न लाने पर कंपनी को काफी हानि उठानी पड़ती है।
- .इनमें बड़ी राशि व्यय करनी होती है।
- इन पर कंपनी की लाभ अर्जन क्षमता एवं उसका भविष्य निर्भर करता है।

(ii) वित्तीयन संबंधी निर्णय : वित्तीयन संबंधी निर्णय का संबंध विभिन्न वित्त स्रोतों के सापेक्षिक अनुपात में संयोजन से है। इस निर्णय तक पहुंचने से पहले वित्त प्रबंधक, वित्त के विभिन्न स्रोतों के लाभ एवं हानियों को समझता है। व्यवसाय वित्त का एक स्रोत अंशधारियों का कोष है जिनको समता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूंजी एवं संचित लाभ के रूप में बांटा जा सकता है। बाहर से उधार लेने में ऋण पत्र, वित्तीय संस्थानों से ऋण लेना सम्मिलित है।

ऋण कोष एवं स्वामी कोष किस अनुपात में होने चाहिए इसका निर्णय व्यवसाय ने लेना होता है। ऋण कोषों को ब्याज सहित लौटाना होता है और मूल धन और ब्याज के भुगतान नहीं होने की जोखिम भी होती है। स्वामित्व प्रतिभूतियों जैसे समता अंश को मूल राशि अथवा लाभांश के भुगतान का कोई निश्चित वायदा नहीं होता है इसलिए इनमें कोई जोखिम नहीं होती है। अधिकांश व्यवसाय अपनी क्रियाओं के लिए ऋण कोष एवं अंशधारियों के कोषों को एक विवेकपूर्ण अनुपात में लगाते हैं। ऋण कोष एवं अंशधारकों की पूंजी, दोनों .के मिश्रण का उपयोग करना तथा इनके बीच क्या अनुपात होगा, इसे वित्तीयन निर्णय कहते हैं।

(iii) लाभांश से संबंधित निर्णय : लाभांश से संबंधित निर्णय, लाभों के बंटवारे के निर्णय से जुड़ा है। दो प्रमुख विकल्प होते हैं या तो अर्जित लाभ को संचित कर लिया जाए अथवा इन्हें अंशधारकों में बांट लिया जाए। जब अंशधारक व्यवसाय में राशि का निवेश करते हैं तो वह बदले में लाभांश की

अपेक्षा रखते हैं। इसका निर्णय व्यवसायी को लेना होता है कि कितने लाभ को लाभांश के रूप में बांट दिया जाए एवं कितने लाभ का पुनर्विनियोग के लिए संचय कर लिया जाए। उच्च लाभांश के भुगतान से अंशधारक संतुष्ट होंगे लेकिन फिर पुनर्विनियोग के लिए कम बचा रहेगा। इससे व्यवसाय का विकास धीमी गति से होगा। इसलिए यदि किसी कंपनी में पुनर्विनियोग के अवसर हैं जिसके कारण भविष्य में शेयरधारकों को ऊंची दर से लाभांश का भुगतान किया जा सकता है तो कंपनी लाभ का संचय कर लेगी एवं उसका पुन: निवेश कर देगी। अनुभव यह बताता है कि अधिकांश रूप से अंशधारक लाभांश नकद में प्राप्त करना पसंद करते हैं।

वित्तीय नियोजन

यदि किसी कार्य को कुशलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से करना चाहते हैं तो उसके लिए नियोजन आवश्यक है। नियोजन का अर्थ है पहले से ही यह तय कर लेना कि भविष्य में आप क्या कदम उठाएंगे तथा लक्ष्यों की पूर्ति के लिए क्रियाओं तथा व्यक्ति एवं सामूहिक प्रयत्नों को कैसे संगठित करेंगे। इसी प्रकार से व्यवसाय के वित्तीय मामलों के प्रबंधन में वित्तीय नियोजन सम्मिलित है।

अर्थ

वित्तीय नियोजन का अर्थ पहले से ही यह निश्चित करना है कि जो कोष आपके हाथ में है, उनमें से कितना व्यय किया जाए और किस पर व्यय किया जाए। वित्तीय नियोजन का प्रारंभ विक्रय के अनुमान से होता है। व्यावसायिक संगठन यह अनुमान लगाते हैं कि भविष्य में वह कितना विक्रय कर सकेंगे। यह निर्भर करता है कि विक्रय के लक्ष्य कहां तक किए जा चुके हैं तथा अर्थव्यवस्था की क्या परिस्थितियां हैं। यदि भविष्य उज्ज्वल है और बिक्री में काफी वृद्धि की संभावना है तो कंपनी उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना चाहेगी। इसके लिए भारी पूंजीगत उपकरणों की आवश्यकता होगी। इसके लिए अतिरिक्त दीर्घ अवधि ऋणों की व्यवस्था की तैयारी करनी होगी। उत्पादन में वृद्धि एवं विक्रय में वृद्धि होने पर कच्चे माल एवं तैयार माल का अधिक स्टॉक रखना होता है तथा लेनदारी भी बढ़ जाती है। इसके लिए अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। कंपनी को पहले से ही यह निर्णय लेना होता है कि वह कार्यशील पूंजी के लिए एवं दीर्घ अवधि संपत्तियों के लिए धन कहां से जुटाएगी।

व्यवसाय की कोष संबंधी आवश्यकता का अनुमान लगाने एवं कोषों के स्रोतों का निर्धारण करने की प्रक्रिया को वित्तीय नियोजन कहते हैं। इस प्रकार से वित्तीय नियोजन के दो पहलू हैं : (i) चल एवं स्थायी संपत्ति एवं भविष्य के विस्तार कार्यक्रम योजना के लिए कितनी पूंजी की आवश्यकता है, एवं (ii) यह पूंजी कहां से आएगी। यह व्यवसाय में आंतरिक रूप से पैदा हो सकती है या फिर ऋण, क्षमता अथवा दोनों बाह्य स्रोतों से जुटाई जा सकती है। वित्तीय नियोजन में एक निर्धारित समय के लिए व्यवसाय के विकास निष्पादन, निवेश एवं वित्त की आवश्यकता को ध्यान में रखा जाता है। वित्तीय नियोजन सामान्यत: 3 से 5 वर्ष के लिए किया जाता है।

वित्तीय नियोजन का क्षेत्र व्यापक होता है तथा इसमें दीर्घ अवधि विकास निवेश एवं वित्त संबंधी निर्णय सम्मिलित होते हैं। यह पूरी तरह से पूंजीगत व्यय कार्यक्रमों एवं ऋण क्षमता समिश्रित सहित के सापेक्षित भाग के निर्धारण पर केंद्रित होता है। क्योंकि अल्प अवधि नियोजन भी आवश्यक है इसलिए अल्प अवधि योजना अर्थात् बजट तैयार किए जाते हैं। बजट बनाना

अथवा लाभ नियोजन एक अल्पावधि वित्तीय योजना है जिसमें एक वर्ष अथवा उससे कम अवधि के लिए विस्तृत कार्य योजना सम्मिलित है। अर्थात् एक निश्चित कार्य एवं निश्चित समय के लिए अर्जित आय एवं व्यय बजट में दिखाए जाते हैं।

वित्तीय नियोजन के महत्त्व

वित्तीय नियोजन के महत्त्व यहाँ संक्षिप्त रूप से दिया जा रहा है:

(i) यह कार्य संबंधी क्रियाओं की जटिलताओं के परिणामस्वरूप होने वाली बर्बादी से बचाव प्रबंध की सहायता करता है।

(ii) इसके कारण ऐसी नीति एवं प्रक्रियाएं प्राप्त होती हैं जिसके कारण व्यावसायिक इकाई के विभिन्न कार्यों के बीच घनिष्ट सहयोग संभव हो पाता है।

(iii) यह कंपनी को भविष्य के लिए तैयार करने में सहायता प्रदान करती है।

(iv) इसके कारण सभी वित्तीय इकाइयों के संबंध जाने जाते हैं, इसीलिए उच्च प्रबंध को विस्तृत एवं अधिक समय लेने वाली प्रक्रिया से छुटकारा मिल जाता है।

(v) इसके कारण भ्रांति एवं समय, ख्याति तथा वित्तीय संसाधनों की बर्बादी से बचाव हो जाता है।

(vi) व्यावसायिक उत्पादन एवं वितरण कार्यों की सफलता एवं असफलता वित्त संबंधी निर्णयों पर निर्भर करती है।

(vii) इससे अनिश्चितता को कम करने एवं व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयत्नों को समूचित निर्देशन के लिए एक विस्तृत कार्य योजना प्राप्त होती है।

पूंजी ढांचा – अर्थ एवं निर्धारक तत्व

वित्तीय प्रबंध से संबंधित महत्त्वपूर्ण निर्णयों में से एक वह वित्तीय निर्णय है जो व्यवसाय के वित्तीय स्वरूप से संबंधित है। व्यवसाय में इसका निर्णय लिया जाता है कि संसाधनों को कैसे जुटाया जाए? वित्त के मुख्य दो स्रोत होते हैं– अंशधारी कोष एवं ऋणकोष। अंशधारी कोष में क्षमता अंश पूंजी, पूर्वाधिकार अंश पूंजी तथा संचय एवं बचत सम्मिलित है। ऋण कोष में ऋणपत्र एवं दीर्घ अवधि ऋण आते हैं। कंपनी की संपत्तियों का क्रय करने के लिए स्वामीगत पूंजी अथवा ऋणगत पूंजी का उपयोग किया जा सकता है। दीर्घ अवधि वित्त स्रोत अर्थात् क्षमता एवं पूर्वाधिकार अंशपूंजी एवं संचय तथा बचत, ऋण पत्र एवं दीर्घ अवधि ऋण के सन्निकट

दीर्घ अवधि वित्तीय नियोजन

1995 में क्रिसलर कॉर्पोरेशन का अधिग्रहण, क्योंकि इससे अंशधारकों में से बड़ी संख्या का यह मानना था कि दीर्घ अवधि वित्तीय योजना इसकी व्यावसायिक योजना से मेल नहीं खा रही थी। क्रिल कैर्कोवियन, जिसके पास क्रिसलर के 14 प्रतिशत शेयर थे, का विश्वास था कि कंपनी के आर्थिक विक्रय एवं लागत में कमी की धारणा का अर्थ था कि कंपनी और अधिक राशि उधार ले सकती थी और अपने सामान्य स्टॉक के पुनः क्रय कार्यक्रम को और तेज कर सकती थी। क्रिसलर के प्रबंधकों ने अधिग्रहण की धमकी से सफलतापूर्वक बचाव किया जबकि विवाद के कारण उन्हें अपने भविष्य की धारणा एवं योजना पर पुनर्विचार के लिए बाध्य होना पड़ा। व्यावसायिक प्रेस इस विवाद ने जितना ध्यान आकर्षित किया यदि वह इसके कारण हुआ व्यवधान किसी दिशा की ओर इंगित करते हैं तो कह सकते हैं कि विवाद ने शायद कंपनी के प्रबंधन से उनका ध्यान हटाया। क्रिसलर का अनुभव यह प्रकट करता है कि वित्तीय नियोजन मात्र लेकवाक्रम की कवायद से भी कुछ ऊपर है जिसके कोई गंभीर रणनीति संबंधित परिणाम नहीं हैं।

स्रोत: बिजिनेस वर्ल्ड

मिश्र को कंपनी का पूंजी ढांचा कहते हैं। पूंजी ढांचे का अर्थ है – व्यवसाय परिचालन के वित्तीय प्रबंधन के लिए ऋण एवं क्षमता का एक विशेष अनुपात में उपयोग। वित्त का अधिकतम लाभ उठाने के लिए ऋण एवं क्षमता में एक सही अनुपात की आवश्यकता होती है। पूंजी ढांचा माना जाएगा, जबकि ऋण एवं समता में अनुपात इस प्रकार का है कि इससे अंश की अंशधारक के लिए मूल्य में वृद्धि होगी। यह किसी कंपनी की पूंजी ढांचा श्रेष्ठतम होगा इसे परिभाषित करना बहुत कठिन है। मूलत: ऋण एवं समता में उचित मिश्रण के कारण अंशधारक के अंशों के बाज़ार मूल्य में वृद्धि होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि पूंजी ढांचे से जुड़े सभी निर्णयों को अंशधारकों के धन में वृद्धि पर जोर देना चाहिए।

उचित पूंजी ढांचे के लक्षण

वित्त से संबंधित अथवा पूंजी ढांचे से संबंधित निर्णय एक महत्त्वपूर्ण प्रबंधकीय निर्णय है। पूंजी ढांचे की संरचना इस प्रकार से की जानी चाहिए कि इसके अंशधारियों के हित एवं कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखा जाए। एक उचित पूंजी ढांचे की कुछ विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं :

(i) प्रतिफल : पूंजी ढांचा इस प्रकार का हो कि अंशधारकों को अधिकतम प्रतिफल मिले।

(ii) जोखिम : ऋण पर निर्भरता से कंपनी एवं अंशधारक दोनों के जोखिम में वृद्धि होती है।

(iii) लोच पूर्णता : पूंजी ढांचे के तत्त्व समता एवं ऋण के अनुपात में कंपनी के लिए परिवर्तन संभव होना चाहिए।

(iv) क्षमता : कंपनी की, दीर्घ अवधि ऋण एवं इस पर ब्याज के भुगतान की क्षमता होनी चाहिए।

(v) नियंत्रण : पूंजीगत ढांचा में अंशधारकों का नियंत्रण बना रहना चाहिए। यदि ऋण अधिक मात्रा में होगा तो नियंत्रण अंशधारकों के हाथ से ऋण पत्रधारियों के पास चला जाएगा।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि ऐसा कोई गणितीय फॉरमूला नहीं है जो ऋण एवं समता के अनुपात निर्धारित कर सके। ऐसा उचित पूंजी ढांचे से संबंधित निर्णय लेने से पहले कई तत्त्वों का ध्यान रखना पड़ता है।

वित्तीय उत्तोलन : जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कंपनी के पूंजी ढांचे में ऋण पूर्वाधिकार अंश अथवा समता अंश सम्मिलित होते हैं। ऋण, ऋण-पत्र एवं दीर्घ अवधि ऋण, जिन पर निश्चित दर से ब्याज दिया जाता है, के रूप में होते हैं। पूर्वाधिकार अंशों पर भी निश्चित दर से लाभांश दिया जाता है लेकिन तभी जबकि कंपनी को लाभ हो। क्षमता अंशधारियों का, ब्याज एवं कर का भुगतान करने के पश्चात् जो बच जाता है उस पर अधिकार होता है। क्षमता अंशों पर लाभांश की दर निश्चित नहीं होती तथा यह कंपनी की लाभांश नीति पर निर्भर करती है। पूर्वाधिकार अंशों पर एवं ऋण प्रपत्रों पर प्रतिफल निश्चित दर से होता है इसीलिए इन्हें निश्चित प्रतिफल / ब्याजदर वाली प्रतिभूति कहते हैं। समता को परिवर्तनशील प्रतिफल प्रतिभूति कहते हैं क्योंकि इन पर लाभांश प्रतिवर्ष बदलता रहता है।

अंशधारकों की आय (प्रति शेयर आय) में वृद्धि को ध्यान में रखते हुए पूंजी ढांचे में ऋण एवं पूर्वाधिकारी अंशों का समता अंशों के साथ उपयोग वित्तीय उत्तोलन या पूंजी मिलान अथवा समता पर व्यापार कहते हैं। ऋण जुटाने एवं ऋणपत्र बेचने के लिए कंपनी समता अंशों को आधार के रूप में प्रयोग करती है अर्थात् वह क्षमता का व्यापार कर रही है इसीलिए इसे क्षमता पर व्यापार नाम दिया गया है।

जैसे आवश्यकता से कम शक्ति द्वारा किसी भारी चीज को उठाने के लिए उत्तोलक का उपयोग किया जाता है, इसी प्रकार से निश्चित प्रतिफल वाली प्रतिभूतियों, कर जैसे– ऋण, पूर्वाधिकारी अंश का उपयोग, व्यवसाय का परिचालन आय में वृद्धि के बिना

समता अंशधारियों की आय एवं प्रतिफल में वृद्धि के लिए किया जाता है। इसीलिए पूंजी ढांचे में ऋण पूंजी एवं पूर्वाधिकार पूंजी का उपयोग वित्तीय उत्तोलन कहलाता है। वित्तीय उत्तोलन अथवा पूंजी मिलान के अर्थ को समझने के पश्चात् आइए देखें कि पूंजी मिलान पूंजी दंतिकरण किस प्रकार से कार्य करता है।

इनफोटेक लिमिटेड का उदाहरण लें जिसकी समस्त पूंजी समता पूंजी है तथा इसके पूंजी ढांचे में ऋण कोष सम्मिलित नहीं है। इसके शेयर वर्तमान में 40 रु. प्रति शेयर की दर से बेचे जा रहे हैं। इसके 10,000 शेयर हैं। इसलिए समता अंशों का मूल्य 4,00,000 रु. हुआ। इनफोटेक का मुख्य वित्त अधिकारी पूंजी ढांचे में ऋण पूंजी को सम्मिलित करने पर विचार कर रहा है। वह 2,00,000 रु. ऋण पत्रों के निर्गमन द्वारा जुटाना चाहता है तथा इस प्रकार से प्राप्त राशि को समता पूंजी को लौटाने के लिए प्रयोग करना चाहता है। उन्होंने यह भी पाया कि ऋण पत्र पूरी तरह प्रार्थित हों जिसके लिए 8% की दर से ब्याज देना होगा। 8% के ऋण पत्रों के पश्चात् पूंजी ढांचे में 50% ऋण गत पूंजी एवं 50% समता अंशपूंजी होगी अर्थात् ऋण समता अनुपात 1:1 होगा। सरलता के लिए हमने करों को छोड़ दिया है।

प्रस्तावित पूंजी ढांचे के प्रभाव को जांचने के लिए, इनफोटेक के मुख्य वित्त अधिकारी ने यह जानना चाहा है कि इसका कंपनी के स्वामियों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसके लिए उसने प्रति अंश आय एवं समता पर प्रत्याय की गणना की। (तीन विभिन्न स्थितियों में ऋण कोष को प्रयोग करने से पहले एवं प्रयोग करने के पश्चात्)। ये परिस्थितियां हैं : मंदी, साधारण स्थिति एवं तेजी।

संपूर्ण	**समता** मंदी	**पूंजी** सामान्य	**ढांचा** तेजी
आय	20,000 रु.	40,000 रु.	60,000 रु.
अंशधारियों को उपलब्ध आय अथवा शुद्ध आय	20,000	40,000	60,000
शेयरों की संख्या	10000	10000	10000
प्रति अंश आय (शुद्ध आय / अंशों की संख्या)	2	4	6
समता पर प्रत्याय (शुद्ध आय / समता मूल्य)	5%	10%	15%

पूंजी ढांचा जिसमें ऋण एवं समता सम्मिलित हैं

आय 20000 रु.	40000 रु.	60000 रु.	
ब्याज 16000 रु.	16000 रु.	16000 रु.	
अंशधारियों की आय अथवा शुद्ध आय	24000 रु.	24000 रु.	44000 रु.
अंशों की संख्या	5000	5000	5000
प्रति अंश आय	.80	4.8	8.8
(शुद्ध आय / अंशों की संख्या	2%	12%	22%
समता पर प्रत्याय			
(शुद्ध आय / समता मूल्य)			

यदि अर्थव्यवस्था में मंदी है तो ब्याज एवं कर से पहले संभावित आय (EBIT) 20,000 रु. होगी। सामान्य परिस्थिति में संभावित EBIT 40,000 रु. और तेजी में यह 60,000 रु. होगी।

यदि कंपनी ऋणगत पूंजी का उपयोग नहीं करती है तथा इसका EBIT स्तर 2000 रु. पहुंच जाता है तो समता अंशधारकों की 5% की प्रत्याय तथा प्रति अंश 2 भी हो, EBIT के इस स्तर पर कंपनी के स्वामियों के लिए ऋण सहायक नहीं होंगे। वास्तव में उनकी प्रत्याय घटकर 2% रह जाएगी तथा प्रति अंश आय मात्र 80 पैसे। इसके घटित होने का कारण स्वाभाविक है। जब EBIT 20,000 रु. है तो नियोजित राशि पर आय 5% है जबकि समता पूंजी, वित्त का एक मात्र स्रोत है। ऋणगत पूंजी के प्रयुक्त होने का अर्थ है कि कंपनी ऐसे कोष का उपयोग कर रही है जिस पर यह 8% का भुगतान कर रही है जबकि वह इस पर मात्र 5% की आय प्राप्त कर रही है। अत: अधिक खर्चीले ऋण लेने के परिणामस्वरूप समता प्रत्याय एवं प्रति अंश आय दोनों में कमी आती है। कंपनी यदि समता पूंजी का ही उपयोग करती है तो 40,000 रु. EBIT होने पर प्रत्याय 10% होगी। से आय अर्जित करेगी कि जिस पर यह 8% का भुगतान करेगी। वित्तीय मिश्रण में परिवर्तन कर यदि कम खर्चीले ऋण का प्रयोग किया जाता है तो इससे समता अंशधारियों को अतिरिक्त लाभ होगा।

यदि संभावित EBIT 60,000 रु. है तब भी यही कहानी दोहराई जाएगी। ऋण कोष के उपयोग से अंशधारकों को लाभ होगा क्योंकि कंपनी को 20% से प्रतिफल प्राप्त हो रहा है। ऋण कोष, जिस पर कंपनी 8% का भुगतान करेगी, के कारण प्रत्याय की दर एवं प्रति अंश आय में क्रमश: 22% एवं 8.8 रु. की अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी होगी।

उपर्युक्त विश्लेषण से यह परिणाम निकलता है कि वित्तीय उत्तोलन से समता अंशधारियों को तभी लाभ होगा जबकि स्थिर प्रतिफल प्रतिभूतियां कम खर्चीली होंगी।

इन गणनाओं का एक और पहलू भी है। यदि कंपनी ऋण नहीं लेती है तो समता पर प्रत्याय में इतना परिवर्तन नहीं होगा जितना कि ऋण लेने पर होगा। सारणी से यह स्पष्ट है कि सामान्य आर्थिक परिस्थिति में समता नियोजक की यदि पूरी पूंजी ढांचे का एक मात्र भाग समता पूंजी हो तो 4 रु. प्रति अंश से आय होगी। यदि EBIT में 20,000 रु. की वृद्धि होती है अर्थात् 50% तो प्रति अंश आय (EPS) में भी 50% की वृद्धि होगी और यदि मंदी के कारण EBIT में 50% की कमी आती है तो EPS में भी 50% की कमी आ जाएगी। ऋण लेने पर EPS में 50% की

टाइटन उद्योग - ऋण समता अनुपात

खर्चे एवं अवक्षयण में वृद्धि के कारण लाभ पिछले वर्ष के 23.48 करोड़ रुपए से घटकर 13.9 करोड़ रुपए आ गया। यदि 52 सप्ताह के इसके उच्चतम/न्यूनतम मूल्य 89 रु./29 रु. पर नजर डालें तो पाएंगे कि शेयर बाजार में कंपनी के शेयरों में कुछ उछाल आया। वर्तमान में यह लगभग 53 रु. पर बोला जा रहा है। विश्लेषणकर्ता का मानना है कि बाजार में तुरंत भविष्य की संभावनाएं धूमिल हैं। पिछले दशक में टाइटन के विकास के लिए लगभग पूरा धन ऋण लेकर जुटाया गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि उच्च ऋण-समता में ऋण से कोष जुटाया गया है। इसका परिणाम उच्च ऋण समता अनुपात के रूप में सामने आया। प्रबंध की योजना अंशधारकों को नई समता पूंजी एकत्रित करना है जिससे कि स्थिति विवरण के अनुपात को कुछ राहत मिल सके।

स्रोत: बिजिनेस इंडिया

गिरावट होगी लेकिन EPS में यह परिवर्तन EBIT में परिवर्तन से कहीं अधिक होगा। यदि सामान्य स्थिति में बनी रहती है तो पूंजी ढांचे का 50% भाग ऋण कोष के होने पर EPS 4.8 रु. होगी। EBIT 50% वृद्धि के साथ यदि 60,000 रु. हो जाती है तो EPS में 83% की होकर यह 4.8 रु. होगी। EBIT में 50% से गिरावट आने पर EPS में 83% की गिरावट आएगी।

इससे क्या परिणाम निकलता है ? स्थायी प्रतिफल वाली प्रतिभूतियों का उपयोग अधिक होने पर समता स्वामियों को मिलने वाले प्रतिफल में बड़ी मात्रा में अंतर आएगा। अधिक अंतर का अर्थ है अधिक जोखिम।

इस प्रकार से वित्त उत्तोलन के कंपनी पर दो प्रभाव पड़ते हैं : प्रथम, स्थायी प्रतिफल वाली प्रतिभूतियों के होने पर समता निवेश पर प्रत्याय में वृद्धि तभी होगी जबकि समता पर प्रत्याय की तुलना में स्थायी प्रतिफल की नीची दर पर आवश्यकता हो। इसको दूसरे विधि से कह सकते हैं कि सस्ती दर की स्थायी प्रतिफल वाली प्रतिभूतियों के होने पर समता पर प्रत्याय एवं प्रति अंश आय में वृद्धि होगी। दूसरे, यदि स्थायी प्रतिफल वाली प्रतिभूतियों का उपयोग करते हैं तो समता नियोजकों का जोखिम बढ़ जाएगा। अर्थात् EBIT में यदि कोई भी परिवर्तन होता है तो EPS एवं समता पर प्रत्याय (ROE) दोनों में भारी परिवर्तन होगा।

पूंजी ढांचे के निर्धारक तत्व

किसी कंपनी के पूंजी ढांचे का निर्धारण करने के लिए विभिन्न स्रोतों के अनुपात का निर्णय लेना होता है। इस निर्णय को प्रभावित करने वाले कुछ तत्त्व होते हैं। इनका वर्णन नीचे किया गया है :

(i) वित्तीय उत्तोलन : पूंजी ढांचे के निर्धारण का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व वित्तीय उत्तोलन अथवा पूंजी मिलान का कंपनी के स्वामियों पर प्रभाव है। एक वित्त प्रबंधक को इसकी विस्तृत जांच कर लेनी चाहिए कि प्रस्तावित वित्तीय मिश्रण किस प्रकार से स्वामियों के जोखिम एवं प्रत्याय को प्रभावित करेगा।

ऋण एवं ऋण पत्रों के साथ जोखिम का तत्त्व जुड़ा है क्योंकि इन पर ब्याज का भुगतान करना ही होगा, चाहे कंपनी को लाभ होता है अथवा नहीं होता है। पूर्वाधिकार अंश में जोखिम कम है क्योंकि इन पर निश्चित दर से लाभांश दिया जाता है परंतु यह कंपनी के लाभ में से दिया जाता है। कंपनी की दृष्टि से देखें तो समता अंश जोखिम रहित होते हैं। कंपनी कितना वित्त उत्तोलन करती है यह इस पर निर्भर करेगा कि कंपनी कितना जोखिम उठाना चाहती है। यदि ऋण पत्र एवं पूर्वाधिकारी अंशों की संख्या अधिक है तो इसका अर्थ होगा कि समता अंशधारकों के प्रतिफल में वृद्धि होगी परंतु साथ ही जोखिम में भी वृद्धि हो जाएगी। इसीलिए पूंजी ढांचे की संरचना वित्त उत्तोलन एवं जोखिम पर निर्भर करती है। वित्त उत्तोलन के उपयोग का मुख्य उद्देश्य अंशधारकों के प्रतिफल में अथवा प्रति अंश आय में वृद्धि करना है। यह तभी संभव है जबकि ऋण ब्याज की दर निवेश पर प्रत्याय की दर से कम हो। कंपनी की आय एवं ऋण की लागत अर्थात् ब्याज का अंतर अंशधारियों में बांटा जाता है जिससे उनकी प्रति अंश आय में वृद्धि होती है। प्रति शेयर आय में तभी वृद्धि होगी जबकि पूर्वाधिकार अंशों पर लाभांश निश्चित होता हैं।

जब ऋण कोष एवं पूर्वाधिकार पूंजी, पूंजी ढांचे के अंग बन जाते हैं तो उत्तोलन प्रभाव बढ़ जाता है। इसके दो कारण हैं :

(i) निवेश पर प्रत्याय की दर ऋणों पर ब्याज एवं पूर्वाधिकार अंश पूंजी पर लाभांश की दर से ऊंची होती है।

(ii) ऋण पर दिए जाने वाले ब्याज को कर निर्धारण के लिए आय में से घटाया जाता है।

कंपनियां यदि ऋण का अधिक उपयोग करती हैं अर्थात् उच्च उत्तोलन है तो अंशधारियों की पूंजी पर प्रतिफल में वृद्धि होगी। यह तभी संभव है जबकि कंपनी की ब्याज एवं कर से पूर्व की आय (EBIT) उच्च स्तरीय है। कंपनी वित्तीय प्रबंध की वैकल्पिक पद्धतियों को ध्यान में रख सकती है तथा निर्णय लेने से पहले इनके प्रति अंश पर आय के प्रभाव का अध्ययन एवं विश्लेषण करना आवश्यक है।

ऋण पूंजी को पूंजी ढांचे का भाग बनाने की एक ही हानि है और वह है इसमें निहित वित्तीय जोखिम एवं दिवालिया होने का भय। भले ही कंपनी पर्याप्त लाभ नहीं कमा रही है, तब भी ब्याज को तो देना ही होगा। साधारणतया कंपनी की संपत्तियों पर ऋण पत्रधारकों का अधिकार होता है तथा वह अपनी ऋण राशि एवं ब्याज की वसूली के लिए कंपनी पर मुकदमा कर सकते हैं। इस प्रकार, यदि ऋणगत पूंजी अधिक मात्रा में है तो दिवालया हो जाने का भय बना रहता है।

वित्तीय जोखिम से बचा जा सकता है यदि ऋण न लेकर केवल समता पूंजी से ही व्यवसाय की वित्त आवश्यकताओं को पूरा कर लिया जाए। इसमें कोई

पटनी कंप्यूटर प्रणाली

1996 में 80 करोड़ की कंपनी में 2001 तक औसतन 53% की दर से विकास हुआ और 2002 इसके 900 करोड़ रुपए को पार करने की संभावना है।

कंपनी की पुन: संरचना एक महत्त्वपूर्ण कार्य रहा होगा लेकिन उतना ही महत्त्वपूर्ण कार्य स्वामित्व के निजी समता ढांचे में परिवर्तन है। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण अन्य प्रतियोगी जैसे– सत्यम कंप्यूटर सिस्टम, एच. सी. एल. टैक्नोलॉजीस, वि टैक्नोलॉजीस, एवं इनफोसिस में सार्वजनिक वित्त का निवेश है जिसके कारण यह आगे बढ़ सके। इसलिए नरेन ने पहला कदम यह उठाया कि उसने PCS के दारों और निर्मित स्वामित्व को भंग कर दिया। आप एक मुख्य जनक कंपनी को सार्वजनिक नहीं बना सकते। जब तक कि आप निजी पूंजी को बाहर नहीं करेंगे तब तक आप बाहर से लोगों को नहीं लाना चाहेंगे।

उसने कंपनी की सार्वजनिक प्रस्तावना के लिए मैरिल लिंच को सलाहकार के रूप में लाने का निर्णय लिया। लेकिन तब तक टेक्नोलॉजी शेयरों की कीमत में भारी गिरावट आ चुकी थी तथा बाजार में मांग भी नहीं थी। मैरिल लिंच ने अपनी नियुक्ति को गंभीरता से लिया और उसने एक विकल्प ढूंढ लिया।

हमने यह सोचा कि अंशों को सार्वजनिक रूप से बेचने से अच्छा तो यह रहेगा कि इस समय निजी समता पूंजी जुटा ली जाए। पटनी कंप्यूटर सिस्टम (PCS) के पास निजी निवेश को आकर्षित करने के लिए पर्याप्त विश्वसनीयता थी, अर्थात् इसके पास बड़ा आकार, प्रमाणित विकास का इतिहास एवं स्थायी उपभोक्ता वर्ग था। निजी निवेश कंपनी के विकास में सहायक होगा तथा उचित समय पर बड़ी मात्रा में सार्वजनिक निवेश बनाएगा। छोटी मात्रा में सार्वजनिक निवेश को आमंत्रित करने से बड़े निवेशक नहीं आ पाते। बड़े निवेशक बड़ी मात्रा में निवेश को प्राथमिकता देते हैं।

नरेन एवं PCS के अन्य निर्देशकों ने यह सिफारिशें स्वीकार कर लीं तथा निजी समता कोष के निवेश को मान लिया। यह मात्र संयोग ही था कि General Atlantic LLC जो निजी समता निवेश के क्षेत्र में विश्व में अग्रणी कंपनी है, जिसने 60 तकनीकी, बाह्य स्रोत एवं संचार कंपनियों में 4 बिलियन डॉलर निवेश किए हुए हैं; किसी भारतीय सॉफ्टवेयर सर्विस कंपनी की तलाश में थी जिसमें वह पूंजी निवेश कर सके। GE ने लगभग 20% समता अंशों में निवेश किया है, क्योंकि वर्तमान निर्देशक अंश घाटी है। इसलिए, सार्वजनिक इश्यू लाने से पहले नरेन को छ: अन्य स्वतंत्र निर्देशक लाने होंगे।

स्रोत: बिजिनेस इंडिया

वित्त संबंधी जोखिम भी नहीं है क्योंकि ब्याज की कोई देनदारी नहीं है। परिणाम स्वरूप दिवालिया हो जाने का भय भी नहीं होगा। लेकिन इससे प्रति अंश आय कम हो जाएगी क्योंकि अब वही आय अधिक अंशधारकों में बांटी जाएगी। इसीलिए EPS में संभावित वृद्धि का लाभ अंशधारियों को प्राप्त नहीं होगा। कंपनी को दो मानदंडों को ध्यान में रखना होता है और वे हैं, प्रत्याय एवं जोखिम। मूलत: यह प्रत्याय एवं जोखिम में से एक का चुनाव है।

(ii) रोकड़ प्रवाह क्षमता: पूंजी ढांचे की संरचना से संबंधित निर्णय व्यवसाय की इस योग्यता पर भी निर्भर करता है कि वह स्थायी देयता के लिए पर्याप्त रोकड़ जुटा पाती है अथवा नहीं। ऋण पर ब्याज, पूर्वाधिकारी अंशों पर लाभांश तथा ऋण की मूल राशि वे स्थायी देयता हैं जिनका भुगतान करना है। हो सकता है कि कंपनी पर्याप्त लाभ कमा रही हो लेकिन यह आवश्यक तो नहीं कि ब्याज के भुगतान के समय रोकड़ का पर्याप्त प्रवाह हो। भविष्य में संभावित रोकड़ प्राप्ति का विश्लेषण करना चाहिए तथा इसका ब्याज के भुगतान के समय से सामंजस्य करना चाहिए।

कंपनी पर ब्याज के भुगतान एवं मूलधन की वापसी का कानूनी दायित्व होता है। यदि कंपनी अपने स्थायी देयता का भुगतान करने में असमर्थ है तो वह दिवालिया हो सकती है। साधारणतया कंपनी पूंजी ढांचे का एक भाग होता है यदि कंपनी आश्वस्त है कि वह ब्याज के भुगतान के लिए पर्याप्त रोकड़ का सृजन कर सकेगी। अधिक ऋण पूंजी लगाना जोखिम भरा होगा यदि रोकड़ की प्राप्ति अस्थिर एवं अनुमान रहित है। उच्च लाभ अर्जित करने वाली कंपनियों में भी रोकड़ की कमी पड़ सकती है। यदि उसकी कार्यशील पूंजी का प्रबंधन कमजोर है तो कंपनी को अपनी तरलता का विश्लेषण करना चाहिए एवं एक प्रक्षेपित रोकड़ प्रवाह विवरण तैयार करना चाहिए। यह स्थायी वित्तीय देयता का भुगतान करने के लिए कंपनी की रोकड़ सृजन क्षमता की ओर इंगित करेगी।

(iii) नियंत्रण : समता अंशधारियों का कंपनी के नियंत्रण में हाथ होता है। ऋण पत्रधारियों को कंपनी के प्रबंधन का अधिकार नहीं होता है। पूर्वाधिकार अंशधारियों को वार्षिक साधारण सभा में उन प्रस्तावों पर मत देने का सीमित अधिकार होता है जो उनके लाभांश को प्रभावित करते हैं। वैसे पूर्वाधिकार अंश पूंजी एवं ऋण पूंजी समता अंशधारियों की नियंत्रण शक्ति को प्रभावित नहीं करते हैं। यदि स्वामित्व यह चाहता है कि कंपनी पर उनका पूर्ण नियंत्रण रहे तो इसके लिए वे पूंजी लगाना पसंद करेंगी। यदि अतिरिक्त कोष समता अंश निर्गमन कर जुटाए जाते हैं तो नियंत्रण में ढील आ जाएगी क्योंकि समता अंश धारियों को मत देने का अधिकार होता है।

समता अंशधारी निर्देशकों का चुनाव करते हैं जिनसे मिलकर निर्देशक मंडल बनता है तथा जिस पर व्यवसाय को प्रबंध करने का दायित्व होता है। कंपनी पर नियंत्रण बनाए रखना उन कंपनियों में अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाता है जिनमें कम अंशधारी होते हैं अर्थात् ये घनिष्ट रूप से संबंधित लोगों की कंपनी होती है। यदि अतिरिक्त अंशों का निर्गमन किया जाता है तो हो सकता कि कोई एक अंशधारी अथवा अंशधारियों का एक समूह अधिकांश अंशों का क्रय कर ले एवं कंपनी पर अपना आधिपत्य जमा ले। दूसरे अंशधारकों के नियंत्रण अथवा हस्तक्षेप के जोखिम से बचने के लिए कुछ कंपनियां पूर्वाधिकार अंश अथवा ऋण पत्र जारी कर पूंजी जुटाना पसंद करती हैं।

ऋण की आपूर्ति करने वालों को मताधिकार नहीं मिलता है लेकिन जब कोई कंपनी बड़ी मात्रा में ऋण का उपयोग करती है तो ऋण संबंधी अनुबंधों में कुछ

शर्तों के अनुसार ऋण देने वालों का किसी न किसी रूप में कंपनी के प्रबंध में हस्तक्षेप का अधिकार होता है। इन शर्तों के अनुसार उनके प्रतिनिधि निर्देशक मंडल में हो सकते हैं, लाभांश के भुगतान पर अंकुश लगाया जा सकता है, नए दीर्घ अवधि निवेश का उत्तरदायित्व ले सकते हैं तथा तरलता का एक निश्चित स्तर निर्धारित किया जा सकता है।

किस वर्ग के ऋण पत्रों का निर्गमन किया जा रहा है इसका भी समता अंशधारियों की नियंत्रण सीमा पर प्रभाव पड़ता है। यदि कंपनी परिवर्तनीय ऋण पत्र जारी करती है जिन्हें किसी निर्धारित समय क्षमता अंशों में परिवर्तित किया जा सकता है तो नियंत्रण में ढील आ जाएगी।

(iv) लोच पूर्णता : जब भी आवश्यकता हो कंपनी पूंजी ढांचे को परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप ढालने में सक्षम होनी चाहिए। पूंजी ढांचा इतना लोचपूर्ण होना चाहिए कि यह बिना अनावश्यक देरी के अथवा अतिरिक्त लागत के अतिरिक्त धन जुटा सके। अतिरिक्त धन ऋण अंश पूंजी के रूप में एकत्रित किया जा सकता है। ताकि जब भी चाहे कंपनी पूंजी बाज़ार ऋण ले सके। लेकिन यदि पूंजी ढांचे में पहले ही ऋण एक बड़े भाग के रूप में है तो ऋण देने वाले कंपनी को और ऋण देना नहीं चाहेंगे। पूंजी ढांचे की रचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि इसमें पर्याप्त लोच हो जिससे कि यह कंपनी की आवश्यकताओं एवं इसके

वित्तीय संस्थाओं की प्रतिबंधनात्मक धाराएं

देश के स्टील क्षेत्र के तीन बादशाह मुंबई में IDBI के कार्यालय में वित्तीय पुनर्सरचना की योजना पर विचार-विमर्श के लिए आए। बैठक में 2100 करोड़ रुपए की एस्सार स्टील, इस्पात इंडस्ट्री एवं 1051 करोड़ रु. की जिंदल आयरन एंड स्टील कंपनी (JISCO) ने एक समझौता किया जिसके अनुसार 20,500 करोड़ रुपए के उनके विशाल निगमित ऋण की पुनर्सरचना करेंगे तथा उसके स्थान पर कंपनी के निष्पादन पर निगाह रखने के लिए एक मजबूत ढांचा तैयार करेंगे।

Corporate Debt Restructuring (CDR) की एक प्रमुख टीम ने बातचीत की। CDR की स्थापना पिछले वर्ष भारतीय रिजर्व बैंक ने कंपनियों की पुनर्सरचना के लिए की। यह वित्तीय क्षेत्र के वरिष्ठ अधिकारी को मिलाकर बनाई गई थी। स्टील क्षेत्र अपनी निष्क्रिय संपत्तियों के लिए बदनाम रहा है तथा पिछले दो वर्षों में इनको सक्रिय करने के भारतीय वित्त संस्थानों के प्रयत्न निष्फल रहे हैं।

वित्तीय संस्थाओं को यह जांच करनी पड़ी कि क्या कंपनियां प्रबंध पर से नियंत्रण खो देने की संभावना का मुकाबला करने को तैयार हैं। मित्तल सहयोग करने के लिए तैयार था। मित्तल पहला प्रवर्तक था जो ऋण की पुनर्सरचना के लिए तैयार था। इसके पश्चात् जिंदल और अंत में एस्सार स्टील भी नीचे आ गए। जिन लोगों ने CDR में भाग लिया उनका कहना है कि वित्तीय संस्थाओं ने सबसे सरल प्रवर्तक को पहले गांठा और फिर बचे दो की ओर रुख किया।

ऋण में परिवर्तन भारतीय पुनर्संरचना के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण मोड़ था। इसका पहला कारण इसका आकार और दूसरा इसका मात्र बदलाव ही नहीं बल्कि उससे भी आगे होना। FIs पहले कभी पथभ्रष्ट प्रवर्तकों पर इतना अकुंश लगाने में सफल नहीं रहे थे।

प्रस्ताव का सबसे दिलचस्प पहलू नियंत्रण प्रणाली है। प्रत्येक कंपनी में ऋण के कुछ न कुछ भाग को समता में परिवर्तित कर उन्हें वित्तीय संस्थाओं (FIs) एवं बैंकों को दे दिया जाएगा। समता में यह भागीदारी प्रवर्तकों के भाग के बराबर होगी। यह कंपनी को दो प्रकार से प्रभावित करेगी। प्रथम इससे कुल ऋण की मात्रा कम हो जाएगी। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है कि वित्तीय पद्धति का तीन कंपनियों में 60% का हिस्सा होना है। इसीलिए यदि कंपनियां सही कार्य नहीं कर पाती हैं अथवा ब्याज का भुगतान करने में असफल रहती हैं तो किसी भी समय प्रबंध को बदला जा सकता है।

स्रोत: बिजिनेस वर्ल्ड

परिचालन के अनुसार बदल सके। पूंजी बाज़ार की स्थिति एवं कंपनी की आवश्यकता के अनुसार शेयर एवं ऋणों का स्थानापन्न संभव हो।

वित्तीय मामलों के निपटारे के संबंध में ऋण के अनुबंध की शर्तें कंपनी की लोच को कम कर देती हैं। ये शर्तें लाभांश के नकद भुगतान, नए प्रयोजनों में निवेश पर प्रतिबंध अथवा तरलता का एक निश्चित स्तर बनाए रखने के संबंध में हो सकती हैं। यह प्रतिबंध ऋण दाताओं के हितों की रक्षा करते हैं। लेकिन इसके साथ ही कंपनी के स्वतंत्र परिचालन में रोक लगाते हैं। इसलिए जब भी कंपनी को ऋण लेना हो तो पहले से ही इसे यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि प्रतिबंधात्मक धाराएं कम से कम हों।

(v) बाज़ार की परिस्थितियां : पूंजी बाज़ार की परिस्थितियां कुछ सीमा तक पूंजी संरचना संबंधी निर्णयों को प्रभावित करती है। हो सकता है कि वह प्रारंभिक पूंजी ढांचे को प्रभावित न करें लेकिन जब भी कंपनी को अतिरिक्त धन की आवश्यकता होगी तो अंश अथवा ऋण पत्रों के निर्गमन के उचित समय का उसे ध्यान रखना होगा। निवेशकर्ता लेन-देन में चौकन्ने हो सकते हैं तथा हो सकता है कि शेयरों का क्रय कर अनावश्यक जोखिम न उठाना चाहें। ऐसे समय पर ऋण पत्रों का निर्गमन अधिक उचित रहेगा क्योंकि इसमें नियोजक को एक निश्चित दर से ब्याज सुनिश्चित है।

पूंजी बाज़ार की स्थिति, निवेशकर्ता की मन:स्थिति तथा कंपनी की आंतरिक स्थिति को ध्यान में रखकर कंपनी को वित्त की वैकल्पिक पद्धतियों का चुनाव करना होता है तथा उनका उचित मिश्रण तय करना होता है। बाज़ार में मंदी के समय में समता अंशों का निर्गमन नहीं करना चाहिए

SEBI एवं DCA

1992 में जब सार्वजनिक निर्गमन से संबंधित कार्य पर निगरानी रखने एवं पूंजी बाज़ार के नियमन के लिए भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) की स्थापना की गई थी तब से आज लगभग दस वर्ष तक 6 लाख भारतीय पंजीकृत कंपनियों में से जो पूंजी बाज़ार में गई हैं, में से लगभग 9000 कंपनियों को इसके कार्यों एवं कंपनी मामलों के विभाग DCA के कार्यों में निरर्थक दोहरेपन को झेलना पड़ रहा है। इसका कारण है कि DCA कंपनी अधिनियम 1956 जो कंपनियों के जन्म (पंजीकरण) से लेकर मरण (समापन) तक का नियमन करती है, का प्रबंधन करता है। इन 9000 कंपनियों पर SEBI अधिनियम की इसी प्रकार सख्ती एवं अनुशासन लागू होता है।

शेयर बाज़ार के घोटालों की हाल ही में की गई जाँच पड़ताल से पता लगता है कि कुछ संदिग्ध कंपनियों की SEBI एवं DCA ने जांच पड़ताल की लेकिन दोनों में से कोई भी नियोजकों को तुरंत राहत पहुँचाने अथवा दोषियों को दंडित करने के लिए कोई कदम नहीं उठा सकी।

इन आलोचनाओं का ज्ञान होने पर सरकार इस नतीजे पर पहुंची है कि SEBI एवं DCA के कार्यों में पुनरावृत्ति कंपनियों, निवेशकों एवं अंशधारियों के लिए विपरीत परिणामों से युक्त होती है।

DCA को चाहिए कि वह इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि SEBI को बाज़ार की गतिशील परिस्थितियों में कार्य करना होता है, उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

यदि SEBI द्वारा प्रस्तावित परिवर्तनों के कारण कंपनी अधिनियम में संशोधन की आवश्यकता है तो DCA को उसके लिए अपनी सहमति प्रदान कर देनी चाहिए।

यह सुनिश्चित करे कि DCA जो सभी कंपनियों का नियमन करती है एवं SEBI जो सूचीबद्ध कंपनियों का नियमन करती है, दोनों और अधिक तालमेल एवं उद्देश्य को ध्यान में रखकर कार्य करें।

स्रोत : बिजिनेस टुडे

क्योंकि इसमें जोखिम के तत्त्व सम्मिलित हैं और हो सकता है कि नियोजक जोखिम उठाने की मनःस्थिति में न हों। कंपनी को तब तक इंतजार करना चाहिए जब तक कि शेयर बाज़ार में फिर से तेजी आ जाए। ऐसे समय पर कंपनी के लिए ऋण पत्र जारी करना उचित रहेगा। लेकिन यदि बाज़ार में तेजी है अर्थात् ऊंची उड़ान पर तो ऐसे समय में नियोजक क्रय करना चाहता है और ऐसे हर शेयर बिक सकते हैं। ऐसे में कंपनी अंशों का निर्गमन कर सकती है और वह भी अधिमान पर, साथ ही कंपनी अपनी ऋण जुटाने की क्षमता को बचाए रख सकती है अर्थात् ऋण पत्रों का निर्गमन आवश्यकता पड़ने पर फिर कमी कर सकती है।

कंपनी के लिए पूंजी बाज़ार से अतिरिक्त ऋण जुटाना कंपनी की आंतरिक स्थिति के कारण भी कठिन हो सकता है। यदि कंपनी अत्यधिक उत्तोलित है अर्थात् पूंजी का बड़ा भाग ऋण कोष है तो इसके लिए बाज़ार से कोष जुटाना कठिन होगा। ऋण समझौतों में प्रतिबंधात्मक शर्तें, जैसे लाभांश का भुगतान आदि भी धन एकत्रित करने की क्षमता में बाधक हो सकते हैं। इन सबके कारण पूंजी बाज़ार में कंपनी का निम्न स्तर का प्रभाव होगा।

(vi) निर्गमन लागत : इस लागत का अभिप्रायः अंश एवं ऋण पत्रों के निर्गमन में आने वाली लागत से है। इन लागतों में विज्ञापन व्यय, अभिगोपन की वैधानिक फीस, प्रविकरण पत्र की छपाई का व्यय तथा अन्य मिले जुले खर्चे सम्मिलित हैं। यह ध्यान रहे कि बड़ी-बड़ी कंपनियों में अंश अथवा ऋण पत्रों के निर्गमन के संबंध में निर्णय लेने समय इनको अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। लेकिन एक छोटी कंपनी के लिए अंश या ऋण पत्रों के निर्णय में यह महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं। वैसे बड़ी कंपनियां भी ऋण पत्रों का बार-बार निर्गमन नहीं कर सकतीं। कई प्रकार की कानूनी औपचारिकताएं पूरी करनी होती हैं एवं मिश्रित व्ययों की भी एक बड़ी राशि हो सकती है। किसी समय पर एक कंपनी एक ही बार में पूंजी जुटाना चाहेगी जिससे कि बाद के निर्गमन व्यय की बचत की जा सके। यह अभिगोपनकर्ताओं की इच्छा एवं उनके द्वारा लिए जाने वाले कमीशन पर भी निर्भर करता है। इसीलिए जब भी कौन-सी प्रतिभूति तथा कितनी मात्रा में निर्गमित की जाएगी, का निर्णय लेना होता है तो इस तत्त्व का भले ही यह सापेक्षिक रूप में कम महत्त्वपूर्ण है, अन्य तत्त्वों के साथ ध्यान रखा जाता है। यहां इस ओर ध्यान देना आवश्यक है कि लागतों की अभूतपूर्व मात्रा जो करोड़ों रुपए तक हो सकती हैं को ध्यान में रखते हुए यह निर्धारक तत्त्व महत्त्वपूर्ण होता जा रहा है।

(vii) वैधानिक ढांचा : एक कंपनी का प्रचालन कानून प्रदत्त ढांचे के अंतर्गत होता है। एक वित्त प्रबंधक को जन साधारण के अंशों एवं ऋण पत्रों के निर्गमन के संबंध में नियमों एवं नियमितताओं का ज्ञान होना चाहिए। कंपनी अधिनियम एवं भारतीय प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड (SEBI) जनता से कोष एकत्रित करने के संबंध में समय-समय पर दिशा निर्देश देते रहते हैं। कई अंशों के निर्गमन के लिए (SEBI) की अनुमति की आवश्यकता होती है, यह निर्णय लेने से पहले कि अंश एवं ऋण पत्रों का निर्गमन करना है अथवा वित्तीय संस्थानों से ऋण लेना है, कंपनी को इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए। कंपनी द्वारा जनता के साथ धोखे से जनता के हितों की रक्षार्थ इन कानूनों की रचना की गई है।

पूंजीकरण

पूंजी सभी वित्तीय निर्णयों का आधार है तथा पूंजीकरण शब्द की व्युत्पति इसी से हुई है। पूंजी का अर्थ है–

व्यवसाय में निवेशित संपूर्ण वित्त जिसमें स्वामित्व कोष, दीर्घ अवधि ऋण एवं दूसरे संचय जिनके बराबर मूल्य की संपत्ति है, सम्मिलित हैं। पूंजीकरण इसी पूंजी का मूल्यांकन है तथा इसमें स्वामित्व कोष, ऋण, दीर्घ अवधि ऋण संचय एवं अधिशेष सम्मिलित है। अधिशेष से अभिप्राय: शुद्ध आय के उस एकत्रित भाग से है जो स्वामियों में वितरित नहीं किया जाता तथा जिसे व्यवसाय में ही रहने दिया जाता है। इस प्रकार की आय क्योंकि अंशधारियों में वितरित नहीं की जाती इसीलिए यह स्वतंत्र संचित होती है तथा पूंजी के मूल्यांकन में सम्मिलित की जाती है।

पूंजी का मूल्यांकन कंपनी की आय पर निर्भर करता है। इसलिए कंपनी के लिए आवश्यक कुल पूंजी का व्यवसाय की अर्जन क्षमता से सीधा संबंध है। दूसरे शब्दों में, व्यवसाय की संपत्तियों में लगी कुल पूंजी को औचित्य की संभावित आय द्वारा सिद्ध किया जाना चाहिए। एक व्यावसायिक इकाई की कम से कम इतनी आय अवश्य होनी चाहिए जितनी कि इसी प्रकार की दूसरी इकाइयां एक ही उद्योग में अर्जित कर रही हैं। उसकी आय की दर उस उद्योग की अन्य इकाइयों की आय की दर के समान होनी चाहिए।

तीन संभावित परिस्थितियां हो सकती हैं :

(i) *साधारण अथवा उचित पूंजीकरण :* व्यवसाय में पूंजी की सही राशि लगी हुई है।

(ii) *अति पूंजीकरण : व्यवसाय में आवश्यक्ता से अधिक पूंजी लगी हुई है।*

(iii) *अव पूंजीकरण : व्यवसाय में आवश्यक्ता से कम पूंजी लगी हुई है।*

यदि एक उद्योग की औसत प्रतिफल की दर 10 प्रतिशत है। एक कंपनी ने 10 लाख रु. किसी व्यवसाय में निवेशित किया है और उसकी शुद्ध आय 1 लाख है। इस कंपनी की प्रतिफल की दर 10 प्रतिशत है। इसका मतलब है कि कंपनी उतना आय अर्जित कर लेती है जितना कि दूसरे व्यवसाय इकाईयां उसी उद्योग में अर्जित कर रही हैं। यह कंपनी साधारण अथवा उचित पूंजीकरण कहलाती है।

यदि इस कंपनी ने 12 लाख निवेशित किया है और उसकी आय 1 लाख हो तब प्रतिफल की दर 8.33 प्रतिशत होता जो उद्योग के 10 प्रतिशत औसत दर से कम है। 12 लाख के निवेश पर उसकी आय 1.2 लाख होनी चाहिए। इस कंपनी को अधिक पूंजी की आवश्यकता है जिसमें की वह 1.2 लाख की आय अर्जित कर सके। ऐसी कंपनी को अति पूंजीकृत कहते हैं।

यदि कंपनी ने 8 लाख निवेशित किया है और 1 लाख आय अर्जित किया हो, तो उसकी प्रतिफल की दर 12.5 प्रतिशत होती जो उद्योग के 10 प्रतिशत से अधिक है। यह कंपनी कम निवेशित पूंजी पर अधिक आय अर्जित कर सकती है। ऐसी कंपनी को अव पूंजीकृत कहते हैं।

अत: अति और अव पूंजीकरण की उचित प्रक्रिया कंपनी द्वारा लागू की गई प्रतिफल की दर पर आधारित होती है जो कि उस उद्योग के प्रतिफल की दर के तुलनात्मक होती है, जिस उद्योग से कंपनी संबंधित होती है।

अति पूंजीकरण

अति पूंजीकरण को दर्शाने वाली तीन चीजें हैं :

(i) जब निवेशित पूंजी की राशि संपत्ति के वास्तविक मूल्य से अधिक हो।

(ii) जब कुल आय कुल पूंजी पर उचित प्रत्याय देने के लिए अपर्याप्त हो अर्थात् नियोजित पूंजी पर उचित मात्रा में प्रत्याय अर्जित करने में असमर्थ हो।

(iii) जब व्यवसायी के पास आवश्यकता से अधिक संपत्ति हो।

यह सत्य है कि एक अति पूंजीकरण वाली कंपनी के पास जितनी पूंजी को उसकी आय उचित ठहराती है उससे कहीं अधिक पूंजी होती है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि व्यवसायी के पास पूंजी की अधिकता है। इसका अर्थ केवल इतना है कि पूंजी राशि से कम है जो नियोजित पूंजी से अपेक्षित है। अर्जन-क्षमता से कम है जो नियोजित पूंजी से अपेक्षित है। अर्जन-क्षमता से कुल पूंजी का औचित्य सिद्ध नहीं हो रहा है इसलिए कंपनी की अति पूंजीकरण की स्थिति मानी जाएगी। कंपनी की आय का स्तर ही उसकी अति पूंजीकरण की स्थिति को सही रूप से दर्शाता है। यदि कंपनी की आय किसी एक समय में अंशधारियों को लाभांश एवं स्थिर ब्याज का भुगतान करने के लिए पर्याप्त नहीं है तो हम कहेंगे कि कंपनी की अति पूंजीकरण की स्थिति है।

अति पूंजीकरण के कारण

अति पूंजीकरण वे निम्नलिखित कारण हैं:

(i) उच्च प्रर्वतन लागत : कई कंपनियां प्रवर्तन के समय प्रवर्तकों की फीस, दलाली एवं अभिगोपन कमीशन, पेटेंट्स अथवा ख्याति का क्रय, आदि भारी प्राथमिक व्यय कर देती है। इनमें से कुछ व्यय अनुत्पादक होते हैं तथा कई बार ख्याति अथवा पेटेंट अधिकार व्यवसाय की अर्जन क्षमता में वृद्धि नहीं कर पाती है। इसलिए पूंजी अधिक हो जाती है तथा प्रत्याय नियोजित पूंजी को उचित ठहराने में असमर्थ सिद्ध होती है।

(ii) संपत्तियों के लिए अनावश्यक रूप से अधिक मूल्य का भुगतान : कभी-कभी साझेदारी अथवा निजी कंपनी को सार्वजनिक सीमित दायित्व कंपनी में परिवर्तित कर दिया जाता है। तथा संपत्तियों का हस्तांतरण बढ़े हुए मूल्य पर किया जाता है। यह फिर भूमि एवं भवन को काफी ऊंचे मूल्य पर खरीदा जाता है। इन संपत्तियों से बराबर की आय नहीं हो पाती अथवा यह व्यवसाय की अर्जन क्षमता में वृद्धि करती। संपत्तियों की बढ़ी हुई कीमतें कंपनी की आय में परिलक्षित नहीं होती। इसका परिणाम अति पूंजीकरण है।

(iii) तेजी के समय में मूल्य वृद्धि : यदि तेजी के समय में कंपनी को प्रारंभ किया जाए तो संपत्तियों का ऊंचे मूल्य पर क्रय किया जाएगा। लेकिन आय में तद्नुसार वृद्धि नहीं होगी परिणामस्वरूप अतिपूंजीकरण होगा।

(iv) अवक्षयण के लिए अपर्याप्त प्रावधान : कभी-कभी कंपनी संपत्तियों पर उचित दर से पर्याप्त अवक्षयण नहीं लगाती है। परिणामस्वरूप जब संपत्ति का स्थानापन्न करना होता है अथवा संपत्ति चलन से बाहर हो जाती है तो इसके लिए पर्याप्त कोष उपलब्ध नहीं होते हैं। नई संपत्तियों का अधिक मूल्य पर क्रय किया जाता है। इसमें पूंजी अधिक मात्रा में लग जाती है। जबकि आय उसके अनुरूप नहीं हो पाती। और अति पूंजीकरण की स्थिति पैदा हो जाती है।

(v) उदार लाभांश नीति : कुछ कंपनियां लाभ को बचाकर रख उसके पुनर्निवेश के स्थान पर, उसे लाभांश के रूप में बांट देती हैं। इस संचिति से कंपनी की आय क्षमता में जो वृद्धि हो सकती थी वह नही हो पाती है। इस घाटे की पूर्ति के लिए कंपनी बाह्य स्त्रोतों से ऋण जुटाती है तथा अंशों का निर्गमन कर पूंजी एकत्रित करती है। यह अत्यंत खर्चीला पड़ता है क्योंकि इतनी अधिक मात्रा में एकत्रित पूंजी पर उचित आय नहीं हो पाती है। ऐसी स्थिति में कंपनी में अति पूंजीकरण की स्थिति बन जाती है।

(vi) पूंजी की कमी : वित्त नियोजन में परिशुद्धता की कमी के कारण यदि पूंजी अपर्याप्त मात्रा में है तो कंपनी को उच्च ब्याज दर पर बाह्य स्रोतों से ऋण लेने पर निर्भर करना होगा। पूंजी की कमी का कारण कार्य कुशलता पर निर्भर होगा और कार्य कुशलता पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा।

अति पूंजी के प्रभाव

इनका अध्ययन हम कंपनी, अंशधारक एवं समाज की दृष्टि से कर सकते हैं।

कंपनी पर प्रभाव

(i) आय क्षमता में गिरावट के कारण कंपनी के अंशों के बाज़ार मूल्यों में भारी गिरावट होती हैं।
(ii) कंपनी की साख पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है इसलिए ऐसी कंपनी के लिए ऋण जुटाना कठिन हो जाता है।
(iii) आय कम होने के कारण कंपनी रख-रखाव पर व्यय पुरानी संपत्तियों के स्थान पर नई परिसंपत्तियों पर व्यय एवं अवक्षयण के लिए पर्याप्त प्रावधान में कटौती कर देती है।
(iv) कंपनी कई बार लाभ दिखाने के लिए लेखांकण का मैनीपूलेशन करती है और लाभ न होने पर भी लाभांश दे देती है।
(v) साख पर प्रभाव पड़ता है और उसकी ख्याति समाप्त हो जाती है। कंपनी को पूंजी का पुनर्गठन करना पड़ता है।

अंशधारियों पर प्रभाव

(i) अंशों का बाज़ार मूल्य गिर जाता है तथा पूंजी का ह्रास होता है। अंशों के बेचने पर भारी हानि होती है।
(ii) कंपनी की आय में कमी आती है उनके लाभांश पर भी प्रभाव पड़ता है। यह लाभांश अनिश्चित एवं अनियमित हो जाते हैं।
(iii) ऐसी कंपनियों के अंशों को अग्रिम एवं ऋण के लिए जमानत के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है।
(iv) यदि कंपनी का पुनर्गठन होता है तो इसका आघात अंशधारियों को भी वाहन करना होता है क्योंकि उनके अंशों का अंकित मूल्य भी कम हो जाता है।

समाज पर प्रभाव

(i) लाभों में कमी के कारण अति पूंजीकरण वाली कंपनियां उत्पादों के मूल्यों में वृद्धि एवं उनकी गुणवत्ता में कमी जैसे दाव-पेंच अपनाती है।
(ii) मजदूरी पर व्यय को कम किया जाता है इससे मजदूरों में असंतोष व्याप्त होता है तभी हड़तालें होती हैं।
(iii) ब्याज के अनियमित भुगतान के कारण कंपनी के लेनदार भी प्रभावित होते हैं।
(iv) अति पूंजीकरण वाली कंपनियां अपनी विनियोजित पूंजी पर पर्याप्त आय अर्जित नहीं कर पाती हैं। इससे समाज के संसाधनों का ह्रास होता है जो पहले ही अत्यधिक सीमित एवं अपर्याप्त हैं।

अव पूंजीकरण

अव पूंजीकरण अति पूंजीकरण के सर्वथा विपरीत है। एक कंपनी की अव पूंजीकरण की स्थिति होती है जब :

- प्रवर्तन के समय भविष्य की प्रत्याय का अनुमान कम लगाया जाता है।
- प्रत्याय में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी होती है।

उपर्युक्त के परिणामस्वरूप एक अव पूंजीकृत कंपनी स्थिर ब्याज व्यय का भुगतान करने में सक्षम

होती है तथा अपने अंशों पर समान व्यवसाय वाली इकाइयों की तुलना में ऊंची दर से लाभांश दे सकती है। दूसरे शब्दों में, कंपनी में विनियोजित पूंजी पर अर्जित लाभ की दर उसी उद्योग की अन्य कंपनियों द्वारा अर्जित लाभ की दर से ऊंची होगी।

अव पूंजीकरण का अर्थ अपर्याप्त पूंजी अथवा कोषों की कमी नहीं है। जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है। यदि सामान्य पूंजीकरण 10,00,000 रु. है तथा इस पर 10% से प्रत्याय 1,00,000 रु. है तो वह कंपनी अव पूंजीकृत मानी जाएगी जो 10,00,000 रु. से कम पूंजी लगाकर 1,00,000 रु. अर्जित कर रही है।

उदाहरण के रूप में, माना कंपनी ने 8,00,000रु. का विनिवेश कर 12.5: से 1,00,000 रु. की आय अर्जित की। इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि कंपनी की पूंजी 2,00,000 रु. कम है। वास्तविकता यह है कि कंपनी कम पूंजी लगाकर अधिक आय प्राप्त कर रही है अर्थात् वह कोषों का अधिक कुशलता से उपयोग कर रही है।

अव पूंजीकरण के कारण

अव पूंजीकरण के निम्नलिखित कारण हैं :

(i) वास्तविक आय से कम का अनुमान : पूंजीकरण अनुमानित आय पर निर्भर करता है। अनुमानित आय यदि कम है तो पूंजीकरण राशि भी कम होगी। कभी-कभी आय अनुमान से बहुत अधिक होती है एवं गुणना की गई पूंजीकरण राशि कम है।

(ii) व्यापारिक मंदी के समय कंपनी की स्थापना : कभी-कभी कंपनी संपत्तियों का क्रय अथवा प्रवर्तन अर्थव्यवस्था में मंदी के समय करती है। संपत्तियों का क्रय कम मूल्य पर किया गया है तो व्यापारिक तेजी के समय विनियोजित पूंजी की तुलना में आय अनुपातन ऊंची होगी।

(iii) संकीर्ण लाभांश नीति : अपने प्रारंभिक वर्षों में हो सकता है कि कंपनी ने लाभांश का स्वतंत्रतापूर्वक वितरण नहीं किया हो। लाभों को व्यवसाय में संचय कर लिया और संचित खाते में उसे जमा कर दिया अथवा उसका व्यवसाय में पुनर्निवेश कर दिया। परिणामस्वरूप निवेशित पूंजी पर उच्चदर से आय होगी और अवपूंजीकरण की स्थिति पैदा हो जाएगी।

(iv) उच्च कार्यक्षमता : यदि परिसंपत्ति का रख-रखाव ठीक है एवं उनको ठीक ढंग से प्रयोग में लाया जा रहा है तो लागत में कमी होगी। उच्चस्तरीय सतर्कता एवं कार्य क्षमता से उत्पादकता एवं लाभ प्रदत्ता में बढ़ोत्तरी होती है जो विनियोजित पूंजी की तुलना में अधिक आय में परिलक्षित होती है।

अव पूंजीकरण के प्रभाव

कंपनी *पर प्रभाव*

(i) उच्च आय के कारण अंशों के बाजार मूल्य में वृद्धि।
(ii) गुप्त संचिति का निर्माण
(iii) उच्च करों के रूप सरकार का हस्तक्षेप
(iv) उच्च दर से आय व्यवसाय में आय के लिए अन्य लोगों को प्रोत्साहित करती है जिससे प्रतियोगिता में वृद्धि होती है।
(v) कर्मचारी अधिक वेतन एवं मजदूरी की मांग करेंगे जिससे उनमें असंतोष एवं तनाव फैलेगा।

समाज पर प्रभाव

(i) अव-पूंजीकरण का अर्थ है शेयर बाजार में अंशों के ऊंचे मूल्य। इससे अस्वस्थ सट्टेबाजी को प्रोत्साहन मिलता है।
(ii) अधिक लाभ होने पर उपभोक्ता को ऐसा लगता है मानो उसका शोषण किया गया है।

अव पूंजीकरण की स्थिति लंबे समय तक नहीं बनी रह सकती। उच्च आय प्रतियोगिता तथा कर के रूप में सरकारी हस्तक्षेप को बुलावा देती है और अंत में लाभ कम हो जाता है। अर्थव्यवस्था अव पूंजीकृत कंपनी का ध्यान रखती है तथा इसकी खींचतान/दबाब एवं प्रभाव के कारण कंपनी अपनी सामान्य स्थिति में आ जाती है। अति पूंजीकरण एक गंभीर समस्या है तथा हो सकता है कि कंपनी का पुनर्गठन करना पड़े। इससे अंशधारियों एवं लेनदारों को हानि उठानी पड़ सकती है। अवपूंजीकरण एवं अति पूंजीकरण दोनों ही बुराइयां हैं लेकिन अव पूंजीकरण की स्थिति कम बुरी है। इसीलिए कंपनी को उचित पूंजीकरण का प्रयत्न करना चाहिए।

स्थायी पूंजी का प्रबंधन

स्थायी पूंजी का अर्थ है दीर्घ अवधि परिसंपत्तियों में विनिवेश/स्थायी पूंजी के प्रबंधन में कंपनी की पूंजी को व्यवसाय की दीर्घ अवधि तक लाभ पहुंचाने

अभूतपूर्व बदलाव

हैदराबाद की इलेक्ट्रॉनिक कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया WD (ECIL), जो पूर्णरूप से भारतीय सरकार का उद्यम है और जिसमें बीमारी के कगार पर भी चमत्कारिक रूप से परिवर्तन आया और इसनें सार्वजनिक क्षेत्र के विरोधियों को गलत सिद्ध कर दिया। इसकी स्थापना 1967 में की गई थी। इस सार्वजनिक उपक्रम ने इलेक्ट्रॉनिक्स के क्षेत्र में एक सुदृढ़ एवं देशी आधार के निर्माण के लिए अपने कार्य क्षेत्र का विस्तार कर लिया है। यह अपने विभिन्न प्रकार के ग्राहकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है और यह एक बहु उत्पाद एवं बहु-आयामी संगठन में पल्लवित हो गई है। इसके पीछे एक सुदृढ़ अनुसंधान एवं विकास (R&D) का हाथ है जिसके कारण इलेक्ट्रॉनिक्स एवं सूचना प्रौद्योगिकी (IT) की कई ऐसी चीजों का उत्पादन किया है जिनका देश में सर्वप्रथम उत्पादन हुआ है।

1990 के दशक के मध्य में ECIL को पूरी तरह से बेकार मान लिया गया था। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण का इस पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। विकास दर कम होती गई। जो कंपनी 1992-97 के बीच लाभ में चल रही थी उसके लाभ की मात्रा कम होती गई तथा यह बहुराष्ट्रीय निगमों एवं भारतीय निजी क्षेत्र से प्रतियोगिता के भारी दबाव में आ गई। कंपनी को 1997-98 वर्षों में प्रथम बार हानि हुई।

कंपनी बीमारी के कगार पर पहुंच गई तथा उसे बोर्ड फॉर इंडस्ट्रियल एंड फाईनेंशियल रीकंस्ट्रक्शन (BIFR) बीमारी उद्योग कंपनी अधिनियम (SICA) के अंतर्गत को सूचित करना पड़ा। कर्मचारियों का मनोबल निम्नतम स्तर पर था, तरलता की समस्या जबरदस्त थी, बैंकों ने धमकी दे दी कि वह कंपनी को ऋण सुविधाओं की सीमा को घटा देंगे। ग्राहकों ने आगे उधार देना बंद कर दिया। ग्राहक संतुष्टि को बहुत झटका लगा तथा कंपनी की छवि धूमिल हुई।

इन परिस्थितियों में 1 नवंबर, 1999 से एक नए व्यक्ति ने मुख्य कार्यकारी का पद संभाला। कंपनी को बीमार स्थिति में से निकालना वास्तव में एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। स्थिति को उसने उल्टा, यह कर्म घाटी अभिप्रेरणा, वस्तु के विकास, वित्तीय अनुशासन, कंपनी में हित रखने वालों के साथ मधुर संबंध, गुणवत्ता पर जोर पूरे वर्ष में कार्य परिसंचालन एवं निष्पादन कार्य से रत सभी खंडों एवं लोगों को अधिकार देना, के कारण संभव हुआ।

इस दिशा में एक बड़ा कदम उठाया वह था, वित्तीय अनुशासन एवं कार्यशील पूंजी का कुशल प्रबंधन। यदि मंडल प्रमुख अपने महीने के स्थाई एवं परिवर्तनशील व्ययों/खर्चों को पूरा करने के लिए आवश्यक वित्त जुटाने में सफल थे तो उन्हें मौद्रिक साधनों का उपयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता दी गई। यह सुनिश्चित किया गया कि प्रत्येक मंडल सहायता के लिए निगम की ओर न देखे और कोष पैदा करने का पूरा दायित्व अपने ऊपर ले। 'धन जुटाओं एवं व्यय करो' नीति की सफलता स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही थी।

स्रोत: फॉर्च्यून इंडिया

वाली विभिन्न परियोजनाओं एवं संपत्तियों में बांट दिया जाता है। इन निर्णयों को निवेश संबंधियों अथवा पूंजी बजट बनाने संबंधी निर्णय कहते हैं। तथा यह दीर्घ अवधि में व्यावसायिक विकास, लाभ प्रदत्त एवं जोखिम को प्रभावित करते हैं। इन दीर्घ अवधि संपत्तियों से लंबी अवधि में, जो एक वर्ष से अधिक होती है, लाभ प्राप्त होता है।

इन संपत्तियों में विनियोजन में संपत्तियों को प्राप्त करने, उनकें आधुनिकीकरण एवं पुरानी के स्थान पर नई संपत्ति लाना सम्मिलित हैं। यहां निर्णय भूमि, भवन, प्लांट एवं मशीनों का क्रय, नए उत्पाद का प्रारंभ या फिर उत्पाद की अति आधुनिक तकनीकों में निवेश के संबंध में हो सकते हैं। विज्ञापन प्रचार, अथवा अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम जो कंपनी को लंबे समय तक लाभ पहुंचाते हैं, पर किया गया अधिकांश व्यय पूंजी बजट बनाने संबंधित निर्णय के उदाहरण है।

स्थायी पूंजी, अथवा विनिवेश का प्रबंधन अथवा पूंजी बजट बनाने से संबंधित निर्णय निम्न कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं :

(i) दीर्घ अवधि विकास एवं प्रभाव : यह ऐसे निर्णय हैं जिनका दीर्घ अवधि विकास पर प्रभाव पड़ता है। दीर्घ अवधि परिसंपत्तियों में लगाई गई पूंजी पर भविष्य में लाभ प्राप्त होगा। इनका व्यवसाय में आने वाले समय की संभावनाओं एवं भविष्य पर प्रभाव पड़ता है।

(ii) बड़ी मात्रा में धन लगा होना : इन निर्णयों के कारण पूंजी का एक बड़ा भाग इन विनिवेश कार्यक्रमों की योजना अभिज्ञान विश्लेषण करने के पश्चात बनाई जाती है इसमें वित्त कहां से प्राप्त करना है और किस दर पर प्राप्त करना है, इनके निर्णय सम्मिलित हैं।

(iii) जोखिम : स्थायी पूंजी की भारी मात्रा में आवश्यकता होती है, यह कंपनी की दीर्घ अवधि प्रत्याय को प्रभावित करती है। इसीलिए स्थायी पूंजी कंपनी के कुल व्यावसायिक जोखिम के स्वरूप को प्रभावित करती है।

(iv) स्थायी निर्णय : यह निर्णय एक बार ले लिए जाए तो फिर उन्हें पलटा नहीं जाता क्योंकि ऐसा करने पर भारी हानि उठानी होगी। किसी परियोजना में भारी निवेश के पश्चात् उसे समाप्त करना भारी धन की बर्बादी के रूप में महंगा पड़ेगा। इसीलिए तो इन निर्णयों का ध्यानपूर्वक विस्तृत मूल्यांकन किया जाना चाहिए अन्यथा इसके भारी विपरीत वित्तीय परिणाम होंगे।

पूंजी बजट बनाने को प्रभावित करने वाले तत्त्व

किसी भी व्यवसाय में ऐसी अनेक परियोजनाएं होती है जिनमें पूंजी लगाई जा सकती है। लेकिन प्रत्येक परियोजना का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन करना होता है। एवं प्रत्याय के आधार पर परियोजना पर विशेष का चयन किया जाता है अथवा उसको अस्त्रीकृत किया जाता है। केवल एक परियोजना के होने पर प्रत्याय की दर के रूप में इसकी व्यवहार्यता देखी जाती है। अर्थात् यह देखा जाता है कि उद्योग में औसतन निवेश कितना है और फिर उससे इसकी तुलना की जाती है। कुछ ऐसे तत्त्व हैं जो पूंजी बजट बनाने से संबंधित निर्णयों को प्रभावित करते हैं।

(i) परियोजना के रोकड़ प्रवाह: जब कंपनी अपार धनराशि का निवेश निर्णय लेती है तब वह आशा करती है कि एक निश्चित अवधि में कुछ रोकड़ प्रवाह को बनाये रखेगी। ये रोकड़ प्रवाह, रोकड़ प्राप्ति और रोकड़ भुगतान के रूप में होती है। पूंजी बजट निर्णय लेने से पूर्व इस रोकड़ प्रवाहों

की धनराशि को सावधानीपूर्वक विश्लेषित किया जाता है।

(ii) प्रतिफल की दर: परियोजना के प्रतिफल की दर सबसे महत्त्वपूर्ण मानक है। ये गणना प्रत्येक प्रस्ताव और जोखिम निर्धारण से अपेक्षित प्रतिफल पर आधारित है। उदाहरण के लिए । और ठ दो परियोजनाएं हैं (जिनका जोखिम बराबर है), जिनके प्रतिफल की दर क्रमश: 10 प्रतिशत और 12 प्रतिशत है। तब सामान्य स्थितियों के अंतर्गत परियोजना B को स्वीकृत किया गया।

(iii) निवेश मानक : विशेष परियोजना में निवेश करने का निर्णय के अंतर्गत निवेश की धनराशि, ब्याज दर, रोकड़ प्रवाह और प्रतिफल कर दर शामिल है। निवेश प्रस्तावों को मूल्यांकन के लिए विभिन्न तकनीक हैं जिनको हम पूंजी बजट तकनीक कहते हैं। विशेष परियोजना की स्वीकृति से पूर्व ये तकनीकें लागू की जाती हैं।

कार्यशीलपूंजी: अर्थ एवं तत्त्व

कार्यशील पूंजी का संबंध व्यवसायिक इकाई की अल्प अवधि संपत्तियों जैसे स्कंध एवं अल्प अवधि देयताओं जैसे लेनदार से है। कार्यशील पूंजी को दो अर्थों में समझा जा सकता है सकल एवं शुद्ध।

(i) सकल कार्यशील पूंजी: इसका अर्थ है रोकड़, स्कंध, प्राप्तियां एवं पूर्वत्त व्यय सभी को मिलाकर कुल चल संपत्ति में पूंजी निवेश। इसे कुल कार्यशील पूंजी भी कहते हैं। इन चल संपत्तियों को एक लेखा वर्ष अथवा प्रचालन चक्र के दौरान रोकड़ में परिवर्तित किया जा सकता है।

(ii) शुद्ध कार्यशील पूंजी : इसका अर्थ है वह राशि जो चालू संपत्तियों में से चल देनदारियों को घटाने पर प्राप्त होती है। चालू देन दारी वह देनदारी होती है। जिनका भुगतान लेखा वर्ष अथवा एक वर्ष के अंदर करना होता है। इनमें जो देनदारी सम्मिलित है वे हैं, बाहर के लोगों की दावेदारी जैसे कि लेनदार देय विपत्र, एवं अदत्त व्यय। चालू देयता कोष के स्रोत हैं क्योंकि यह चालू संपत्तियों के लिए वित्त प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, माना एक कंपनी कच्चा माल खरीदती है तथा इसका नकद भुगतान करती है। तो हम कहेंगे कि कंपनी कच्चे माल के स्कंध के लिए आंतरिक स्रोत से वित्त प्रदान कर रही है। माना कंपनी को यही कच्चा माल तीन महीने की उधारी पर मिल जाता है तो इसके पास स्कंध बिना उसका भुगतान किए होगा। हम कहेंगे कि स्टॉक को वित्त लेनदारों प्रदान किया गया है। शुद्ध कार्यशील पूंजी या तो नकारात्मक हो सकती है या फिर सकारात्मक। यदि चालू संपत्तियां चालू देनदारी से अधिक हैं तो हम कहेंगे कि कार्यशील पूंजी का सकारात्मक शेष है और यदि चालू देनदारी चालू संपत्ति से अधिक है तो कार्यशील पूंजी नकारात्मक मानी जाएगी।

शुद्ध कार्यशील पूंजी की अवधारणा कंपनी की तरलता की स्थिति को बताती है। इससे पता चलता है कि चालू देयता का भुगतान करने के पश्चात् कितनी राशि की चालू संपत्ति बच जाएगी।

यह जोखिम के लिए अतिरिक्त राशि अथवा प्रतिरोधक प्रदान करती है। अल्प अवधि लेनदार सदा उस कंपनी में रुचि रखते हैं जिसकी चालू संपत्तियां चालू देय से अधिक रहती हैं। एक कमजोर तरलता की स्थिति को कंपनी की शोधन क्षमता के लिए खतरा माना जाता है। एक नकारात्मक कार्यशील पूंजी का अर्थ है नकारात्मक तरलता की स्थिति। ऐसी स्थिति में कंपनी अपनी चालू देनदारी का भुगतान करने में भी सक्षम नहीं होती है। परिणामस्वरूप उसकी साख को काफी हानि पहुंचती है।

परिचालन चक्र एवं कार्यशील पूंजी

प्रत्येक चालू संपत्ति में निवेश प्रतिदिन अलग-अलग होता है तथा इच्छित स्तर बनाए रखने के लिए इन पर

निरंतर निगरानी रखनी होती है। रोकड़, देनदार एवं स्टॉक जैसी चालू संपत्तियों में अधिक निवेश का अर्थ है निरर्थक संपत्तियों में कोषों को अवरुद्ध करना और क्योंकि इन कोषों का कहीं और उत्पादक उपयोग संभव नहीं था इस लिए नीची दर से प्रत्याय होगा। चालू संपत्तियों में अधिक निवेश से व्यवसाय का स्टॉक के न बिकने अथवा अप्राप्य ऋण के रूप में जोखिम की संभावना रहती है और यदि निवेश राशि कम है तो इसका अर्थ यह हो सकता है कि स्टॉक उपलब्ध नहीं होगा अथवा प्रतिदिन के कार्यों के लिए रोकड़ नहीं होगी, इससे विक्रय की हानि होगी। इस जोखिम को न्यूनतम स्तर पर लाना चाहिए। मूलत: कार्यशील पूंजी कितनी हो, यह जोखिम-प्रत्याय में सही अनुपात पर निर्भर करेगा।

परिचालन चक्र आपूर्ति ग्रहण करने एवं प्राप्त खातों से नकद वसूल करने के बीच की समय अवधि को कहते हैं। एक व्यापारिक इकाई में प्रचालन चक्र वस्तुओं को बेचने के लिए क्रय करने से प्रारंभ होता है। तथा वस्तुओं की बिक्री कर देनदारों से पैसा वसूल करने पर इसका अंत होता है। एक विनिर्माण व्यवसाय में कुछ और भी क्रियाएं करनी होती हैं; जैसे– कच्चे माल का क्रय, कच्चे माल को अर्धनिर्मित माल में परिवर्तित करना तथा अंत में इसको तैयार माल में बदल देना, तैयार माल को नकद बिक्री अथवा उधार विक्रय तथा देनदारों से रोकड़ प्राप्त करना। दोनों में ही तैयार माल अथवा कच्चे माल को प्राप्त करने के पहले चरण एवं रोकड़ वसूली के अंतिम चरण में समय का अंतराल होता है। इस समय अवधि को परिचालन चक्र कहते हैं। व्यवसाय निर्विघ्न रूप से चले इसके लिए परिचालन चक्र के दौरान कार्यों के विनियम के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। एक विनिर्माण इकाई के परिचालन चक्र की कुछ विशिष्ट अवस्थाएं होती है जो निम्न हैं :

(i) कच्चे माल को प्राप्त करना
(ii) श्रम शक्ति (बिजली) ईंधन एवं अन्य खर्चों का भुगतान
(iii) कच्चे माल को अर्ध निर्मित काल और फिर तैयार में परिवर्तित कर देना
(iv) तैयार माल का नकद अथवा उधार विक्रय यदि उधार बेचा है तो प्राप्त खातों को रोकड़ में बदलना।

इन अवस्थाओं के परिणामस्वरूप व्यवसाय में से रोकड़ का अंतर्प्रवाह तथा बाह्य प्रवाह होता है। कच्चे माल आदि के लिए भुगतान नियमित रूप से होता है। क्योंकि माल की उधार बिक्री होती है। इसलिए नकद भुगतान तो करना होता है। जबकि इसकी तुरंत वसूली नहीं हुई है। इसीलिए इन रोकड़ प्रवाहों में समय संबंधी तालमेल नहीं है क्योंकि भविष्य की लागत एवं बिक्री का सही अनुमान लगाना संभव नहीं है, इसलिए इन रोकड़ प्रवाहों में अनिश्चितता होती है। व्यवसाय में इन अनिश्चित एवं समय के संबंध में मेल रहित रोकड़ प्रवाहों को ध्यान में रखा जाता है। इस समय को पार करने के लिए कुछ पूंजी का होना आवश्यक है। ग्राहकों को उधार विक्रय की सुविधा तो देनी ही होती है और उनसे पैसे की उगाही अनिश्चित होती है। एक निर्बाध उत्पादन प्रक्रिया को सुनिश्चित करने के लिए कच्चे माल का संग्रहण आवश्यक है। ग्राहक से आदेश आने पर उनकी पूर्ति के लिए तैयार माल का स्टॉक रखा जाता है तथा न्यूनतम रोकड़ शेष भी रखना होता है। व्यवसाय निर्विघ्न रूप से चले, इसके लिए रोकड़ स्कंध एवं प्राप्य खातों में निवेश आवश्यक है। इसलिए किसी व्यवसाय के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता कंपनी की परिचालन अवधि पर निर्भर करेगी।

कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले तत्व

अत्यधिक कार्यशील पूंजी का परिणाम होता है कि अनावश्यक रूप से स्टॉक एवं निष्क्रिय कोष इकट्ठा

हो जाते हैं जिनसे कोई आय नहीं होती है। अपर्याप्त कार्यशील पूंजी के कारण परिचालन कुशलता में कमी आती है तथा साख गिरती है क्योंकि व्यवसायी आपने वायदों को पूरा नहीं कर पाता है। इसीलिए यह आवश्यकता है कि कार्यशील पूंजी की उचित राशि निर्धारित की जाए। वित्तीय प्रबंधक के लिए कार्यशील पूंजी की आवश्यकता का निरंतर अनुमान लगाना अनिवार्य है। जिससे कि बदलती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए बिना कोई देर किए परिवर्तित आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके। कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करने वाले महत्त्वपूर्ण तत्त्वों का वर्णन नीचे किया गया है:

(i) व्यवसाय की प्रकृति : कार्यशील पूंजी की राशि व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करती है। व्यापारिक व्यवसाय अथवा फुटकर दुकान में कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। क्योंकि अधिकांश लेन-देन नकद में होते हैं, परिचालन चक्र छोटा होता है। वस्तुओं के क्रय एवं उनकी बिक्री के बीच का समय अंतराल कम होता है तथा आवर्त उच्च होता है और फिर वस्तुओं का थोक व्यापारियों अथवा विनिर्माताओं से उधार क्रय किया जाता है। और उन्हें ग्राहकों को उधार बेचा जाता है। लेकिन जब फुटकर व्यापार विभिन्न प्रकार की वस्तुओं में बड़ी संख्या में होता है तो बड़ी मात्रा में स्टॉक रखना पड़ता है और विक्रय के लिए बड़ी मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता हो सकती है।

विनिर्माण व्यवसाय में कच्चे माल को तैयार माल में परिवर्तित किया जाता है। जिसमें लंबा समय लगता है। कच्चे माल, श्रम एवं अन्य खर्चों के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। उत्पादन प्रक्रिया के पूरे होने में समय लगता है। तैयार माल को कई बार उधार बेचा जाता है। इससे व्यवसाय में कोष के अंतर्प्रवाह में और देरी होती है। इसलिए एक विनिर्माण इकाई को और अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

(ii) व्यवसाय चक्र : किसी व्यावसायिक इकाई की कार्यशील पूंजी की आवश्यकता उसकी वस्तुओं की मांग एवं बिक्री पर निर्भर करती है। वस्तुओं की मांग एवं बिक्री उस समय बढ़ जाती है जब अर्थव्यवस्था तेजी के दौर से गुजर रही होती है। तेजी के साथ व्यावसायिक गतिविधियों को अधिक रोकड़ की आवश्यकता होती है, स्टॉक में माल अधिक रखना होता है तथा देनदारों पर अधिक राशि अवरुद्ध हो जाती है। जब अर्थव्यवस्था में मंदी का समय होता है तो व्यावसायिक क्रियाएं कम हो जाती हैं, वस्तुओं की मांग और उनके विक्रय की मात्रा कम हो जाती है। इससे स्टॉक भी कम रखना होता है और लेनदारी भी कम होती है। ऐसे समय में कोई अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता नहीं होती है। अर्थव्यवस्था में व्यवसाय संबंधी उतार-चढ़ाव से एक व्यावसायिक इकाई की कार्यशील पूंजी की आवश्यकताओं पर प्रभाव पड़ता है।

(iii) मौसमी क्रियाएं : जिन व्यवसायों में वस्तुओं का उत्पादन एवं उनकी मांग पूरे वर्ष समान रहती है उनके लिए कार्यशील पूंजी की मांग भी समान रहती है। कुछ वस्तुओं की मांग किसी एक विशेष मौसम में ही होती है। उस समय बिक्री बढ़ जाती है। मांग में वृद्धि होने पर उसे पूरा करने के लिए उत्पादन में भी वृद्धि की जाती है। परिणाम स्वरूप कम मात्रा में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। मंदी के समय में बिक्री कम होती है। इसलिए कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। ऐसे व्यवसायों में उत्पादन पूरे वर्ष होता है। जब मांग अधिक होती है उस समय के लिए माल का स्टॉक कर लेने से कार्यशील पूंजी की आवश्यकता में उतार-चढ़ाव को न्यूनतम किया जा सकता है। नीति की उपयोगिता केवल ऊन एवं एयर कंडीशनर जैसी टिकाऊ वस्तुओं के लिए ही है।

(iv) प्रौद्योगिक एवं उत्पादन चक्र: उत्पादन चक्र कच्चे माल को तैयार माल में परिवर्तित करने के बीच लगने वाले समय को कहते हैं। यदि इसमें समय अधिक लगेगा, अर्थात् उत्पादन चक्र जितना लंबा होगा उतनी ही अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। यदि उत्पादन में समय अधिक लगेगा तो इसका अर्थ है कि कच्चे माल, अर्धनिर्मित माल एवं स्टॉक में अधिक कोष अवरुद्ध हो जाएंगे। लंबी अवधि में दिन प्रतिदिन के परिचालन खर्चों की पूर्ति के लिए भी धन की आवश्यकता होती है। जब आधुनिक मशीन एवं प्रौद्योगिक का उपयोग किया जाता है। तब उत्पादन प्रक्रिया तीव्र होती है।, श्रम पर व्यय कम होता है और कच्चा माल तैयार माल में तेजी से परिवर्तित होता है। एवं कच्चे माल के स्टॉक में कम पूंजी अवरुद्ध होती है। इससे कम से कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है। लेकिन लंबा उत्पादन चक्र होने पर अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

(v) साख नीति या उधार संबंधी नीति : चालू संपत्तियों का एक भाग प्राप्य खाते में होते हैं। प्राप्य राशि की मात्रा फर्म की उधार विक्रय की नीति पर निर्भर करती है। उधार की नीति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्त्व हैं; जैसे– उद्योग का चलन, ग्राहकों की साख आदि। साख नीति औसत वसूली अवधि देनदारों के भुगतान के लिए समय की छूट में परिलक्षित होती है। औसत वसूली की अवधि जितनी लंबी होगी उतनी ही अधिक कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। वसूली मे ढील के कारण अप्राप्य ऋणों की संभावना रहती हैं और कार्यशील पूंजी में और अधिक कोषों की आवश्यकता होगी। इसीलिए ग्राहक की साख का भली-भांति मूल्यांकन की आवश्यक है और तदनुसार साख प्रदान की जानी चाहिए। इससे अवधि समाप्ति पर कोष संग्रहण की समस्या से बचा जा सकता है।

उधार नीति में कच्चा माल, तैयार माल आदि के आपूर्तिकर्ताओं द्वारा प्रद्त्त साख भी सम्मिलित है। साख की उदार शर्तों के होने पर कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी।

कार्यशील पूंजी इस पर भी निर्भर करती है कि फर्म देनदारों से कोष प्राप्ति एवं लेनदारों को भुगतान के समय में किस प्रकार से ताल-मेल बैठाती है। यदि फर्म लेनदारों को भुगतान एवं देनदारों से प्राप्ति के बीच अवधि को कम करने को सुनिश्चित कर देती है तो इससे कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होगी। यदि फर्म कच्चा माल, तैयार माल उधार खरीद रही है तथा वस्तुओं को नकद बेच रही है तो कार्यशील पूंजी में न्यूनतम निवेश की आवश्यकता होगी।

(vi) मूल्य स्तर में परिवर्तन : मूल्य स्तर में परिवर्तन का कार्यशील पूंजी पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि इस पर चालू संपत्तियों एवं उनकी लागत का सीधा प्रभाव पड़ता है। मूल्य में वृद्धि होने पर कच्चे माल एवं श्रम की लागत में वृद्धि होती है तो इससे कार्यशील पूंजी की आवश्यकता बढ़ जाएगी और यदि कंपनियां अपनी वस्तुओं के मूल्यों में तदनुसार वृद्धि कर पाती हैं तो उन्हें कार्यशील पूंजी की भारी समस्या का मुकाबला नहीं करना होगा। मूल्य वृद्धि का प्रभाव अलग-अलग व्यवसायों में अलग-अलग होगा।

(vii) बाज़ार प्रतियोगिता : यदि बाज़ार में प्रतियोगिता अधिक है तो ग्राहकों को उधार की सुविधा देने में उदारता बरतनी होगी जिससे फर्म की लेनदारी बढ़ जाएगी और कार्यशील पूंजी में अधिक कोष अवरुद्ध ज़ाएगा। स्टॉक में भी माल अधिक रखना पड़ेगा जिससे कि ग्राहक प्रतियोगिताओं के पास न चले जाए।

एक व्यवसाय जो लगभग एकाधिकार की स्थिति में है, के समक्ष ऐसी समस्याएं नहीं आएंगी। ग्राहक या तो अग्रिम पैसा देंगे या फिर आदेश देने के बाद उन्हें आपूर्ति के लिए इंतजार करना होगा।

लाभांश निर्णय के निर्धारक तत्व

वित्तीय प्रबंध का एक बड़ा निर्णय इस संबंध में होता है कि कंपनी के लाभों को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांट दिया जाए अथवा उनका कंपनी में संचय कर लिया जाए तथा उनका व्यवसाय में पुनर्निवेश कर दिया जाए। यह लाभांश संबंधी निर्णय कहलाता है। हम जानते हैं कि लाभांश का आशय कंपनी की अर्जनों के उस भाग से है जो कंपनी द्वारा अपने अंशधारियों में बांटा जाता है। जिस लाभ को व्यवसाय में रोक लेते हैं उसे धारित आय (Retained earning) कहते हैं। धारित आय इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह व्यवसाय के वित्तीयन का आंतरिक स्रोत है।

कंपनी की शुद्ध आय को दो भागों में विभक्त किया जाता है– धारित एवं लाभांश। यह कंपनी की लाभांश नीति का आधार है अर्थात् क्या लाभ को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांट दिया जाए अथवा दीर्घ अवधि परियोजनाओं के वित्तियन के लिए आय को रोक लिया जाए। ये दो दृष्टिकोण कंपनी की लाभांश नीति का मूल आधार हैं।

व्यवसाय की शुद्ध आय का पुनर्निवेश किया जा सकता है और इसे दीर्घ अवधि कोष का स्रोत माना जा सकता है। यदि कंपनी को लाभप्रद निवेश का अवसर मिलता है तो वह लाभ को आरक्षित करना चाहेगी तथा उन्हें लाभांश के रूप में न बांट कर कंपनी में निवेश कर देगी। परियोजना के लिए वित्त की आपूर्ति दो माध्यमों से हो सकती है – या तो बाह्य समता से पूंजी जुटाई जा सकती है या फिर धारित आय से आंतरिक वित्त जुटाया जा सकता है। धारित आय को स्रोत के रूप में प्राथमिकता दी जाती है क्योंकि न तो इसको जुटाने की कोई लागत होती है और न ही कोई कानूनी औपचारिकता। इस प्रकार से कंपनी तभी लाभांश देगी जब कि यह आय को लाभप्रद रूप से पुनर्विनियोग नहीं कर सकती। इस स्थिति में लाभांश का निर्णय अधिशेष अथवा निष्क्रिय निर्णय कहलाता है।

लाभांश नीति का एक और पहलू आय को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांटना है। यह अंशधारियों की वर्तमान आय की आवश्यकता तथा लाभांश अंशों के बाजार मूल्य पर प्रभाव, पर निर्भर करता है। सामान्यत: उच्च लाभांश के कारण अंशों के बाज़ार मूल्य में वृद्धि हो जाती है। तथा कम लाभांश के होने पर अंशों का बाज़ार मूल्य गिर जाता है। कुछ अंशधारी वर्तमान में लाभांश को पसंद करते हैं जिससे कि उनकी वर्तमान आय में वृद्धि हो जबकि अन्य भविष्य में उच्च दर के लाभांश को प्राथमिकता देते हैं। साधारणतया वेतनभोगी पैंशन पाने वाले सेवा निवृत्त तथा अन्य सीमित मासिक आय वाले लोगों के बारे में सत्य सिद्ध होता है। भविष्य में उच्च लाभांश के कारण शेयरों के बाज़ार मूल्यों में बढ़ोत्तरी हो सकती है। जिसकी परिणति स्वामियों की संपत्ती के मूल्य में वृद्धि के रूप में होती है परंतु कंपनी को अपने अंशधारियों को

दीर्घ अवधि वित्तीय नीति : लाभांश

28 अक्तूबर 1994 को Mc Donnel; Douglas कॉर्पोरेशन ने तीन परिवर्तनों की घोषणा की। कंपनी ने नकद लाभांश को 71% कर दिया, प्रत्येक अंश को तीन अंशों में विभक्त कर दिया, तथा अपने 39.5 मिलियन अंशों को लगभग 15% के पुन:क्रय की इच्छा प्रकट की। इस घोषणा पर बाज़ार की प्रतिक्रिया पक्ष में हुई तथा उसी दिन विघटन से पहले के शेयर की कीमत में 15.625 डॉलर की वृद्धि हुई। एक ही दिन के मूल्य परिवर्तन से स्वामी की दौलत में 61.77 मिलियन डॉलर (39.5 मिलियन शेयर में × 15.625 प्रतिशेयर) की वृद्धि हुई स्पष्ट है कि Mc Donnel Douglas की नई नीति को स्वामी की स्वीकृति प्राप्त हो गई।

प्रसन्न रखने के लिए पर्याप्त लाभांश देना होता है। (इसका विस्तृत वर्णन लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व 'वर्ग में' किया गया है),

यहां वित्त प्रबंधक की भूमिका महत्त्वपूर्ण हो जाती है। लाभांश नीति के उपर्युक्त पहलुओं के बीच उचित संतुलन बनाना आवश्यक है। जब कंपनी लाभ को भविष्य में विनियोजन के उद्देश्य से रोक लेती है तो अंशधारियों को लाभांश की मात्रा घट जाती है। लेकिन इससे कंपनी भविष्य में आय में वृद्धि करती है। दूसरी ओर जब कंपनी लाभांश में वृद्धि करती है तो अंशधारियों की वर्तमान आय बढ़ जाती है लेकिन भविष्य में आय कम हो सकती है क्योंकि लाभ को पुनर्विनियोग तो किया ही नहीं है। यह साधारणतया धनी निवेशकर्ता होते हैं जो लाभांश के कारण से अपने कर दायित्व को बढ़ाना नहीं चाहेंगे। दूसरी ओर, इसीलिए लाभांश नीति का मुख्य उद्देश्य शुद्ध आय को आदर्श रूप में बांटना है जिससे कि लाभांश का भुगतान किया जा सके तथा आय का संचय कर उसका पुनर्निर्माण वे इस उद्देश्य से किया जा सके कि अंशधारियों के अंशों की कीमत अधिकतम हो यह वित्तीय प्रबंध के कुल उद्देश्यों के अनुरूप हैं।

लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्व

लाभांश का निर्णय कई तत्त्वों के ध्यानपूर्वक विश्लेषण के पश्चात् लिया जाता है। एक दीर्घ अवधि लाभांश नीति को विकसित करने के लिए इन सभी तत्त्वों का विश्लेषण करना होगा।

(i) कंपनी की वित्तीय आवश्यकताएं : कंपनी की वित्तीय आवश्यकताएं इसकी विनियोजन आवश्यकताओं पर निर्भर करेंगी। यदि कंपनी के पास कुछ परियोजनाएं हैं जिसमें यह निवेश कर सकती है तो इसे कंपनी के लाभों को पुनर्विनियोग करना चाहिए। इस स्थिति में कंपनी अंशधारियों को कम लाभांश देगी तथा शेष लाभों को कंपनी में विनिवेश करेगी। इस कंपनियों को कई लाभप्रद विनिवेश के अवसर मिलते हैं तथा भविष्य में विकास के लिए इन्हें दीर्घ अवधि कोषों की आवश्यकता होती है।

उनके सामने अपनी परियोजना के लिए वित्त प्राप्ति के दो विकल्प होते हैं। अतिरिक्त क्षमता पूंजी बाज़ार से जुटाना अथवा अपनी आय का पुनर्निवेश करना। प्रतिधारित आय तुलना में मितव्ययी होती है क्योंकि इनकी प्रवर्तन लागत नहीं होती तथा इनकी कोई विधियक औपचारिकता भी नहीं होती है।

लेकिन यदि कंपनी के पास कोई विकास विनिवेश के अवसर नहीं हैं तो लाभ को अंशधारियों में लाभांश के रूप में बांटना ही उचित रहेगा।

पूर्ण रूप से विकसित कंपनियां अर्थात् जिनके पास निवेश के कम ही अवसर हैं, साधारणतया उच्च लाभांश देती है। विकासशील कंपनियां अर्थात् वह कंपनियां जिन्हें अपनी संपत्तियों के लिए लगातार वित्त की आवश्यकता रहती है, कम लाभांश देंगी।

(ii) लाभांश में स्थायित्व : अधिकांश कंपनियां स्थायी लाभांश नीति का पालन करती हैं। इस नीति का अंशों के बाज़ार मूल्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है । अंशधारी भी स्थायी लाभांश को अस्थिर की तुलना में अधिक महत्त्व देते हैं। स्थायी लाभांश के कुछ लाभ हैं – वह नियोजकों के मस्तिष्क से अनिश्चितता को दूर करते हैं तथा उनकी वर्तमान आय की इच्छा को पूरा करते हैं। आई.एफ.सी.आई. ,आई.डी.बी.आई. एवं यू.टी.आई. जैसे वित्तीय संस्थान भी इन कंपनियों में निवेश करना पसंद करते हैं क्योंकि ये नियमित रूप से लाभांश के भुगतान की नीति का पालन करती हैं। ये कंपनियाँ चाहती हैं कि वित्तीय संस्थान उनके अंशधारियों की सूची में सम्मिलित हों क्योंकि यह बड़ी मात्रा में निवेश करती हैं। कंपनी तीन प्रकार की नीति अपना सकती हैं :

(अ) प्रति शेयर सदा एक जैसा लाभांश अथवा लाभांश दर : इस दशा में प्रति वर्ष एक दर घोषित करती है। यह तभी संभव है जबकि कंपनी की आय स्थिर है। यदि कंपनी की आय बढ़ कर नए स्तर पर पहुंच जाती है तो लाभांश की दर बढ़ाई जा सकती है।

(ब) समान भुगतान अनुपात : कुछ कंपनियां अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत लाभांश के रूप में भुगतान करती हैं। ऐसे में कंपनी के लाभों के साथ-साथ लाभांश भी प्रतिवर्ष कम या अधिक होंगे। माना यह 20 प्रतिशत है तो आय के बढ़ने पर लाभांश बढ़ेगा और घटने पर कम होगा ।

(स) प्रति अंश एक समान लाभांश तथा अतिरिक्त लाभांश : इस स्थिति में प्रति अंश लाभांश की एक न्यूनतम राशि निश्चित है। इसके अतिरिक्त और भी लाभांश दिया जा सकता है। न्यूनतम राशि का भुगतान कर अंशधारियों को संतुष्ट रखा जा सकता है और कंपनी की आय में वृद्धि होने पर उनकी आय में वृद्धि की जा सकती है।

(iii) पूंजी बाज़ार का ध्यान रखना : जब भी किसी कंपनी को वित्त की आवश्यकता होती है तो वह पूंजी बाज़ार से अतिरिक्त समता पूंजी जुटा सकती है या फिर आय का संचय कर कम लाभांश दे सकती है। क्या यह पूंजी बाजार से पूंजी जुटा सकती है यह कंपनी की प्रसिद्धि, लाभ प्रदत्त के कीर्तिमान तथा पूंजी बाज़ार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यदि कंपनी की पूंजी बाज़ार में सरल प्रवेश है तो यह लाभांश की उदार नीति अपना सकती हैं और यदि पूंजी बाज़ार तक पहुंच सीमित है तो यह कम लाभांश देगी तथा अपने दीर्घ अवधि कार्यक्रमों के लिए वित्त की आपूर्ति प्रतिधारित आय (Ratained Barnings) से करेगी । अत: एक कंपनी की लाभांश की नीति इसकी पूंजी बाज़ार तक पहुंच एवं कोष जुटाने की क्षमता पर निर्भर करेगी।

(iv) अंशधारियों की प्राथमिकताएं : अंशधारी कंपनी के स्वामी होते हैं इसलिए कंपनी के प्रबंधकों एवं निर्देशकों को उनकी प्राथमिकताओं को महत्त्व देना चाहिए। यदि वह वर्तमान में आय चाहते हैं तो वह लाभांश को प्राथमिकता देंगे।

छोटे एवं अवकाश प्राप्त अंशधारी जो अंशों में इस आशा से निवेश करते हैं कि उन्हें नियमित आय होगी, की स्थिर एवं नियमित लाभांश में रुचि होगी। एक सीमित लोगों की कंपनी के समान यदि अंशधारियों की संख्या कम है तो प्रबंधक अंशधारियों की प्राथमिकता को जानते हैं तथा ऐसी लाभांश नीति अपनाते हैं जो अधिकांश अंशधारियों को संतुष्ट करती है। एक व्यापक अंशधारियों की कंपनी, जिसमें बड़ी संख्या में अंशधारी होते हैं, में अंशधारियों की इच्छा को जानना कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में कंपनी बहुसंख्यक अंशधारियों के हितों की पूर्ति करने वाली नीति को अपनाएगी। लेकिन साथ ही अन्य की अनदेखी नहीं करेगी।

धनी निवेशक अंशों में पैसा पूंजीगत लाभ अर्जित करने के लिए लगाते हैं वे उच्च आयकर वर्ग में आते हैं। इसलिए वह वर्तमान में लाभांश को कम पसंद करते हैं क्योंकि इसके कारण उन पर कर भार बढ़ जाएगा ।

(v) लाभांश भुगतान पर विधेयक रोक एवं प्रतिबंध : एक कंपनी को अपनी लाभांश नीति की रचना इस पर लागू कानूनी सीमाओं के अंतर्गत करनी होती है। भारतीय कंपनी अधिनियम में लाभांश भुगतान संबंधी कुछ प्रावधान हैं। लाभांश का भुगतान वर्तमान अथवा पूर्व लाभों में से अवक्षयण घटाकर ही किया जा सकता है। कंपनियां दत्त पूंजी में से लाभांश का भुगतान नहीं कर सकती क्योंकि इसे पूंजी में कटौती माना जाएगा। विधेयक नियम वह सीमाएं हैं जिनके भीतर रहकर कंपनी को लाभांश का भुगतान करना होता है।

(vi) बोनस अंश : अधिकांश कंपनियां नकद में लाभांश देती है इसे रोकड़ लाभांश कहते हैं। लेकिन कंपनी कभी–कभी बोनस शेयर भी जारी कर देती है जिसे हम स्कंध लाभांश कहते हैं। बोनस अंशों के कारण अंशों की संख्या बढ़ जाती है और कंपनी का पूंजी आधार भी बढ़ जाता है। इसी समय यह नियोजकों को भी प्रसन्न रखती है क्योंकि इसके कारण आय में वृद्धि होगी तथा भविष्य में भी वृद्धि होती रहेगी।

(vii) स्फीति : स्फीति का भी कंपनी के लाभांश संबंधी निर्णय पर प्रभाव पड़ता है। मूल्यों में वृद्धि के कारण कंपनी को अपनी संपत्तियों के लिए आंतरिक स्रोत से वित्तीयन के लिए और अधिक कोषों की आवश्यकता होगी। हो सकता है कि उन पर अवक्षयण का जो प्रावधान किया गया है। वह पुरानी संपत्तियों के स्थान पर नई संपत्तियों के लिए पर्याप्त न हो। ऐसी स्थिति में कंपनियां उच्च लाभांश नहीं दे सकती क्योंकि दीर्घ अवधि वित्तीयन के लिए उन्हें प्रतिधारित आय पर निर्भर करना होगा।

सारांश

अर्थ

वित्तीय प्रबंध का संबंध कोषों के कुशल संग्रहण एवं आबंटन से है। कार्यात्मक दृष्टि से इसका संबंध कोषों के प्रवाह के प्रबंधन से है। इसमें कोषों को जुटाना, दीर्घ अवधि एवं अल्प अवधि संपत्तियों में उनका विनियोजन तथा लाभ का स्वामियों में वितरण सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में, वित्तीय प्रबंध का केंद्रबिंदु तीन महत्त्वपूर्ण वित्तीय निर्णय क्षेत्र हैं। ये हैं : निवेश, वित्तीयन एवं लाभांश वित्तीय प्रबंध को उद्देश्य।

वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य कंपनी के शेयरों के वर्तमान मूल्यों को अधिकतम ऊंचाई पर लाना है। दूसरे शब्दों में, वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य कंपनी के अंशधारियों की अंश संपत्ति को अधिकतम मूल्यवान बनाना है।

वित्तीय प्रबंधक को निवेश के उन मार्गों की पहचान करनी होती है एवं कार्यशील पूंजी के विभिन्न घटकों से व्यवहार के तरीकों की पहचान करनी होती है जिनके कारण अंशों के मूल्य में वृद्धि होगी।

वित्त कार्य

(i) निवेश संबंधी निर्णय : इसका संबंध उन संपत्तियों का ध्यानपूर्वक उपयोग करना है जिनमें कंपनी अपने कोषों का निवेश करेगी।

(ii) वित्तीयन निर्णय : इन निर्णयों का संबंध वित्त के विभिन्न स्रोतों का सापेक्षित संघटित करने से है।

(iii) लाभांश संबंधी निर्णय : लाभांश से संबंधित निर्णयों का संबंध अर्जित आय के आबंटन से है। इसके अंतर्गत दो विकल्प होते हैं या तो अर्जित लाभ का प्रतिधारण कर लिया जाए अथवा इसे अंशधारियों में वितरित कर दिया जाए।

वित्तीय नियोजन

वित्तीय नियोजन का अर्थ है आप के पास उपलब्ध कोषों के संबंध में कितनी राशि खर्च करनी है एवं किस पर खर्च करनी है।

व्यवसाय के लिए कोष की आवश्यकता का अनुमान लगाने एवं स्रोतों का निर्धारण करने की प्रक्रिया को वित्तीय नियोजन कहते हैं।

वित्तीय नियोजन का क्षेत्र विस्तृत होता है इसमें दीर्घ अवधि विकास एवं निवेश तथा वित्त प्रदान करने संबंधी निर्णय सम्मिलित होते हैं।

पूंजी संरचना ढांचा

पूंजी सरंचना का अर्थ ऋण एवं समता में वह अनुमान व्यवसाय के कार्यों के लिए वित्त उपलब्ध कराया जाता है। वित्त के कुशलतम उपयोग के लिए ऋण एवं समता में उचित अनुपात का होना आवश्यक है। पूंजी संरचना आदर्श मानी जाएगी जबकि ऋण एवं समता में अनुपात इस प्रकार है कि इससे अंश धाटियों के अंश के मूल्य में वृद्धि होगी।

एक उचित पूंजी ढांचे। संरचना के लक्षण प्रत्याय; जोखिम, लोच, क्षमता, नियंत्रण एवं वित्तीय उत्तोलन अंशधारियों की आय (प्रतिअंश आय) में वृद्धि हेतु समता अंशों के साथ-साथ जब पूंजी ढांचे में निश्चित दर से ब्याज/लाभांश वाले ऋण पत्रों के निर्गमन के लिए समता अंशों को आधार बनाया जाता है और इस प्रकार समता पूंजी के साथ ऋण पत्रों का उपयोग किया जाता है, इसीलिए समता पर व्यापार कहते हैं।

पूंजी निर्धारक तत्त्व

(i) *वित्तीय उत्तोलन :* एक वित्तीय प्रबंधक को विस्तार से जांच कर लेनी चाहिए कि प्रस्तावित वित्तीय मिश्र किस प्रकार से स्वामियों की जोखिम एवं प्रत्याय को प्रभावित करेगा। वित्तीय उत्तोलक जोखिम की उस राशि पर निर्भर है जो एक कंपनी उठाने के लिए तैयार है।

(ii) *रोकड़ प्रवाह योग्यता :* पूंजी ढांचे की संरचना से संबंधित निर्यात व्यवसाय को स्थायी देयता का भुगतान करने के लिए पर्याप्त एकड़ प्राप्त कर लेनी की योग्यता पर भी निर्भर करता है। पूर्व निश्चित देनदारियों में ऋण की मूल राशि, जिसका भुगतान करना है सम्मिलित है।

(iii) *नियंत्रण* : समता अंशधारियों का कंपनी के प्रबंध में हस्तक्षेप रहता है। ऋण पत्रधारियों का व्यवसाय के प्रबंधन में कोई अधिकार नहीं होता है। पूर्व अंशधारियों को सीमित अधिकार मिला होता है। वह केवल अपने लाभांश को प्रभावित करने वाले में ही साधारण सभा में वोट दे सकते हैं।
कंपनी पर नियंत्रण का अधिकार उन कंपनियों में अधिक महत्त्व रखता है जिनके अंशधारियों की संख्या कम होती है। इन्हें रूप से जुड़े लोगों की कंपनी कहते हैं।

(iv) *लोचपूर्णता :* कंपनी का पूंजी ढांचा इस प्रकार का हो कि आवश्यकता पड़ने पर इसे परिवर्तित परिस्थितियों के अनुसार ढाला जा सके। पूंजी ढांचा इतना लोचपूर्ण होना चाहिए कि बिना अनावश्यक देरी के एवं लागत के अतिरिक्त धन जुटाया जा सके।

(v) *बाज़ार की परिस्थितियां :* पूंजी बाज़ार की परिस्थितियां भी पूंजी संरचना संबंधी निर्णयों को प्रभावित करती हैं। हो सकता है कि ये प्रारंभिक ढांचे को प्रभावित न करें लेकिन जब कंपनी अतिरिक्त पूंजी जुटाना चाहती है तब अंश अथवा ऋण पत्रों के निर्गमन का ध्यान रखना महत्त्व रखता है।

(vi) *निर्गमन लागत:* निर्गमन लागत अंश एवं ऋण पत्रों के निर्गमन पर आने वाली लागत को कहते हैं। इस लागत में विज्ञापन अभिगोपन, वैधानिक फीस, प्रविवरण पत्र की छपाई आदि के व्यय सम्मिलित है। यह तत्त्व बहुत महत्त्वपर्ण होता जा रहा है क्योंकि इस प्रकार की लगाव बढ़ती ही जा रही है और कभी-कभी तो यह करोड़ों रुपए में होती है।

(vii) *कानूनी ढांचा:* कंपनी को कानून द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत कार्य करना होता है। कंपनी अधिनियम एवं प्रतिभूति एवं विनिमय बोर्ड सार्वजनिक कोष जुटाने के संबंध में समय-समय पर दिशा निर्दश देते रहते हैं।

पूंजीकरण

पूंजीकरण का अर्थ है पूंजी का मूल्यांकन तथा यह स्वामीगत कोष, ऋणगत कोष दीर्घ अवधि ऋण, संचित एवं अन्य आधिक्य आय से मिलकर बनती है। इनकी तीन स्थिति हो सकती है: (अ) *उचित अथवा साधारण पूंजीकरण:* व्यवसाय में सही मात्रा में पूंजी लगी है। (ब) *अतिपूंजीकरण:* व्यवसाय में आवश्यकता से अधिक पूंजी लगी है। (स) अब पूंजीकरण व्यवसाय में आवश्यकता से पूंजी लगी है।

अतिपूंजीकरण के कारण

(i) उच्च प्रवर्तन लागत (ii) संपत्तियों की अनावश्यक रूप से ऊंची कीमतें (iii) तेजी का समय में मुद्रा स्फीति (iv) अवक्षयण के लिए अपर्याप्त प्रावधान (v) लाभांश की उदार नीति (vi) पूंजी की कमी अब पूंजीकरण अब पूँजीकरण अतिपूंजीकरण का उलट है।

1. एक कंपनी का अवपूंजीकरण की स्थिति होंगी जबकि प्रवर्तन के समय भविष्य की आय का अनुमान कम आंका गया।
2. आय में अप्रत्याशित वृद्धि

अवपूंजीकरण के कारण

(i) अनुमानित आय वास्तविक आय से कम
(ii) मंदी के समय में कंपनी की स्थापना
(iii) विस्तृत लाभांश नीति

अवपूंजीकरण के प्रभाव

(i) कंपनी पर प्रभाव (ii) समाज पर प्रभाव स्थायी पूंजी का प्रबंधन
स्थायी पूंजी का प्रबंधन अथवा निवेश अव पूंजी बजट बनाना निम्न कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं।
(अ) दीर्घ अवधि विकास एवं प्रभाव
(ब) बड़ी मात्रा में धन का लगा होना
(स) जोखम
(द) निर्णय जिनको उलटा नहीं जा सकता

कार्यशील पूंजी अर्थ एवं तत्त्व

कार्यशील पूंजी की दो धारणाएं हैं : सकल कार्यशील पूंजी एवं शुद्ध कार्यशील पूंजी

परिचालन चक्र एवं कार्यशील पूंजी

चल संपत्ति में पूंजी निवेश प्रतिदिन बदलता रहता है तथा इस पर निगाह रखनी होती है जिससे कि यह अपेक्षित स्तर पर रहे।

परिचालन चक्र माल की आपूर्ति तथा देनदारों से वसूली के बीच की समय अवधि होती है। व्यापारिक इकाई में परिचालन चक्र विक्रय के लिए मान्य क्रय से प्रारंभ होता है और विक्रय के पश्चात् देनदारों से वसूली पर समाप्त होता है।

एक विनिर्माण इकाई कुछ अन्य क्रियाएं करती है जैसे – कच्चे माल का क्रय कर इसे निर्माण प्रक्रिया में ले जाना और अंत में तैयार माल में परिवर्तन कर देना, तैयार माल को नकद अथवा उधार बेचना और फिर देनदारों से राशि वसूल करना।

कार्यशील पूंजी की आवश्यकता को प्रभावित करने वाले तत्त्व :

ये तत्त्व हैं :

(1) व्यवसाय की प्रकृति : कितनी कार्यशील पूंजी चाहिए यह व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। एक व्यापारिक इकाई को कम कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है क्योंकि अधिकांश लेन-देन नकद होती है तथा पारिचालन चक्र छोटा होता है। वस्तु के क्रय एवं इसकी बिक्री के बीच समय अवधि छोटी होती है तथा आवर्त अधिक होता है।

2. व्यापार चक्र: कार्यशील पूंजी की मात्रा माल की मांग एवं इसके विक्रय पर भी निर्भर करती है जो अर्थव्यवस्था में तेजी के समय बढ़ जाती है।
3. मौसमी कार्यकलाप: जिन वस्तुओं की मांग पूरे वर्ष एक समान रहती है, उनका उत्पादन करने वाली इकाइयों की कार्यशील पूंजी की आवश्यकता भी एक जैसी रहती है उनके मामलों में कार्यशील पूंजी की आवश्यकता कम। अधिक होती रहती है।
4. तकनीक एवं उत्पादन : कच्चे माल को तैयार माल में बदलने को उत्पादन चक्र कहते हैं। उत्पादन चक्र यदि लंबा होगा तो कार्यशील पूंजी की भी अधिक मात्रा में आवश्यकता होगी।
5. उधार की नीति: कार्यशील पूंजी का एक घटक प्राप्य खाते होते हैं जिनकी मात्रा सघटन की उधार नीति पर निर्भर करती है। उधार नीति उद्योग की मान्यताओं, ग्राहकों की साख आदि कई तत्त्वों पर आधारित होती है।
6. मूल्य स्तर में परिवर्तन: इनका कार्यशील पूंजी पर बहुत प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह सीधे चालू संपत्तियों एवं उनकी लागत से जुड़े हैं। मूल्य के बढ़ने पर कच्चे माल एवं श्रम लागत बढ़ जाती है जिससे कार्यशील पूंजी में वृद्धि होती है।
7. प्रतियोगिता : अधिक प्रतियोगिता होने पर उधार विक्रय में उदारता दिखाई जाती है, जिससे देयता अधिक हो जाते हैं तथा कार्यशील पूंजी अधिक मात्रा में अवरुद्ध हो जाएगा।

लघु उत्तर प्रश्न

1. व्यवसाय वित्त को परिभाषित कीजिए।
2. पूंजीकरण से क्या अभिप्राय है ?
3. पूंजी संरचना / पूंजी ढांचे का अर्थ बताइए।
4. वित्तीय नियोजन के विभिन्न पहलुओं को समझ कर लिखिए।
5. अंशधारक के घन को अधिकतम बनाना वित्तीय प्रबंध का उद्देश्य है। वर्णन कीजिए।
6. अति पूंजीकरण एवं अव पूंजीकरण की व्याख्या करें।
7. समता पर व्यापार के कारण समता अंशों के प्रत्याय में किस प्रकार से वृद्धि होती है ? उदाहरण सहित समझाइए।
8. अव पूंजीकरण का एक प्रभाव यह है कि अंशों के बाज़ार मूल्य में वृद्धि हो रही है। लेकिन फिर भी अव पूंजीकरण कंपनी के लिए लाभकारी नहीं माना जाता। ऐसा क्यों ?
9. लाभांश निर्णय को अवशिष्ट निर्णय कब माना जाता है?

दीर्घ उत्तर प्रश्न

1. वित्तीय प्रबंधन से आपका क्या अभिप्राय है ? वित्त कार्य के तीन मुख्य निर्णय का वर्णन कीजिए।
2. वित्तीय नियोजन का क्या अर्थ है ? वित्तीय प्रबंधन में वित्तीय नियोजन के महत्त्व की विवेचना कीजिए।
3. निम्न लिखित में अंतर स्पष्ट कीजिए :
   (i) पूंजीकरण एवं पूंजी संरचना / ढांचा
   (ii) अति पूंजीकरण एवं अव पूंजीकरण
4. पूंजी संरचना के नियोजन के समय कंपनी को किन-किन तत्त्वों का ध्यान रखना चाहिए ?
5. अति पूंजीकरण के कारण एवं परिणामों का वर्णन कीजिए।
6. कार्यशील पूंजी-निर्धारक तत्त्वों का वर्णन कीजिए।
7. कंपनी की लाभांश नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व का वर्णन कीजिए।

पूंजी बाज़ार

अधिगम उद्‌देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप :

- पूंजी बाज़ार की अवधारणा एवं प्रकृति को बता सकेंगे;
- मुद्रा बाज़ार का अर्थ बता सकेंगे;
- पूंजी बाज़ार एवं मुद्रा बाज़ार में अंतर कर सकेंगे;
- स्कंध विनिमय के कार्यों को समझा सकेंगे;
- NSEI की प्रकृति एवं उद्‌देश्य को समझा सकेंगे; तथा
- भारतीय प्रतिभूति विनिमय बोर्ड (SEBI) के उद्‌देश्य एवं कार्यों को बता सकेंगे।

विभिन्न उद्‌योगों में से श्रेष्ठतम कंपनियों में से कुछ इस वर्ष 15,000 करोड़ रुपए जुटाने की योजना बना रही है। इससे ऐसा लगता है कि प्रारंभिक बाज़ार फिर से सक्रिय हो जाएगा तथा लघु निवेशकर्ता की वापसी होगी जिसका काफी समय से इंतज़ार था। वास्तव में पूंजी बाज़ार के इतिहास में अन्य किसी समय इतनी संभावित ब्ल्यू चिप कंपनियां अपने शेयर बेचने के लिए लाइन में नहीं लगी। अंतिम गिनती करने पर 84 कंपनियां थी जो सूचियन की योजना बना रही थीं तथा 10 सर्वोच्च कंपनियां अपने शेयर बेचने की योजना बना रही थीं जिनकी कीमत 15,000 करोड़ रुपए से भी अधिक थी। निवेशकों के लिए आकर्षण उन कंपनियों के नाम में हैं जो शेयर बेचने के लिए प्रस्ताव कर रहे हैं। उदाहरण के लिए Tata Consultancy Services (TCS), Maruti Udyog, Biocon, Daks Services, Idea Cellular, LG Electronics कुछ ऐसी कंपनियां हैं जो प्रथम बार अंशों का सार्वजनिक निर्गमन कर रही हैं। इतना ही नहीं ये तो उद्‌योग के मानक हैं इसलिए यह अत्यधिक आकर्षक दावों में से है। DSI के वाइस चेयरमैन एवं प्रबंध निदेशक मैरिल लिंच का कहना है: "मैं प्राथमिक बाज़ार के प्रति अति उत्साहित हूँ। आश्वस्त हूँ। निवेशक उन प्रतिभूतियों को खरीदना चाहेंगे जिनका पुराना कीर्तिमान अच्छा हैं तथा जिनका मूल्य आकर्षित कर रहा है।"

ऊर्जा एवं वित्त सेवा क्षेत्र में मूल रूप से सशक्त कंपनियां हैं जैसे– भारत पैट्रोलियम, ONGC इंडियन ऑयल, नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन, आंध्रा बैंक एवं बैंक ऑफ महाराष्ट्र। संस्थागत एवं फुटकर निवेशकों में से इनके खरीददार मिल जाएंगे। इसके परिणामस्वरूप द्‌वितीयक माध्यमिक बाज़ार और अधिक गहन एवं विस्तृत हो जाएगा। इस बाज़ार को छोटा निवेशकर्ता घोटालों के कारण काफी समय पहले ही छोड़ चुका था।

दलाल स्ट्रीट के विश्लेषणकर्ताओं से बात करके देखें। वे आपको बताएंगे कि अब शेयर बाज़ार के पुनः पुनर्जीवित/सक्रिय होने का सर्वाधिक अनुकूल समय है। भारत पाक तनाव में कमी आई जो स्वागत योग्य है। गुजरात में लगी आग भी अब ठंडी पड़ती नजर आ रही है। यदा-कदा की गुणवत्ता चीनी को छोड़कर विनिवेश का भविष्य भी उज्ज्वल नजर आ रहा है। केतन पारिख के घोटाले को लोग तेजी से भूलते जा रहे हैं। तथा नए घोटालों की संभावना दिखाई नहीं दे रही है (वैसे वर्ष का अभी प्रारंभ ही है)।

इतना ही नहीं है। सेबी (SEBI)को पहले से भी अधिक अधिकार मिल चुके हैं। इसलिए घोटालों से अधिक तेजी से एवं सख्ती से निपटा जाएगा। उदाहरणार्थ यदि कंपनी में आंतरिक क्रय-विक्रय होता है तो सेबी को यह अधिकार है कि वह 25 करोड़ रुपए तक का जुर्माना कर सकती है अथवा लाभ का तीन गुणा वसूल कर सकती है। सूचियन को सरल बना दिया गया है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि अधिकांश शेयर भाव पर तय मूल्यों पर खरीदे जा सकते हैं। Franklin Templeton Investments के प्रधान का कहना है जोखिम प्रतिफल का समीकरण अब समता अंशों के पक्ष में है क्योंकि ऋण पर 6-7 प्रतिशत से अधिक मिलने की संभावना नहीं है तथा समता में आकर्षण है।

वरिष्ट उपाध्यक्ष DSP मैरिल लिंच का कहना है कि द्वितीयक बाज़ार में यदि स्थायित्व आता है तो इससे IPOS को बढ़ावा मिलेगा। आप शायद जान भी न पाए हो कि चुपके से IPO का पुनर्जीवन हो चुका है। I-Flex, PNB एवं केनेरा बैंक के निगमित को निवेशकों ने हाथों हाथ लिया। पिछले वर्ष प्राथमिक बाज़ार में केवल छः कंपनियां आई तथा मात्र 1981 करोड़ रुपए ही जुटा सकीं। निवेशकों को इनसे अब तक अच्छा प्रतिफल मिला है। उदाहरण के लिए I-flex का 550 रु. पर सूचियन हुआ लेकिन आज 854 रु. बोली जा रही है। इसी प्रकार से केनेरा बैंक अपने सूचियन मूल्य 35 रुपए से काफी ऊपर 47.45 पैसे हैं। इसीलिए आश्चर्य मत कीजिए कि जिनको बड़ी आशा के साथ आगे लाए थे वह आशा से नीचे रहे। फिर भी IPO का बाज़ार का निष्पादन बहुत अच्छा है।

निवेश के क्षेत्र में आकर्षण दिखाई देता है। उदाहरण के लिए बायोकोन इंडिया को लें। यद्यपि इसका निगमित 150 करोड़ रुपए का है जो एक साधारण राशि है लेकिन इससे निवेश को भविष्य में बायो-टैक उद्योग में निवेश के अवसर दिखाई देते हैं। बायोकोन इंडिया के चेयरमैन तथा मैनेजिंग डाइरेक्टर का कहना है : मुझे अगले पांच वर्ष में क्षेत्र के आवर्त में रेखा गणितीय वृद्धि की संभावना दिखाई देती है। इसी प्रकार से दक्ष-ए-सर्विसेज IPO (इसकी मात्रा का अभी पता नहीं है) की भी भारी मांग होगी क्योंकि तेजी वाली BPO उद्योग का एक मात्र जिसमें पिछले वर्ष ही 70 प्रतिशत का विकास हुआ और 2010 तक इसकी आगम प्राप्ति 20 बिलियन डॉलर हो सकती है।

इन दो के अतिरिक्त मारुति, नैलको, बी. पी. सी. एल. एवं टी. सी. एस. में प्राथमिक बाज़ार में प्रतिक्षित लहर को प्रेरित करने की क्षमता है। यह सभी भारी लाभ देने वाले शेयर हैं।

प्रत्येक व्यक्ति तो तेजड़िया नहीं होता। Value Research के मुख्य विश्लेषणकर्ता ने इशारा किया कि यद्यपि 84 IPOs कतार में खड़ी हुई है। लेकिन उनमें से मुट्ठी भर ने ही सेबी से स्वीकृति मांगी है। मारुति का प्रस्तावित मूल्य 2300 रुपए प्रति शेयर है। छोटे निवेशकों के लिए यह काफी अधिक मूल्य है। लेकिन कुछ लोग इससे सहमत नहीं हैं जैसे कि इनाम सिक्योरिटिज (Enam Securities) के निर्देशक। भारतीय परिवार 100 बिलियन डॉलर (420000 करोड़ रुपए) के लगभग प्रतिवर्ष बचाते हैं। सूचीकृत भारतीय कंपनियों का बाज़ार अधिकतम 125 बिलियन डॉलर (600000 करोड़ रु.) का है। इसलिए हम कह सकते हैं कि धन कोई समस्या नहीं है समस्या है तो निवेशकों में विश्वास एवं उत्साह पैदा करने की।

परिकल्पना एवं प्रकृति

पूंजी बाज़ार की परिकल्पना एवं प्रकृति को वित्त बाज़ार के संदर्भ में समझा जा सकता है। बचत एवं निवेश प्रक्रिया में वित्त बाज़ार एक कड़ी का काम करता है। यह मुद्रा, पूंजी अथवा वित्तीय संसाधनों को बचतकर्ता से ऋण लेने वाले उद्यमियों को हस्तांतरित करने में सहायक होते हैं। बचत वे परिवार करते हैं जिनकी आय उनके खर्चों से अधिक होती है। कंपनी एवं फर्म भी आय को संचित कर बचत करती है। यह बचत स्वामियों की होती है। निवेश क्रियाएं व्यावसायिक क्षेत्र द्वारा की जाती हैं। इन्हें घाटे की इकाई कहा जाता है। व्यावसायिक क्षेत्र वस्तु एवं सेवाओं के उत्पादन के लिए प्रयोग कर आधिक्य इकाइयों की

बचत को निवेश में बदल देता है। इस प्रकार से बचत एवं निवेश कार्यों को दो भिन्न समूह करते हैं। वित्त बाज़ार उनके बीच मध्यस्थ का कार्य करता है। वह बचत और अधिशेष वाली इकाइयों और बचत एवं घाटे वाली इकाइयों के बीच एक कड़ी एवं माध्यम का काम करते हैं। इस प्रकार से वित्त बाज़ार ऋण लेने वालों एवं ऋण देने वालों को मिलवाता है तथा उन लोगों को धन उपलब्ध कराता है जो उसका उपयोग करने के बदले प्रतिफल देने को तैयार हैं।

वित्त बाज़ार के दो प्रमुख भाग हैं (i) पूंजी बाज़ार– मध्य अवधि एव दीर्घ अवधि वित्त के लिए बाज़ार (ii) मुद्रा बाज़ार – अल्प अवधि वित्त के लिए बाज़ार।
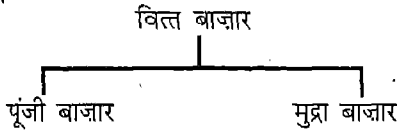
पूंजी बाज़ार

पूंजी बाज़ार मध्य अवधि एवं दीर्घ अवधि वित्त का बाज़ार है। इससे अभिप्राय: उन सभी संगठनों, संस्थानों एवं उपकरणों से है जो दीर्घ अवधि वित्त प्रदान करते हैं। इसमें अल्प अवधि वित्त बाज़ार सम्मिलित नहीं है जिसमें भुगतान अवधि एक वर्ष से कम है। जहां तक इस अध्याय का संबंध है जो संगठन एवं संस्थान पूंजी बाज़ार के घटक हैं उनमें नए निर्गम बाज़ार एवं शेयर बाज़ार सम्मिलित हैं। (म्यूच्यूअल फंड, बीमा कंपनियां, निवेश बैंक भी पूंजी बाज़ार के घटक हैं लेकिन इनका वर्णन इस पुस्तक में नहीं किया गया है)। पूंजी बाज़ार व्यावसायिक क्षेत्र की लंबी अवधि की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान देता है। व्यावसायिक इकाइयां इस बाज़ार का दीर्घ अवधि के निवेश हेतु वित्त जुटाने के लिए उपयोग करती हैं। यह निवेश हैं : प्लांट, मशीनें एवं भवन आदि का क्रय। पूंजी

पूंजी बाज़ार

	इकाई	94-95	95-96	96-97	97-98	98-99	99-2000	2000-01	2000-02
पूंजी निर्गम	अरब रु.	480	309	290	494	437	659	484	437
• सार्वजनिक क्षेत्र	अरब रु.	131	134	172	317	308	415	312	333
• निजी क्षेत्र	अरब रु.	349	175	118	177	129	244	172	104
• समता	अरब रु.	347	201	128	177	117	249	142	54
• ऋण	अरब रु.	133	108	162	317	320	410	342	383
• सूचीबद्ध कंपनियां	सं.	4702	5603	5832	5853	5848	5889	5953	5782
• BSE का विपणी पूंजीकरण	अरब रु.	4334	5266	4639	5603	5429	9128	6255	6122
• विपणी पूंजीकरण	GDP का %		41.8	43.2	32.9	33.8	30.9	4.66	28.6
• NIE के कुलशेर मूल्य सूचांक पर प्रतिफल		-7.5	-18.1	-16.5	9.2	-1.8	88.3	-39.3	10.8
• BSE के कारोबार की मात्रा	अरब रु.	677	501	1227	2073	3108	6850	9562	3071
• NSE के कारोबार की मात्रा	अरब रु.	-	682	2945	3702	4145	8346	12508	5132

स्रोत: मंथली रिव्यू, सेंटर फॉर मोनीटरिंग इंडियन इकोनॉमी

बाज़ार से विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों को निर्गमित कर धन एकत्रित किया जाता है। प्रतिभूतियों से अभिप्राय पूंजी जुटाने के लिए प्रयुक्त बड़ी संख्या में विलेखों के समूह से है। ये विलेख हैं :

- समता शेयर अथवा स्वामीगत प्रतिभूतियां;
- ऋण पत्र अथवा साख प्रतिभूतियां;
- पूर्वाधिकार शेयर अथवा पूर्वाधिकार दावे वाली प्रतिभूतियां।
- अन्य नए प्रकार की प्रतिभूतियां जो प्रचलित प्रतिभूतियों से भिन्न है, क्योंकि इनमें कुछ अतिरिक्त विशेषताएं हैं तथा इनके कारण निवेशकों को चयन के अधिक अवसर प्राप्त हो जाते हैं। इनके उदाहरण हैं शून्य ब्याज बांड, एवं अधिक छूट वाले बांड इत्यादि।

पूंजी बाज़ार के निम्न मुख्य घटक हैं : (i) प्राथमिक अथवा नए निर्गमनों का बाज़ार (ii) द्वितीयक बाज़ार अथवा स्टॉक एक्सचेंज।

प्राथमिक बाज़ार (नए निर्गमनों का बाज़ार)

यह बाज़ार नई दीर्घ अवधि की पूंजी के लिए होता है। प्राथमिक बाज़ार वह बाज़ार है जिसमें प्रतिभूतियों को प्रथमवार बेचा जाता है। यह नए निर्गमों अर्थात् नई

नवीनता युक्त प्रतिभूतियां

भारतीय अर्थव्यवस्था में वित्तीय एवं आर्थिक सुधार किए गए हैं जिनके कारण कुछ नए एवं नवीनता लिए हुए वित्तीय उपकरण प्रचलन में आए हैं उनमें से कुछ को नीचे समझाया गया है :

1. ***शून्य ब्याज बांड (ZIBs) :*** शून्य ब्याज बांड प्रथम बार महिंद्रा एंड महिंद्रा ने जारी किए थे। इन बांडों पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता। इनको भुगतान मूल्य से कम पर बेचा जाता है तथा इनका 5 वर्ष के अंत में सममूल्य पर शोधन किया जाता है। निवेशकों को कोई ब्याज नहीं मिलता है। उन्हें भुगतान के समय केवल मूल राशि प्राप्त करने का अधिकार है। इस प्रकार से निवेशकर्ता को वार्षिक ब्याज का लाभ नहीं है बल्कि अंकित मूल्य अर्थात् राशि जो भुगतान तिथि पर मिलेगी एवं छूट के साथ बांड के क्रय मूल्य के बीच अंतर ही उसका लाभ होगा। निवेशकर्ता को प्राप्त लाभ पर पूंजी लाभ कर लगेगा। इससे भी निवेशकर्ता को लाभ मिलेगा क्योंकि पूंजीगत लाभ पर टैक्स की दर कम होती है। भुगतान के समय बांडों को समता शेयरों में परिवर्तित किया जा सकता है अथवा अपरिवर्तनीय ऋण पत्रों में परिवर्तित किया जा सकता है लेकिन यह कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं पर निर्भर करता है।
2. ***भारी बट्टे वाले बांड (DDBs):*** यह बांड सर्वप्रथम IDBI ने जारी किए थे। यह लगभग ZIBs जैसे ही होते हैं अंतर केवल इतना है कि यह लंबी अवधि के लिए निर्गमित किए जाते हैं इसलिए इनके अंकित मूल्य पर बट्टे की राशि बहुत अधिक होती है। IDBI ने 1 लाख रुपए के अंकित मूल्य के बांड को भारी बट्टा काटकर मात्र 2700 रु. में बेचा। 2700 रु. का भुगतान कर निवेशकर्ता को 1 लाख रुपए के अंकित मूल्य का बांड प्राप्त हो गया जिसकी भुगतान अवधि 25 वर्ष है। निवेशकर्ता को छूट दी गई कि वह यदि चाहे तो बांड को भुगतान तिथि तक अपने पास रख सकता है। या फिर 5 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर शेयर बाज़ार में बेच सकता है। DDBs की विशेषताएं / लाभ निम्नलिखित हैं :

- सरलता से नकद में परिवर्तनीय (तरलता)।
- उच्च आय प्राप्ति (लगभग 15% वार्षिक)।
- 25 वर्ष के लिए विनियोजक को जोखिम से छुटकारा। हो सकता है कि अर्थव्यवस्था में ब्याज की दर गिर जाए लेकिन नियोजन सुरक्षित हैं क्योंकि उसके बांड की अंकित कीमत कम नहीं हो सकती। कर का लाभ-विक्रय मूल्य एवं मूल्य जिस पर बांड को प्राप्त किया गया है में अंतर पूंजीगत लाभ माना जाता है। इसीलिए इस पर चालू आय की तुलना में टैक्स कम दर से लगाया जाता है।

पूंजी का बाज़ार है इसीलिए इसे नए निर्गमन का बाज़ार (NIM) भी कहते हैं। प्राथमिक बाज़ार की एक प्रमुख विशेषता है कि इसमें क्रेता नई निर्गमित प्रतिभूतियों का क्रय करता है। प्राथमिक निर्गमन में कंपनी प्रतिभूतियों को सीधे निवेशकर्ता को जारी करती है। कंपनी को पैसा मिलता है और बदले में वह निवेशकर्ता को नई प्रतिभूतियों के प्रमाण पत्र जारी कर देती है। प्राथमिक निर्गमों का उपयोग कंपनी नए व्यापार खोलने अथवा पुरानों का विस्तार करने अथवा उनके आधुनिकीकरण के लिए करती है। प्राथमिक बाज़ार अर्थव्यवस्था में पूंजी निर्माण में महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। इस बाज़ार के माध्यम से अधिशेष इकाइयों की बचत को घाटे की इकाइयों को हस्तांतरित कर देती है जो राशि को भवन प्लांट, मशीन तकनीक क्रय आदि में निवेश कर देती है। नए निर्गमनों का बाज़ार में अन्य दूसरे नए दीर्घ अवधि बाह्य स्रोत जैसे वित्तीय संस्थानों में ऋण/सम्मिलित नहीं है। नए निर्गमनों के बाज़ार में ऋण प्राप्तकर्ता निजी पूंजी को सार्वजनिक पूंजी में परिवर्तित कर पूंजी जुटाते हैं। इसको सार्वजनिक होना कहते हैं।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है जिन प्रतिभूतियों का प्राथमिक बाज़ार में निर्गमन किया जाता है उनमें सभी दीर्घ अवधि वित्तीय विलेख सम्मिलित हैं; जैसे– समता शेयर, ऋण पत्र, बांड, पूर्वाधिकार शेयर अथवा इनके नूतन परिवर्तित रूप। ये प्रतिभूतियां प्राथमिक बाज़ार में निम्न में से किसी भी पद्धति द्वारा निर्गमित की जा सकती हैं। (i) प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावना (ii) अधिकार निर्गमन (निवर्तमान कंपनियों के लिए) (iii) पूर्वाधिकार अंश:

(i) प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावना (IPO): जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है IPO किसी कंपनी द्वारा प्रतिभूतियों की प्रथम बार बिक्री है। IPO को निम्न में से किसी भी पद्धति द्वारा किया जा सकता है:

(अ) प्रविवरण पत्र के द्वारा सार्वजनिक निर्गमन : इस पद्धति में पूंजी जुटाने के लिए इच्छुक कंपनी निवेशकर्ताओं को सूचित करने एवं आकर्षित करने के लिए प्रविवरण पत्र जारी करती है। यह संभावित विनिवेशकों को प्रतिभूतियों के क्रय के लिए प्रार्थना पत्र देने के लिए आमंत्रित करती है। प्रविवरण पत्र में राशि जुटाने के उद्देश्य, कंपनी की वित्त के क्षेत्र की पिछली उपलब्धियां तथा प्रवर्तकों की पृष्ठभूमि एवं अनुभव के संबंध में विस्तृत विवरण दिया होता है। इन विस्तृत जानकारियों का उद्देश्य आम जनता को आय प्राप्ति तथा प्रस्तावित निवेश की जोखिम के संबंध में जानने एवं इनका मूल्यांकन करने में सहायता देना है। सार्वजनिक निर्गमन में कंपनी आम जनता तक पहुंचती है तथा बड़ी संख्या में मध्यस्थों को अपने साथ जोड़ती है; जैसे– बैंकर्स, ब्रोकर्स एवं अभिगोपनकर्ता।

(ब) बिक्री का प्रस्ताव: इस पद्धति में नई प्रतिभूतियों को निवेश करने वाले लोगों को बेचने के लिए निर्गमित करने वाली कंपनी प्रस्तावित नहीं करती बल्कि यह कार्य बिचौलिया / मध्यस्थ करता है। यह मध्यस्थ पूरी की पूरी प्रतिभूतियों को एक निश्चित मूल्य पर खरीदकर पुन: ऊंचे दामों पर जनता में बेच देता है। इस पद्धति का एक लाभ यह है कि निर्गमन करने वाली कंपनी जनता को सीधे जारी करने की जटिल प्रक्रिया से बच जाती है।

(स) निजी तौर पर बिक्री: निजी विक्रय में समस्त नई प्रतिभूतियों को एक मध्यस्थ निश्चित मूल्य पर क्रय कर लेता है और उन्हें जन साधारण को न बेचकर कुछ चुनींदा लोगों को ऊंची कीमत पर बेच देता है। जैसे कोई वित्त कंपनी एक निश्चित मूल्य पर किसी कंपनी के नए अंशों अथवा ऋण पत्रों को खरीद सकती है। बाद में यह कंपनी इन्हें निजी तौर पर प्रतिष्ठानों को बेच सकती है, जैसे बीमा कंपनियों को एवं निवेश न्यास कंपनियों को। इस पद्धति में

कंपनी कोई प्रविवरण पत्र जारी नहीं करती क्योंकि निर्गम को मुख्य रूप से सभ्रांत निवेश प्रतिष्ठानों; जैसे– UTI, LIC, GIC आदि को बेचा जाता है।

प्रतिभूतियों की निजी तौर पर बिक्री को पसंद किया जाता है क्योंकि यह एक सार्वजनिक निर्गम की तुलना में वित्त जुटाने की बहुत ही कम खर्चीली पद्धति है। सार्वजनिक निर्गम अनेक संवैधानिक खर्चों के कारण मंहगा होता है ये खर्चे हैं अभिगोपन दलाली, प्रबंधन फीस, प्रविवरण पत्र की घोषणा, विज्ञापन, सचियन व्यय, आवंटन एवं आबंटन अस्वीकृत पत्रों को भेजने का डाक व्यय, प्रक्रिया लागत, रजिस्ट्रार के खर्चे इत्यादि। इनके अतिरिक्त कुछ गैर संवैधानिक व्यय भी हैं जैसे प्रविवरण पत्र की छपाई प्रार्थना के फार्म, विवरणिका आदि। छोटी कंपनियां

पूंजी बाज़ार बल्यू चिप, आई. पी. ओ. निर्माण के दौर में

स्टॉक	शेयर निर्गम का आकार (करोड़ रु. में)	विनियोजक क्यों खरीदना चाहेंगे
टी.सी.एस (TCS)	5000	भारत की सबसे बड़ी एवं सबसे पुरानी कंपनी है तथा विश्व की तीव्रतम गति से विकास कर रही कंपनियों में से एक।
ओ.एन.जी.सी. ONGC	2000	भारत की सर्वाधिक मूल्यावान एकीकृत तेल कंपनी जिस पर कोई ऋण नहीं है तथा जिसका लाभ 6197 करोड़ रुपए है।
इंडियन ऑयल	1600	भारत की अग्रणी राष्ट्रीय तेल कंपनी जिसकी कुल पैट्रोलियम उत्पादों में 53% की भागीदारी है।
एन.टी.पी.सी. (NTPC)	1,500	भारत की एक विशाल विद्युत् कंपनी जो देश की कुल बिजली का 26% उत्पादन करती है।
आइडिया सेल्यूलर	1000	एक टाटा–बिरला–एटी एंड टी कंपनी जो टेलीकॉम सैक्टर में विनियोजकों को पहले से ही उपलब्ध विकल्पों में वृद्धि करेगी।
एल.जी. इलेक्ट्रॉनिक्स	1000	पिछले पांच वर्षों में कोरिया की चैबाल ने 15000 करोड़ रुपए की उपभोक्ता वस्तुओं के बाज़ार में प्रथम स्थान बना लिया है।
पॉवर फाईनेंस कॉर्पोरेशन	1000	पूर्णतया सरकारी स्वामित्व बिजली प्रखंड का एक वित्तीय संस्थान जिसे एक मिनी रत्न माना जाता है।
मारुति उद्योग	828	कंपनी में सुजुकी की इतनी हिस्सेदारी है और उसका नियंत्रण है इसलिए बाज़ार में प्रथम स्थान पर बने रहने की संभावना बहुत अधिक है।
रिलायंस इंफोकॉम	800	ब्लू चिप रिलायंस उद्योग उभरते टेलीकॉम क्षेत्र में सबसे बड़ा खिलाड़ी।
बी.पी.सी.एल.	750	भारत की दूसरी सबसे बड़ी तेल विपणन कंपनी जिसका आवर्त 8679 करोड़ रुपए हैं।

स्रोत : बिजिनेस टुडे

प्राथमिकता पर निर्गमन का दुरुपयोग

SEBI द्वारा जारी दिशा निर्देशों से पहले पूर्वाधिकार निर्गमन का बहुत अधिक दुरुपयोग हो रहा था। कंपनी को केवल साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करना होता था। क्योंकि अंशधारी पूरे देश में और दूसरे देशों में फैले होते थे। इसलिए कंपनियों के लिए विशेष प्रस्ताव पास कराना सरल हो जाता था। परिणामस्वरूप साधारण अंशधारी को भारी राशि की हानि होती थी और इस प्रक्रिया में प्रवर्तकों, संबंधियों सहयोगियों को अप्रत्याशित लाभ हो जाता था।

उदाहरण के लिए नब्बे के दशक के प्रारंभ में केस्ट्रॉल इंडिया का बाज़ार भाव 1050 रु. था। जनक कंपनी को प्राथमिकता पर आबंटन के माध्यम से यह अंश 110 रु. में प्राप्त हो गए। इसी प्रकार से कोलगेट इंडिया ने पूर्वाधिकार आबंटन 60 रु. प्रतिशेयर से किए जब कि प्रचलित बाज़ार भाव 700 रु. का था। अन्य बहुत सी कंपनियों ने भी प्रचलित बाज़ार भाव से भारी छूट पर पूर्वाधिकारिक आबंटन किए। ये कंपनियां थीं केडबरी, कलर केम, हिंदुस्तान लीवर, प्रोक्टर एंड गैम्बल एवं ग्लैक्सी।

सार्वजनिक निर्गम द्वारा वित्त जुटाने का व्यय वहन नहीं कर सकती। इसीलिए वह निजी तैयार पर विक्रय बाज़ार में जाना पसंद करती हैं।

(ii) अधिकार निर्गम (निवर्तमान कंपनियों के लिए) : यह एक कंपनी द्वारा अपने निवर्तमान अंशधारियों को नए अंशों की प्रस्तावना है। प्रत्येक अंशधारक को उसके पास पहले से ही जो शेयर हैं। उनके अनुपात में नए शेयर खरीदने का अधिकार है। एक शेयरधारक प्रस्ताव को अपने लिए स्वीकार कर सकता है या फिर वह पूरे अधिकार को अथवा इसके एक भाग को दूसरे को सौंप सकता है। इस प्रकार के अधिकार निर्गम एक शेयरधारक के लिए मूल्यवान होते हैं क्योंकि यह चालू मूल्य से कम मूल्य पर प्राप्त हो जाते हैं अधिकार निर्गम अतिरिक्त पूंजी जुटाने का कम खर्चीला एवं सुविधाजनक तरीका है। विशेष रूप से यदि पहले से ही निर्गमित राशि की तुलना में अब अपेक्षित राशि साधारण है।

अधिकार अंशों का निर्गमन अनिवार्य रूप से निवर्तमान अंशधारकों को किया जाता है। स्पष्ट रूप से बिना वर्तमान शेयरधारकों को नए अंश, शेयर खरीदने का अवसर यदि उन्हें बाहर के व्यक्तियों को जारी किया जाता है तो इससे निवर्तमान अंशधारियों को कुल पूंजी में आनुपातिक भागीदारी कम हो जाएगी अर्थात् इससे उनका स्वामित्व का अधिकार कम हो जाएगा। इसीलिए स्टॉक एक्सचेंज किसी सूचीकृत कंपनी को नए शेयरों के निर्गमन बिना निवर्तमान शेयर धारकों को पूर्व क्रम अधिकार के, अनुमति नहीं देती है।

(iii) पूर्वक्रम निर्गम : यह एक चलन है जिसे कंपनी मानती है और यह कुछ चुनींदा लोगों को पूर्वक्रम से प्रतिभूतियों का आबंटन वर्तमान बाज़ार मूल्य से भिन्न मूल्य पर करती है। ये लोग सामान्यत प्रवर्तक होते हैं। इसका लाभ है कि राशि, सार्वजनिक निर्गम अथवा निजी व्यवस्था पद्धति की तुलना में न्यूनतम लागत पर प्राप्त हो जाती है, लेकिन अधिमान्य आबंटन का कई बार कंपनियों ने दुरुपयोग किया है।

द्वितीयक बाज़ार (स्टॉक एक्सचेंज)

स्टॉक एक्सचेंज प्रतिभूतियों का द्वितीयक बाज़ार है। यह पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय का बाज़ार है। इस बाज़ार में प्रचलित प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। द्वितीय बाज़ार का यह नाम इस तथ्य के कारण पड़ा है कि यह प्रतिभूतियों का उद्गम स्थल नहीं है। बल्कि यहां उसके बाद के क्रय-विक्रय संबंधी लेन-देन होते हैं। इस बाज़ार में प्रतिभूतियों का निर्गमन कंपनी सीधे विनियोजक को नहीं करती। पूर्व

निर्गमित प्रतिभूतियों को निवर्तमान विनियोजक दूसरे विनियोजक को बेच देता है। इस लेन–देन में कंपनी बिल्कुल भी सम्मिलित नहीं है। कोई भी प्रतिभूति धारक इसे बेच सकता है। इसी प्रकार से निवेश की इच्छा रखने वाला कंपनी द्वारा पहले से ही निर्गमित प्रतिभूति को खरीदने की सोच सकता है। एक इच्छुक क्रेता कंपनी से प्रतिभूति नहीं खरीद सकता क्योंकि कंपनी सार्वजनिक निर्गमन के समय ही इन्हें बेच चुकी होती है। इसी प्रकार से एक इच्छुक विक्रेता कंपनी के पास प्रतिभूति की भुगतान तिथि से पहले भुगतान वापसी के लिए नहीं जा सकता।

द्वितीय बाज़ार वह स्थान है जहां एक कंपनी की प्रतिभूति का धारक विनियोजक इसे जब चाहे रोकड़ में परिवर्तित कर सकता है। इसी प्रकार से एक विनियोजक जो किसी एक कंपनी में अपनी पूरी बचत लगाना चाहता है वह उस कंपनी की पूर्व निगर्मित प्रतिभूतियों को खरीद सकता है। द्वितीयक बाज़ार अथवा स्टॉक बाज़ार ऐसे ही क्रेता एवं विक्रताओं के हित साधने के लिए होता है। इच्छुक क्रेता एवं विक्रेताओं के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे एक दूसरे को जानते हों। स्टॉक एक्सचेंज में दलालों की आवश्यकता उनके बीच मध्यस्थ का कार्य करने के लिए होती है। क्रेता एवं विक्रेता दोनों ही 2 ब्रोकर नियुक्त कर देते हैं जो उनकी ओर से लेन–देन सौदे करते हैं। माना आपके पास इंफोसिस के 500 शेयर हैं और आप उन्हें बेचना चाहते हैं। आपने एक शेयर ब्रोकर से संपर्क किया तथा उसे इन शेयरों को बेचने के लिए कहा। आपका ब्रोकर दूसरे ऐसे ब्रोकर को ढूंढ़ेगा जिसका ग्राहक इंफोसिस के शेयर खरीदना चाहता है। आपका ब्रोकर उसका दूसरे ब्रोकर से सौदा

प्राथमिक एवं द्वितीयक बाज़ार – एक तुलना

प्राथमिक बाज़ार (नए निर्गमों का बाज़ार)	द्वितीयक बाज़ार (स्टॉक एक्सचेंज)
• इसमें नयी कंपनियों द्वारा प्रतिभूतियों का विक्रय होता है अथवा निवर्तमान कंपनियों द्वारा निवेशकों को नई प्रतिभूतियों का निर्गमन।	• इसमें केवल निवर्तमान शेयरों का ही व्यापार होता है।
• इसमें प्रतिभूतियों को कंपनी सीधे नियोजक को बेचती है (अथवा किसी मध्यस्थ के द्वारा)।	• निवर्तमान प्रतिभूतियों का निवेशकों के बीच विनिमय होता है। इसमें कंपनी की कोई भूमिका नहीं होती।
• इसमें कोष बचतकर्ताओं से निवेशकों को जाता है। अर्थात प्राथमिक बाज़ार प्रत्यक्ष रूप से पूंजी निर्माण को बढ़ावा देता है।	• यह शेयरों की रोकड़ में परिवर्तनीयता (तरलता) को बढ़ाती है। अर्थात् द्वितीय बाज़ार परोक्ष रूप से पूंजी निर्माण को बढ़ावा देता है।
• प्राथमिक बाज़ार में प्रतिभूतियों का केवल क्रय होता है इनको बेचा नहीं जा सकता।	• स्टॉक एक्सचेंज में प्रतिभूतियों का क्रय एवं विक्रय दोनों होता है।
• इसमें मूल्य का निर्धारण एवं उसके संबंध में निर्णय कंपनी का प्रवंध लेता है।	• इसमें मूल्यों का निर्धारण प्रतिभूति की मांग एवं पूर्ति के द्वारा होता है।
• कोई स्थायी भौगोलिक स्थान निश्चित नहीं है।	• स्थान निश्चित होता है।

डिस्काउंट एंड फाइनैंस हाउस ऑफ इंडिया लि. (DFHI)

DFHI की स्थापना RBI ने 1988 में मुद्रा बाज़ार के एकमुश्त सुधार के एक भाग के रूप में की थी। यह एक सार्वजनिक क्षेत्र का संस्थान है जिसकी स्थापना मुद्रा बाज़ार के उपकरणों के क्रय-विक्रय क्रिया के माध्यम से मुद्रा बाज़ार को स्थायित्व प्रदान करने के लिए की गई है। इसने भारत की एक विशिष्ट संस्थान की लंबी अवधि की आवश्यकता को पूरा किया है। यह बैंक एवं वित्तीय संस्थानों से बिलों एवं अन्य लघु अवधि के पत्रों का क्रय-विक्रय करता है। जब भी आवश्यकता हो बैंक लघु अवधि की प्रतिभूतियों को बेचकर कोष प्राप्त कर सकते हैं और इससे उनके निवेशों पर भी प्रभाव नहीं पड़ेगा। DFHI बैंक एवं वित्तीय संस्थानों को यह सुविधा प्रदान करता है कि वह अपने लघु अवधि बचत कोष को बिल एवं लघु अवधि पत्रों में विनियोजित करे। DFHI लघु अवधि मुद्रा बाज़ार में काफी सक्रिय रही है एवं मुद्रा बाज़ार के कुल स्थायित्व में इसका प्रभावी योगदान रहा है। यह हाल ही के वर्षों में मुद्रा बाज़ार के विलेखों की DFHI की कुल आवर्त से स्पष्ट है।

स्रोत : RBI की वार्षिक रिपोर्ट

पक्का कर लेगा। आपकी ओर से वह शेयरों को दूसरे ब्रोकर को दे देगा तथा उससे रोकड़ प्राप्त कर लेगा।

द्वितीयक बाज़ार का पूंजी निर्माण में सीधा योगदान नहीं होता है। कंपनी न तो कोई पैसा लेती है और न ही कोई पैसा देती है। द्वितीयक बाज़ार तो मात्र वर्तमान प्रतिभूतियों को विक्रेता-क्रेता को हस्तांतरित करता है। लेकिन ऐसा कर एक महत्वपूर्ण कार्य का निर्वाह करता है। इससे विनियोजन को तरलता प्राप्त होती है तथा प्रतिभूतियों की विपणन योग्यता बढ़ जाती है। तरलता से अभिप्राय संपत्ति को (जैसे शेयर) रोकड़ में परिवर्तन में करने में लगने वाले समय से है। इसका अभिप्राय किसी संपत्ति को विपणन के द्वारा नकद में परिवर्तन करने की क्षमता से है। शेयर, डिबेंचर आदि प्रतिभूतियों की तरलता स्टॉक बाज़ार के कारण संभव है। जो विनियोजक थोड़ी अवधि के लिए धन को निवेश करना चाहते हैं। वह ऐसा इसलिए कर सकते हैं क्योंकि उनके पास द्वितीय बाज़ार में इन प्रतिभूतियों को बेचने का विकल्प मौजूद रहता है।

मुद्रा बाज़ार

मुद्रा बाज़ार लघु अवधि कोषों का बाज़ार है जिनका एक वर्ष की अवधि के अंदर उपयोग कर लिया जाता है। मुद्रा बाज़ार एक ओर तो नकद की लघु अवधि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोष जुटाने का माध्यम है और दूसरी ओर आधिक्य कोषों को एक वर्ष या उससे कम अवधि के लिए लगा देने का माध्यम है। व्यावसायिक इकाई की दृष्टि से देखें तो मुद्रा बाज़ार कार्यशील पूंजी के लिए वित्त का प्रमुख स्रोत है। मुद्रा बाज़ार में, रोकड़ के रूप में ऋण देना एवं लेना एवं उन प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय, जिनकी अवधि एक वर्ष तक की है, के लेन-देन सम्मिलित हैं। मुद्रा बाज़ार के उपकरण वे प्रतिभूतियां हैं जिनका शोधन बहुत की कम समय में होता है और जिनकी अदायगी न करने का जोखिम बहुत ही कम है।

भौगोलिक रूप से मुद्रा बाज़ार किसी स्थान विशेष को नहीं कहते हैं। यह शब्द उन सभी संगठनों एवं संस्थानों के लिए प्रयुक्त होता है जो लघु अवधि ऋण विलेखों में लेन-देन करते हैं अथवा लेन-देन को सुविधा जनक बनाते हैं। इन संस्थानों में रिजर्व बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, दूसरे वाणिज्यिक बैंक, सहकारी बैंक, LIC, GIC, UTI, Discount and Finance House of India (DHFI) (देखें बॉक्स) एवं अन्य सभी जो मुद्रा में लेन-देन करते हैं अथवा जिनके पास ऋण लेने अथवा ऋण देने के लिए पर्याप्त बचत है, सम्मिलित हैं। इन संस्थानों में से

अधिकांश केवल टेलीफोन, फैक्स आदि के माध्यम से लेन-देन करते हैं।

मुद्रा बाज़ार के महत्त्वपूर्ण विलेख अथवा प्रतिभूतियां इस प्रकार हैं : (i) मांग मुद्रा (ii) निधि बिल (T Bills) (iii) व्यापार पत्र (iv) वाणिज्यक पत्र (CP) (v) जमा प्रमाण पत्र (CD)।

(i) मांग मुद्रा: अधिकांश बैंकों के दिन प्रतिदिन के आधिक्य कोषों का मुद्रा के रूप में व्यापार होता है। ऋण प्राप्तकर्ता वह बैंक होते हैं जिनके पास नकद की अस्थायी कमी होती है। इसका कारण संचय की आवश्यकता अथवा कोषों की आकस्मिक मांग है। ऋण देने वाले वह बैंक हैं जिनके पास से अस्थायी रूप से रोकड़ का आधिक्य है। इसी कारण से इसे अंतर बैंक मांग मुद्रा बाज़ार कहते हैं। लेकिन बीमा कंपनी म्युच्यूअल फंड एवं वित्त कंपनियां जैसे वित्तीय संस्थान मांग मुद्रा बाजार में लघु अवधि साख के आपूर्तिकर्ता के रूप में कार्यरत है। मांग मुद्रा बाज़ार मूलत: टेलोफोन पर आधारित बाज़ार है। कॉल मुद्रा कोष बहुत छोटी अवधि के लिए होते हैं। जिसका नवीनीकरण कराया जा सकता है और नहीं भी तथा तरलता की दृष्टि से केवल रोकड़ के बाद इसका स्थान है। भुगतान समय अत्यधिक कम होता है कभी-कभी तो मात्र एक दिन ही होता है।

(ii) निधि बिल (T. Bill) : ट्रेजरी बिलों को RBI द्वारा भारत सरकार की ओर से लघु अवधि की देयता के रूप में निर्गमित किया जाता है तथा इन्हें बैंकों एवं जन साधारण में बेचा जाता है निर्गमिता समय 14 दिन से 364 दिनों तक का होता है। T Bill विनियम साध्य विलेख होते हैं। तथा इनको स्वतंत्रता पूर्वक हस्तांरित किया जा सकता है। इन पर कोई ब्याज नहीं दिया जाता बल्कि यह कटौती पर जारी किए जाते हैं। इनकी विपणीयता के कारण ही ये सर्वप्रिय हैं तथा इन्हें एक सुरक्षित निवेश माना जाता है।

(iii) व्यापारिक बिल : व्यापारिक बिल एवं सहायक बिल एक व्यावसायिक फर्म द्वारा दूसरी फर्म पर लिखे जाते हैं। यह लघु अवधि प्रपत्र होते हैं जो साधारणतया 90 दिन के लिए निर्गमित किए जाते हैं। ये स्वयं परिशोधित होते हैं क्योंकि भुगतानकर्ता इनका भुगतान निश्चित तिथि को भुगतान करता है। व्यापारिक बिल का विपणन स्वतंत्रतापूर्वक होता है। व्यापारिक बिलों का क्रय कर एवं उनको भुनाकर बैंक व्यावसायिक क्षेत्र को कार्यशील पूंजी के लिए वित्त प्रदान करते हैं। एक व्यापारिक बिल, बिल के लेखा द्वारा ऋण की लिखित स्वीकृति है जिसमें निर्धारित व्यक्ति की निधरित राशि का भुगतान का निर्देश दिया गया है। एक बिल के अंकित मूल्य एवं भुगतान तिथि से पूर्व इसके भुगतान की राशि अंतर बट्टा कहलाता है।

(iv) वाणिज्यिक पेपर (CP)***:*** मुद्रा बाज़ार के उपकरण के रूप में CP को भारत में 1990 में लाया गया। CP एक गैर जमानती प्रतिज्ञा पत्र है जिसे निगम एक निश्चित अवधि, जो 12 महीने तक की होती है; के लिए जारी करती है। क्योंकि CP गैर जमानती होते हैं यह केवल उच्च साख वाली सम्मानित अग्रणी फर्मों द्वारा ही जारी की जाती है। CP से केवल कार्यशील पूंजी के लिए ही राशि प्राप्त की जाती है। व्यापारिक बैंक तथा म्युचुअल फंड ही इन उपकरणों में प्रमुख निवेशक हैं।

(v) जमा प्रमाण पत्र (CD) : एक जमा प्रमाण पत्र एक सावधिकर जमा अथवा अवधि जमा है जिसे द्वितीयक बाज़ार में बेचा जा सकता है। CD का निर्गमन केवल बैंक ही कर सकते हैं। यह सावधि जमा का अधिकार पत्र होता है। यह एक धारक प्रमाण पत्र होता है। तथा बाज़ार में विनियम साध्य होता है। यह कंपनियों एवं संस्थानों द्वारा जमा राशि के विरुद्ध बैंक द्वारा जारी किया जाता है। इसकी समय अवधि 91 दिन से एक वर्ष तक की होती है। बैंकों

CDs और FDs में अंतर

जमा प्रमाण पत्र (CD)	सावधि जमा (FD/TD)
• CDs स्वतंत्र रूप से विनिमय साध्य हैं।	• यह स्वतंत्र रूप से विनियम साध्य नहीं है (यद्यपि इन्हें रेहन रखा जा सकता है)।
• CDs को सामान्यत: 91 दिन से 1 वर्ष तक के लिए निर्गमित किया जा सकता है।	• FDs को कम से कम 14 दिनों के लिए जारी किया जा सकता है। लेकिन इन्हें कितने भी समय के लिए जारी किया जा सकता है।
• CDs वास्तविक जमा राशि पर कटौती काटकर जारी की जा सकती है।	• FDs वास्तविक जमा राशि के बदले जारी की जाती।

को इन विलेखों को भुनाने अथवा विनिमय करने की अनुमति नहीं होती है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विभिन्न क्षेत्र; जैसे– सरकार, निगम एवं बैंकों के लिए निर्धारित मुद्रा बाज़ार प्रलेख हैं जिनमें यह एक दूसरे से लेन-देन कर सकते हैं। उपर्युक्त सारणी में प्रत्येक प्रखंड के लिए प्रमुख मुद्रा बाज़ार प्रलेखों का वर्गीकरण किया गया है।

पूंजी बाज़ार एवं मुद्रा बाज़ार में अंतर

इन दो बाज़ारों में प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं :

(i) भाग लेने वाले : पूंजी बाज़ार में भाग लेने वाले हैं वित्तीय संस्थान, बैंक, निर्गमित इकाइयां, विदेशी निवेशक एवं जनता में से साधारण फुटकर विनियोजक। मुद्रा बाज़ार में अधिकांश भाग लेने वाले रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, वित्तीय संस्थान एवं वित्त कंपनियों जैसे संस्थान हैं। यद्यपि व्यक्ति भी निजी तौर पर द्वितीय बाज़ार में लेन-देन कर सकते हैं लेकिन सामान्यत: वह ऐसा करते नहीं हैं।

(ii) प्रलेख : पूंजी बाज़ार में जिन प्रलेखों में लेन देन किया जाता है उनके प्रमुख हैं : समता अंश, ऋण पत्र, बांड्स पूर्वाधिकार अंश इत्यादि। मुद्रा बाज़ार में जिन प्रपत्रों में व्यापार होता है उनमें प्रमुख हैं लघु अवधि के ऋण प्रपत्र जैसे – टी. बिल, व्यापार बिल वाणिज्यिक पेपर एवं जमा प्रमाण पत्र।

(iii) निवेश राशि : पूंजी बाज़ार में प्रतिभूतियों में निवेश के लिए बहुत बड़ी मात्रा में वित्त का होना आवश्यक नहीं है। प्रतिभूति की इकाइयों का मूल्य साधारणतया कम ही होता है जैसे 10 रु. या फिर 100 रु.। इसी प्रकार से शेयरों के व्यापार के लिए न्यूनतम संख्या छोटी ही रखी जाती है जो 50 अथवा 100 हो सकती है। इससे नियोक्ता अपनी छोटी बचत से इन प्रतिभूतियों को खरीद सकते हैं। मुद्रा बाज़ार में सौदों के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता होती है।

(iv) अवधि : पूंजी बाज़ार के दीर्घ अवधि एवं मध्य अवधि की प्रतिभूतियों के सौदे होते हैं जैसे समता अंश एवं ऋण पत्र। मुद्रा बाज़ार में प्रपत्र अधिकतम एक वर्ष के लिए होते हैं। कभी-कभी तो यह एक दिन के लिए भी जारी किए जाते हैं।

(v) तरलता : पूंजी बाज़ार की प्रतिभूतियों को तरल निवेश माना जाता है क्योंकि इनका स्टॉक एक्सचेंज में क्रय-विक्रय हो सकता है। यह अलग बात है कि कोई शेयर में व्यापार सक्रिय रूप से नहीं हो रहा है अर्थात् उसका कोई क्रेता नहीं है। मुद्रा बाज़ार प्रपत्र अधिक तरल होते हैं क्योंकि इसके लिए औपचारिक व्यवस्था की हुई होती है। DFHI की स्थापना का उद्देश्य ही मुद्रा बाज़ार के प्रपत्रों के लिए तैयार बाज़ार प्रदान करना है।

(vi) सुरक्षा : पूंजी बाज़ार में प्रपत्रों के मूल्य की वापसी एवं उन पर प्रतिफल दोनों का जोखिम है।

सरकारी एवं अर्ध सरकारी
- टी. बिल
- सरकारी प्रतिभूतियां
- PSU बांडस आदि

निजी निगम
- व्यापार बिल
- वाणिज्यिक पेपर
- जमा प्रमाण पत्र आदि

बैंक से बैंक (अंतर बैंक)
याचना राशि

निर्गम करने वाली कंपनी हो सकता है कि घोषित योजना के अनुरूप कार्य न कर सके तथा प्रवर्तक निवेशकों के साथ धोखा कर सकते हैं। मुद्रा बाज़ार कहीं अधिक सुरक्षित है इसमें गडबड़ी की संभावना न्यूनतम है। इसका कारण निवेश की छोटी अवधि तथा निर्गमनकर्ताओं की सुदृढ़ वित्तीय स्थिति का होना है। ये निर्गमनकर्ता हैं सरकार, बैंक एवं उच्च श्रेणी कंपनियां होती हैं।

(vii) संभावित प्रतिफल : पूंजी बाज़ार में विनियोजित राशि पर नियोजकों को मुद्रा बाज़ार की तुलना में अधिक ऊंची दर से प्रत्याय मिलता है। ये प्रतिभूतियां यदि लंबी अवधि की होंगी तो इन पर आय की संभावना अधिक होती है। प्रथम तो समता अंशों पर पूंजीगत लाभ की संभावना होती है। दूसरे लंबी अवधि में कंपनी की समृद्धि में उच्च लाभांश एवं बोनस निर्गम रूप में शेयरधारकों की भी भागीदारी होती है।

युद्ध एवं पूंजी बाज़ार
युद्ध की चिंताओं के कारण बाज़ार में घबराहट

अंतर्राष्ट्रीय स्टॉक बाज़ार में घबराहट बढ़ती जा रही है। खाड़ी युद्ध के लंबे समय तक चलने की संभावना है। इसने अंतर्राष्ट्रीय व्यावसायिक संवेदन को प्रभावित किया है। इसी संभावना के कारण नियोक्ता वर्तमान के आकर्षक स्तर पर भी बाज़ार में प्रवेश से कतरा रहे हैं।

बृहस्पतिवार को संवेदन सूचकांक ताजा विक्रय में वृद्धि के कारण 26.79 अंक गिरकर 3116.79 पर आ गया। कारोबार की मात्रा काफी कम रही। यह कुछ ही प्रतिभूतियों तक सीमित रही। क्रेता कहीं दिखाई नहीं दिया इसलिए गौण तत्वों में अनिच्छा की स्थिति रही। BSE में कारोबर में तेजी से कमी आई और इसकी मात्रा घटकर 813.27 करोड़ रु. रह गई जबकि बृहस्पतिवार को यह 1,111.70 करोड़ रुपए थी।

वाल स्ट्रीट की डो लोंस इंडस्ट्रीयल एवरेज (Wall streets Dow Iones Industrial Average) एवं (NASDAQ Composite Index) में एक ही दिन में गिरावट जिनमें क्रमशः 50.35 अंक एवं 3.56 अंक की गिरावट थी, के बाद बाज़ार नरमी पर खुला।

योरोप के सर्राफा शेयरों के भाव में गिरावट आई क्योंकि नियोक्ता युद्ध से क्षुब्ध था। इसका प्रभाव नाजुक विश्व अर्थव्यवस्था पर भी पड़ा। जापान का Nillei 16.75 अंक बढ़कर 83.68 पर बंद हुआ HKS Hong Kong 174.77 अंक गिरकर 8872 पर बंद हुआ। योरोप में भी German Dax एवं UK FTSE समेत लगभग सभी बाजारों में गिरावट जारी रही।

अपने देश के संदर्भ में एक वरिष्ठ कोष प्रबंधक ने कहा कि यदि युद्ध चार से छः सप्ताह तक चलता है तो BSE संवेदन सूचकांक 3050 के आसपास स्थिर हो जाएगा। और यदि युद्ध दो से तीन सप्ताह के बीच समाप्त हो जाता है तो सूचकांक 3600 को छू जाएगा।

लेकिन अमेरिका की अर्थव्यवस्था में लगातार गिरावट चिंता का विषय है। डॉलर के मूल्य में सभी बड़ी मुद्राओं, जिनमें रुपया भी सम्मिलित है, की तुलना में कमी आई है। बृहस्पतिवार को डॉलर की कीमत घटकर 47.54 रु. रह गई। कई कोष प्रबंधकों का विचार है कि इससे भारत का निर्यात प्रभावित होगा।

स्रोत : दी टाइम्स ऑफ इंडिया

स्टॉक एक्सचेंज / स्कंध विनिमय – अर्थ

स्टॉक एक्सचेंज वह बाज़ार है जिसमें निवर्तमान प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है। प्रतिभूति प्रसंविदा नियमन अधिनियम व्यक्तियों की किसी भी ऐसी समामेलित अथवा असमामेलित ऐसी संस्था या निकाय से है जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों के क्रय-विक्रय एवं उनमें लेन-देन के व्यवसाय में सहायता, नियमन एवं नियंत्रण करने के उद्देश्य से की गई है।

प्रत्येक स्टॉक एक्सचेंज एक स्थान पर स्थापित होता है। जिस स्थान पर प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय होता है उसे व्यापार स्थल अथवा व्यापार रिंग कहते हैं। स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार करने की प्रत्येक व्यक्ति को अनुमति नहीं है केवल इसके सदस्य ही वहां व्यापार कर सकते हैं।

ब्रोकर्स/दलाल क्रेता एवं विक्रेताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं। ये अपने ग्राहक से आदेश प्राप्त करते हैं और रिंग में उनको क्रियान्वित करते हैं। रिंग में पारंपरिक प्रचालन एक नीलामी से मिलता जुलता है। जो ब्रोकर शेयरों को बेचना चाहते हैं उनके संबंध में बोली आती है। इसी प्रकार से जो ब्रोकर शेयरों का क्रय करना चाहते हैं उनके पास उन शेयरों की बोली आती है जिनको वह खरीदना चाहते हैं। बेचने वाले ब्रोकर की कोशिश यह रहती है कि वह अपने ग्राहक को अधिक से अधिक मूल्य दिलाए और खरीदने वाला ब्रोकर कम से कम मूल्य पर खरीदना चाहता है। ब्रोकर किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता है। अथवा क्रय/विक्रय को स्थगित भी कर सकता है। यह सब वह अपने ग्राहक के निर्देशों के अनुसार करता है।

जिन प्रतिभूतियों का स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार होता है उन्हें सूचीबद्ध प्रतिभूतियां कहते हैं। स्टॉक एक्सचेंज सभी कंपनियों की प्रतिभूतियों के लेन-देन की अनुमति नहीं देता है। वह केवल सूचीबद्ध प्रतिभूतियों को ही अनुमति देता है। प्रतिभूतियों के सूचियन का अर्थ है स्टॉक एक्सचेंज की अधिकृत सूची में उन प्रतिभूतियों को सम्मिलित कर लेना जिन

स्टॉक बाज़ार पर टिप्पणी
40% शेयरों का पिछले 5 वर्षों में कोई क्रय विक्रय नहीं हुआ

मुंबई स्टॉक एक्सचेंज में जिन कुल शेयरों का सूचियन कराया हुआ है उनमें से लगभग 40% ऐसे हैं जिनका पिछले पांच वर्षों में कोई क्रय विक्रय नहीं हुआ। व्यवसाय मानक अनुसंधान ब्यूरों (BSRB) के आंकड़े यह बताते हैं कि 1997 में BSE में जिन कंपनियों का सूची में नाम था उनमें से पिछले पांच वर्षों में 485 कंपनियों का कोई लेन-देन नहीं हुआ। इनमें से अनेक कंपनियों को BSE ने फीस का भुगतान न करने के कारण अथवा सूचियन के लिए आवश्यक शर्तों के उल्लंघन करने के कारण निलंबित कर दिया है।

सूची में सम्मिलित कुल कंपनियों में से केवल 8% (500 कंपनियां) से पिछले पांच वर्षों का निर्बाध रूप से व्यापार हुआ है। 1020 ऐसी कंपनी हैं जिनमें वर्ष में 200 से अधिक दिनों तक कोई व्यापार नहीं हुआ जबकि 500 के लगभग कंपनियों में वर्ष में 100 से 150 दिनों तक कोई व्यापार नहीं हुआ।

जिन कंपनियों में कोई कारोबार नहीं होता है उनकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती जा रही है। 1998 में 155 के लगभग शेयर, 1999 में 2000 में 2178, 2001 में 2910 एवं 2026, 2002 में 3553 में स्टॉक्स में कोई कारोबार नहीं हुआ।

गैर कारोबारी स्टॉक्स में से अधिकांश तुच्छ मूल्य स्टॉक हैं। इन 2485 स्टॉक्स में से जिनका पिछले पांच वर्षों में कोई कारोबार नहीं हुआ 4 अंतिम कारोबार में पांच रुपयों से नीचे हुआ तथा 900 के लगभग का 5 रु. से 10 रु. के बीच में एवं 450 के लगभग स्टॉक्स में कारोबार 10 रु. 15 रु. के बीच में हुआ।

स्रोत: बिजिनेस स्टैंडर्स

के व्यापार की अनुमति दी जानी है। उन कंपनियों के नाम स्टॉक एक्सचेंज की अधिकृत व्यापार सूची में सम्मिलित किए जाते हैं जिन प्रतिभूतियों को व्यापार की अनुमति दी गई है। सरकारी प्रतिभूतियों के सूचियन की आवश्यकता नहीं है। सूचियन के संबंध में काफी सख्ती रखी जाती है तथा स्टॉक एक्सचेंज अधिकारी कंपनी के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं, जैसे वित्त अथवा अन्य के संबंध में प्रलेखन माँगते हैं।

स्टॉक एक्सचेंजों / स्कंध विपणियों को कुछ निश्चित क्षेत्रों में ही व्यापार के अधिकार दिए जाते हैं। भारत में कुल 21 क्षेत्रीय स्कंध विपणी है। जिनमें मुंबई स्टॉक एक्सचेंज सबसे पुराना है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर के स्टॉक एक्सचेंज भी हो सकते हैं जिनका कार्य क्षेत्र किसी क्षेत्र विशेष तक ही सीमित नहीं है। भारत में ऐसे दो अखिल भारतीय स्टॉक एक्सचेंज हैं। ये हैं भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSEI) एवं ओवर द काउंटर एक्सचेंज ऑफ इंडिया (OTCEI)।

स्टॉक एक्सचेंज के कार्य

स्टॉक एक्सचेंज के कार्य निम्नलिखित हैं:

(i) तरलता : शेयर बाज़ार का मुख्य कार्य एक तैयार एवं सतत बाज़ार की व्यवस्था करना है जिसमें प्रतिभूतियों का क्रय-विक्रय किया जा सके। एक सतत बाज़ार का होना निवेशकों को यह भरोसा दिलाता है कि वह जब चाहें अपने विनियोग को नकद में परिवर्तित कर सकते हैं। इसके कारण लघु अवधि एवं मध्य अवधि निवेश के साथ नियोक्ता दीर्घ अवधि के निवेशों को वित्त प्रदान कर सकते हैं।

(ii) प्रतिभूतियों का मूल्यांकन : स्टॉक बाज़ार प्रतिभूतियों के सही मूल्यांकन एवं मूल्य निर्धारण में सहायक होता है। लाभ में चलने वाली एवं विकास की संभावनाओं वाली कंपनियों को क्रेता एवं विक्रेता औसत निष्पादन वाली कंपनियों की तुलना में अधिक मूल्यवान मानते हैं। मूल्यांकन, निवेशकों, लेनदारों एवं सरकार सभी की दृष्टि से उपयोगी है। निवेशक अपने निवेश का मूल्य इसलिए जानना चाहते हैं। जिससे कि वह अपने निवेश को नकद में परिवर्तित कर सकें अथवा उन्हें अपने पास रख सकें। लेनदार समर्थन प्रतिभूतियों का मूल्यांकन साख / उधार राशि की सीमा निर्धारित करने के लिए करते हैं। तथा सरकार कर निर्धारण के लिए उनका मूल्यांकन चाहती है।

(iii) पूंजी का और अच्छा आबंटन : जिन कंपनियों का कार्य एवं विकास श्रेष्ठ है उनके अंशों / शेयरों के मूल्य ऊंचे बोले जाते हैं। तथा उनके अंशों में व्यापार होता है। जब भी ऐसी कंपनियों को धन की आवश्यकता होती है तो वह पूंजी बाज़ार में उतरती है ऐसे में उनका पहले का स्टॉक बाज़ार का इतिहास अतिरिक्त पूंजी जुटाने में सहायक होता है। स्टॉक बाज़ार के निर्खता (कोटेशन) पूंजी के और अच्छे आबंटन में योगदान रहता है।

(iv) बचत एवं निवेश की आदत को बढ़ावा देना : स्टॉक एक्सचेंज जन साधारण में बचत एवं निवेश की आदत को बढ़ावा देते हैं। यह औद्योगिक कार्य योजनाओं में निवेश को अवसर प्रदान करते हैं। इससे लोग बचत को सोना एवं चांदी जैसे अनुत्पादक संपत्तियों में नहीं लगाते।

(v) सुरक्षित लेन देन : यह भली-भांति स्वीकार्य है कि स्टॉक बाज़ार प्रतिभूतियों के लेन-देन को सुरक्षा प्रदान करता है। स्टॉक एक्सचेंज सख्त नियम एवं नियमनों से बंधे होते हैं। जिन कंपनियों की प्रतिभूतियों का लेन-देन होता है, उनको लेन-देन करने की अनुमति से पहले गहन जांच पड़ताल से गुजरना होता है। यह लेन-देन की सुरक्षा को सुनिश्चित करता है।

भारत में स्टॉक एक्सचेंजों की सूची

1. अहमदाबाद
2. बैंगलौर
3. भुवनेश्वर
4. चेन्नै
5. कोचीन
6. कोयंबटूर
7. कटक
8. दिल्ली
9. गुवाहाटी
10. हैदराबाद
11. इंदौर
12. जयपुर
13. कानपुर
14. कोलकाता
15. लुधियाना
16. मंगलौर
17. मुंबई
18. एन. एस. ई. आई (NSEI)
19. ओ. टी. सी. ई. आई (OTCEI)
20. पटना
21. पूणे
22. राजकोट
23. सिक्किम
24. बड़ोदरा

भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज एवं भारतीय ओवर दि काउंटर एक्सचेंज

भारत में दो राष्ट्रीय स्तर के स्टॉक एक्सचेंज हैं। ये हैं (i) भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSEI) (ii) भारतीय ओवर दि काउंटर एक्सचेंज (OTCEI)

FEATURES

इन दोनों के समान महत्त्वपूर्ण लक्षण को नीचे सूचीबद्ध किया है।

(i) राष्ट्रव्यापी विस्तार : NSE एवं OTC का कार्य क्षेत्र पूरा देश है। इनकी स्थापना से पहले भारत के सभी स्टॉक एक्सचेंज क्षेत्रीय थे। इनका कार्य क्षेत्र उन शहरों तक ही सीमित था जिनमें यह स्थित थे। साधारणतया यह बड़े शहरों में एक विशेष स्थान पर स्थित होते हैं। जो नियोजक इन शहरों से दूर हैं वह इनकी सुविधाओं को प्राप्त नहीं कर पाते हैं, और उन्हें लंबी यात्रा करनी पड़ती है। लेकिन NSE एवं OTC के नियोजकों को निश्चित शहर अथवा स्थान तक यात्रा नहीं करनी पड़ती। उन्हें केवल अपने स्थानीय NSE/OTC के व्यापारी के पास जाना होता है।

(ii) रिंग की आवश्यकता नहीं : NSE एवं OTC में न तो रिंग होता है और न ही व्यापार स्थल। प्रतिभूतियों में व्यापार NSEI एवं OTCEI के व्यापारियों के कंप्यूटर जाल के माध्यम से होता है। यह व्यापारी अलग-अलग शहरों एवं एक ही शहर में अलग-अलग स्थानों पर स्थित हो सकते हैं। कंप्यूटरों का यह जाल, उपग्रह के माध्यम से NSEI/OTCEI के केंद्रीय कंप्यूटर से जुड़े होते हैं।

(iii) स्क्रीन आधारित व्यापार : NSEI एवं OTCEI में सभी लेन-देन इलेक्ट्रॉनिक के द्वारा संचालित होते हैं। पूरी तरह से कंप्यूटर का प्रयोग होता है, उपग्रही दूरसंचार का उपयोग करते हैं तथा ये स्क्रीन आधारित स्वचालित स्टॉक एक्सचेंज की व्यवस्था करते हैं। व्यापार केवल इलेक्ट्रॉनिक द्वारा ही क्रिया जा सकता है। इसमें व्यापार का कोई अन्य तरीका नहीं अपनाया जाता है।

(iv) पारदर्शिता : NSEI एवं OTCEI का कार्य स्क्रीन पर होता है, नियोजक उस मूल्य की जांच कर सकते हैं जिस पर सौदा हुआ है। यह पारदर्शिता

NSE एवं OTC के समान लक्षण

लक्षण	NSE	OTC
संस्थान	कंपनी	कंपनी सन्नियम 1956 की धारा 25 के अंतर्गत कंपनी कोई रिंग पूरी तरह स्वचालित स्क्रीन आधरित स्टॉक एक्सचेंज
प्रकृति	कोई रिंग नहीं, पूरी तरह स्वचालित, स्क्रीन आधारित स्टॉक एक्सचेंज	
• सौदे	पारदर्शी	पारदर्शी
• क्षेत्र	पूरा देश	पूरा देश
• प्रवर्तक	वित्तीय संस्थानों का समूह/संघ	वित्तीय संस्थानों का समूह/संघ
• लेन देन	NSE कार्यालय, सदस्य/व्यापारी	OTCEI कार्यालय, सदस्य/व्यापारी
• कंपनी का आकार	3 करोड़ अथवा इससे अधिक की चुकता पूंजी	30 लाख रु. अथवा इससे अधिक की चुकता पूंजी
• प्रतिभूतियां जिनमें व्यापार किया जा रहा है	1. समता, ऋणपत्र आदि 2. टी.बिल, PSU बांड	समता, ऋण पत्र आदि
• निपटान	सौदे आदि के 15 दिन के भीतर भुगतान	सौदे के 7 दिन के भीतर भुगतान
• उद्देश्य	सभी प्रपत्रों के राष्ट्रव्यापी, रिंग पारदर्शी सौदों की सुविधा (पूंजी बाज़ार, एवं मुद्रा बाज़ार दोनों के)	छोटी कंपनियों की प्रतिभूतियों को विपणी
• स्थापना	1992	1990

निवेशकों के हितों को सुरक्षा प्रदान करती है तथा उन्हें लेन–देन में ईमानदारी का भरोसा दिलाती है।

(v) वित्तीय संस्थानों द्वारा समर्थित समामेलित इकाई : NSE एवं OTC दोनों ही की स्थापना एक कंपनी के रूप में की गई है। दोनों का प्रवर्तन वित्तीय संस्थानों के संघ द्वारा किया गया तथा इनको स्थापित करने के कुछ विशेष उद्देश्य हैं जिनका वर्णन हम बाद में करेंगे। दूसरी ओर अधिकांश क्षेत्रीय स्टॉक एक्सचेंज कुछ लोगों के संघ थे। निर्गमित स्वरूप के कारण इन विपणियों के कार्य संचालन में व्यावसायिकता का प्रवेश सरल हो जाता है।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि NSE एवं OTCE की स्थापना भौगोलिक एवं दूरी की बाधाओं को पार करने के लिए एक पथ प्रदर्शक कदम है। इसमें लोगों को एक दूसरे के समीप लाने एवं दूर स्थित की बाधाओं को पार करने में दूरसंचार प्रणाली को एक माध्यम औजार के रूप में प्रयोग किया गया है। इन दोनों विपणियों का लक्ष्य पूरे देश में फैले निवेशकों को सौदे करने का अवसर प्रदान करना है।

NSEI प्रकृति एवं उद्देश्य

NSEI का मुख्य उद्देश्य समता, ऋण एवं अन्य प्रतिभूतियों को एक पारदर्शी बाज़ार उपलब्ध कराना है।

लक्षण

NSEI के लक्षण नीचे दिए गए हैं :

(i) प्रतिभूतियों में व्यापार : प्रतिभूतियों में कारोबार के लिए NSEI के दो प्रखंड हैं।

- पूंजी बाज़ार प्रखंड (समता, ऋण-पत्र) एवं
- थोक ऋण बाज़ार (WDM) अथवा मुद्रा बाज़ार प्रखंड (T. Bills, CPs, CDs, PSU, Bonds इत्यादि)।

जहां तक ऋणगत प्रतिभूतियों में फुटकर व्यापार का प्रश्न है, इसके प्रवर्तन में NSEI को एक अग्रणी संस्थान माना गया है। यह भी आशा की जाती है कि यह मुद्रा बाज़ार प्रतिभूतियों के लिए एक सक्रिय द्वितीयक बाज़ार के विकास हेतु आधारगत ढांचा उपलब्ध कराने में प्रभावी भूमिका निभाएंगे। प्रथम बार WDM प्रपत्रों एक को इस उद्देश्य से व्यापार योग्य माना गया है कि उनके लिए पूरे देश में एक सक्रिय द्वितीयक बाज़ार का विकास किया जा सके।

(ii) NSE में भुगतान एवं सुपुर्दगी सौदे के 15 दिन के अंदर कर दी जाती है। अप्रैल 1, 2003 से टी + 2 ट्रेडिंग साईकिल को अपनाया जा रहा है जो डोमेस्टिक बाज़ार और ग्लोबल बाज़ार को एक समान लाएगा।

OTCEI-प्रकृति एवं उद्देश्य

OTCEI की स्थापना छोटी व्यावसायिक इकाइयों की कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु क्री गई थी। छोटी कंपनियां अपने शेयरों को स्टॉक एक्सचेंज में सूचीबद्ध कराने के लिए आवश्यक शर्तों को, जिसमें बड़ी कठिनाई होती हैं, पूरा करने में असमर्थ पाते हैं। इसलिए उनमें तरलता का अभाव रहता है। इसलिए जब ऐसी कंपनियां शेयर निर्गमित करती हैं तो इन्हें खरीदने वाले बहुत कम होते हैं। OTCEI की छोटी कंपनियों के लिए दो श्रेणी/टीयर के रूप में स्थापना की गई है। यह राष्ट्रीय स्तर का एक्सचेंज है। यह निवेशकों को इलेक्ट्रॉनिक आधारित सुविधा प्रदान करता है। और साथ-साथ इन सभी कंपनियों की प्रतिभूतियों को तरलता प्रदान करने का भरोसा दिलाता है।

OTCEI की विशेषताएं

OTCEI की विशेषताओं की सूची निम्न है :

(i) अनिवार्य बाज़ार निर्माताओं द्वारा तरलता प्रदान करना : छोटी-छोटी कंपनियों की प्रतिभूतियों में व्यापार के अवसर बढ़ाने के लिए OTCEI ने प्रथम बार अनिवार्य बाज़ार निर्माता की अवधारणा से परिचित कराया है। यह साधारणतया बैंक अथवा वित्तीय संस्थान होते हैं जो OTCEI द्वारा चुनिंदा प्रतिभूतियों के लिए प्रायोजक का कार्य करने के लिए नियुक्त किए जाते हैं। प्रयोजक प्रतिभूतियों के सही आंकलन एवं इसके सही मूल्य निर्धारण के लिए उत्तरदायी होते हैं। व्यापार प्रारंभ होने के पश्चात् प्रायोजक जिन प्रतिभूतियों को प्रयोजित करते हैं उनका क्रय/विक्रय निर्ख 18 महीने के लिए प्रस्तावित करते हैं। यह निवेशकर्ताओं को तरलता प्रदान करता है। क्योंकि बाज़ार में अनिवार्य बाज़ार निर्माता हर समय उन प्रतिभूतियों को खरीदने के लिए तैयार रहता है जिनकी कोई मांग नहीं है। 18 महीने के पश्चात् वह अन्य बाज़ार निर्माता की व्यवस्था करता है। या फिर स्वयं इस उत्तरदायित्व को वहन करता है। इससे तरलता में भारी सुधार होता है।

(ii) निपटान : OTCEI में भुगतान एवं सुपुर्दगी दोनों, लेन-देन के एक सप्ताह के अंदर कर दी जाती हैं।

भारतीय प्रतिभूति तथा विनियम बोर्ड (SEBI) उद्देश्य एवं कार्य

सेबी की स्थापना 1988 में प्रतिभूति बाज़ार के व्यवस्थित तथा स्वस्थ विकास को संभव बनाने तथा निवेशकों के संरक्षण को आश्वस्त करने के दृष्टिकोण से की गई। इससे एक ऐसा वातावरण तैयार हो जाता है कि प्रतिभूति बाज़ार के माध्यम से पर्याप्त संसाधनों को जुटाना सरल हो जाता है। आगे आने वाले वर्षों में जो परिवर्तन आए, उनसे स्पष्ट होता है कि बाज़ार को

नियमित करना कितना अपर्याप्त था। (देखें बॉक्स) प्रतिभूति बाज़ारों पर निगाह रखने की हैसियत से उनको नियमित करने एवं उनकी प्रगति की समीक्षा करने में SEBI अक्षम रही है। देश में नए-नए विकसित हो रहे पूंजी बाज़ारों में छोटे एवं अनुभवहीन निवेशकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए विधेयक एवं प्रशासनिक रक्षा उपायों की तुरंत आवश्यकता थी। इससे बेईमान एवं निशोचर परिचालकों द्वारा शोषण की जोखिम को न्यूनतम किया जा सकता है। यही कारण था कि मई 1992 में SEBI को कानूनी दर्जा दे दिया गया। यह एक समामेलित संस्था है जिसका पृथक् वैधानिक अस्तित्व है एवं अविच्छिन्न उत्तराधिकार है।

वित्तीय घोटाले

हाल ही के समय में हुए कुछ दुष्प्रसिद्ध वित्तीय घोटाले यह स्पष्ट करते हैं कि SEBI में नियमन के लिए आवश्यक क्रियातंत्र की कमी है। वित्तीय घोटालों का बार-बार होना शेयर बाज़ार के ढांचे का एक अंश बन चुका है जिसका एक कारण अपर्याप्त नियमन शासन तथा दूसरा कारण लालच है।

दी इंडियन बैंक घोटाला 763 करोड़ रुपया

इंडियन बैंक के चेयरमैन एवं प्रबंध निदेशक मुख्य आरोपी, एम. गोपालकृष्णन की सहायता से बड़ी संख्या में ऋण मांगने वालों को जो कि दक्षिण के छोटे निगम एवं निर्यातक थे, बड़ी राशि के ऋण दिए, जिनका कभी भुगतान प्राप्त नहीं हुआ। 1992 से लेकर पांच वर्षों तक उन पर मुकदमें किए गए तथा उन्हें आरोप पत्र दिए गए। इसमें अन्य लोगों के साथ-साथ गोपालकृष्णन जो कि 35 मामलों में आरोपी था एवं सात अधिकारियों को गिरफ्तार कर लिया गया। तथा एम. वर्दगजालू जो कि सबसे बड़ा ऋण प्राप्तकर्ता था, को सितंबर 2001 में फ्रांस से प्रत्यादर्पण किया तथा गिरफ्तार किया गया। बोफोर्स के पश्चात् यह जांच थी जिसमें सबसे अधिक समय लगा। अभी इसमें किसी को सजा नहीं हुई।

1992 से अब तक दर्ज मामले : 45
आरोप पत्र दाखिल किए : 27
सजामिली : अभी तक किसी को भी नहीं
वसूली : शून्य। बैंक को फिर से चलाने के लिए सरकार ने 2675 करोड़ रुपए लगाए।

सी. आर. बैंक 1031 करोड़ रुपए

चैन रूप भंसाली ने उच्च लागत वित्तियन के आधार पर सूची स्तम्भ वित्तीय साम्राज्य का निर्माण किया। जब यह अपने उच्चतम शिखर पर था तो ये 1000 करोड़ का वित्त संपीडन था जिसमें म्युच्यूअल फंड, सावधि जमा वसूली, एक वाणिज्यिक बैंक एवं एक अस्थायी बैंक लाइसेंस सम्मिलित थे। और फिर उसके भाग्य ने उसका साथ छोड़ दिया। और जब बुलबुला फटा तो उस समय एक लाख से भी ऊपर जमाकर्ता 1031 करोड़ रुपए खो चुके थे, भंसाली को कुछ सप्ताह के लिए गिरफ्तार किया गया लेकिन बाद में उसे जमानत पर रिहा कर दिया गया।

मुकदमा दायर करने की तिथि : 20.05.1997
आरोप पत्र दाखिल करने की तिथि : 02.09.1997
सजा पाने वाले : कोई नहीं
वसूली : शून्य, भंसाली ने कोर्ट में याचिका दायर की है जिसमें फिर से व्यवसाय करने की योजना प्रस्तुत की है।

के. पी. (Kaypee) 3218 करोड़ रुपए

केतन पारेख ने K-10 स्टॉक में करोड़ों रुपए लगाए, जहां कीमतें तेजी से बढ़ रही थी। पारेख अंततः तब पकड़ में आया जब (MMCB) बैंक द्वारा जारी किए गए पे-ऑर्डर बाउंस हो गए। यह बैंक, बैंक ऑफ इंडिया से संबद्ध था। जब RBI ने हिसाब मिलाया तो उन्होंने पाया कि MMCB की व्यवस्था में ही खराबी थी जिसकी वजह से उसे 1,030 करोड़ रुपए का नुकसान हुआ।

केस दायर किए गए : मार्च और मई 2001 में – तीन
चार्ज-शीट दायर : 2,
दोष सिद्ध : अभी तक कोई नहीं
वसूली : कुछ नहीं

यू. टी. आई. (UTI) : 9500 करोड़ एवं और भी :

यू. टी. आई की इकाइयां पहले घोटाले के जबरदस्त प्रभाव के कारण 1992 में ही चमक खो बैठी थीं। इसके पश्चात् अनेक वर्षों तक इस न्यास को राजनैतिक संरक्षण के हथियार के रूप में प्रयोग में लाया गया । जिसके कारण बेकार PSU शेयरों एवं निर्गमों में निवेश कर दिया गया। 1997 में सरकार ने कमेटी गठित कर उसे UTI का पुर्नगठन करने को कहा तथा इसमें 3500 करोड़ रुपए लगाकर इसे उबार लिया। हालांकि तत्कालीन UTUI प्रमुख पी .ए. सुब्रामन्यम के विचार कुछ भिन्न थे। न्यासी सोए रहे और निगमों ने अपने संबंधों को भुना लिया। UTI ने केतन पारिख की नकल पर तेजी के समय में अंधाधुंध निवेश किया। जब राजनैतिक हेराफेरी के आरोप लगे तो संयुक्त संसदीय कमेटी (JPC) का गठन किया गया एवं सुब्रमन्यम को लखनऊ की साइबर स्पेस में 32 करोड़ रुपए के निवेश के मामले मुकदमा दायर किया गया।

मुकदमें दायर करने की तिथि एवं संख्या : एक, जुलाई में
आरोप पत्र दाखिल करना : अभी तक कोई नहीं
वसूली : शून्य, उसके बाद सरकार ने संकट से उबारने के लिए 6000 करोड़ रुपए स्वीकृत किए।

होम ट्रेड - 1,200 करोड़ रुपए

यद्यपि डॉट कॉम का उत्साह समाप्त हो चुका था फिर भी होम ट्रेड लोगों को यह समझाने में सफल रही कि यह उनकी बचत का प्रबंधन कर सकती है। यह निवेशकों का दुर्भाग्य था कि उसके संजय अग्रवाल ने मात्र कुछ सहकारी बैंकों को जाल में फंसाया और उनके पैसे को शेयर बाज़ार में लगा दिया। जैसे ही बात फैली तो भेद खुला कि महाराष्ट्र एवं गुजरात के 17 सहकारी बैंक चपेट में आ गए हैं।

मुकदमा दायर करने की तिथि : 10.05.2002
आरोप पत्र दाखिल की तिथि : अभी तक दाखिल नहीं की है
सजा : किसी को नहीं
वसूली : शून्य।

स्रोत: इंडिया टुडे

उद्देश्य

SEBI के उद्देश्य हैं :

(i) प्रतिभूतियों में नियाजकों के हितों की रक्षा करना।

(ii) प्रतिभूति बाज़ार के विकास का प्रवर्तन करना।

(iii) प्रतिभूति बाज़ार का नियमन करना।

कार्य

SEBI के कार्यों की निकासी इसके उद्देश्यों से होती है। इसलिए कह सकते हैं कि इसके तीन प्रकार के कार्य हैं :

(i) सुरक्षात्मक (ii) विकासपूर्ण और (iii) नियमनकर्ता इनमें से कुछ इस प्रकार हैं :

सुरक्षात्मक कार्य

(i) SEBI प्रतिभूति बाज़ार में धोखा-धड़ी एवं अनुचित कार्यों पर प्रतिबंध लगाती है। अनुचित व्यापारिक कार्यों में निम्न सम्मिलित हैं :

- प्रतिभूतियों के बाज़ार मूल्यों में वृद्धि अथवा घटोत्री के एक मात्र उद्देश्य के लिए हेराफेरी करना। इन क्रियाओं पर कानून ने रोक लगा दी है क्योंकि वे निवेशकों के साथ धोखा-धड़ी कर सकते हैं। इसके लिए मूल्य में हेराफेरी शब्द का प्रयोग किया है। (देखें बॉक्स)
- ऐसे झूठे कथन जिससे किसी भी व्यक्ति को प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय के लिए उकसाया जा सके।

(ii) SEBI शेयरों के भीतरी व्यापार पर रोक लगा रखी है। आंतरिक व्यक्ति वह व्यक्ति होता है जो कंपनी से जुड़ा होता है। उसे कंपनी की प्रतिभूतियों के प्रभावित करने वाली सूचना प्राप्त होती हैं जो जन साधारण को प्राप्त नहीं होती हैं। निर्देशक, प्रवर्तक आदि आंतरिक व्यक्ति होते हैं। जब कंपनी के प्रवर्तक, निर्देशक आदि को वह जानकारी होती है जिसका ज्ञान केवल उन्हीं को होता है, क्योंकि वह कंपनी के अंदर के आदमी हैं तथा वह उसका उपयोग अपने निजी लाभ के लिए करते हैं तो इसे आंतरिक व्यापार कहते हैं। इतना कंपनी के एक निर्देशक को यह पता है कि वार्षिक साधारण सभा (AGM) में एक सप्ताह पश्चात् 1:1 बोनस अंशों की के निर्गमन की घोषणा की जा रही है। घोषणा के समय मूल्यों की काफी वृद्धि होने की संभावना है। इस आंतरिक सूचना के आधार पर माना वह तुरंत 10,000 अंशों का क्रय कर लेता है। बोनस अंशों की घोषणा के पश्चात् अगले सप्ताह तक शेयरों के मूल्यों मे 5/- प्रति शेयर की वृद्धि हो जाती है। वह शेयरों को बेच देता है। उसे इस प्रकार से 50,000 का लाभ होता है। यह भीतरी व्यापार का उदाहरण है।

(iii) SEBI निवेशकों को शिक्षित करने के लिए कदम उठाती है।

(iv) SEBI प्रतिभूति बाज़ार में उचित कार्यों एवं आधार संहिता को बढ़ावा देती है।

- SEBI ने ऋण पत्रधारियों के हितों के रक्षार्थ दिशा निर्देश दिए हैं जिन के अनुसार कंपनी स्वयं से ऋण पत्रधारियों के कोषों को कहीं अन्यत्र निवेश नहीं कर सकती तथा शर्तों को बीच में ही नहीं बदल सकती।
- SEBI को भीतरी लेन-देन/अदृश्य व्यापार मामलों की छान-बीन करने का अधिकार है तथा बड़े जुर्माने एवं जेल भेजने का भी प्रावधान है।
- SEBI ने प्राथमिकी/पूर्वाधिकारिता, यह बाज़ार मूल्य से काफी अंतर पर है पर रोक लगा दी है तो इस संबंध में नए दिशा निर्देश जारी किए हैं।

विकास संबंधी कार्य

विकास संबंधी कार्य संक्षेप में लिखे हैं।

(i) SEBI प्रतिभूति बाज़ार के मध्यस्थों के प्रशिक्षण में प्रोत्साहन देती है।

SEBI को प्राप्त शिकायतें एवं उनका निवारण

वर्ष	प्राप्ति	निवारण	प्रतिशत
स्थापना से 1991 तक	18794	4061	21.61
1991-92	110317	22946	20.80
1992-93	351837	66308	18.85
1993-94	584662	339517	58.07
1994-95	516080	351842	68.81
1995-96	376478	315652	83.82

स्रोत : SEBI वार्षिक विवरण

(ii) SEBI प्रतिभूति बाज़ार में मध्यस्थों के प्रशिक्षण का प्रवर्तन करती है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं :

- SEBI ने पंजीकृत शेयर ब्रोकरों के माध्यम से इंटरनेट व्यापार की छूट दी है।
- निर्गमन लागत में कमी के लिए SEBI ने अभिगोपन को स्वैच्छिक बना दिया है
- SEBI ने उस प्रणाली को स्वीकार कर लिया है जिसमें IPOs के विपणन के लिए स्टॉक एक्सचेंज का उपयोग किया जा सकता है।

नियंत्रण कार्य :

इसके नियंत्रण कार्य निम्नलिखित हैं।

(i) SEBI स्टॉक एक्सचेंजों एवं अन्य प्रतिभूति बाज़ारों में व्यापार पर नियंत्रण रखती है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए गए हैं :

- SEBI ने प्रतिभूति बाज़ार में मध्यस्थों पर नियंत्रण के लिए नियम, नियमन एवं आचार संहिता की अधिसूचना जारी कर दी है यह मध्यस्थ इस प्रकार हैं : वाणिज्य बैंकर, ब्रोकर / दलाल, अभिगोपनकर्ता, रजिस्ट्रार, इत्यादि

इन मध्यस्थों को प्रथम बार नियंत्रण उद्देश्य के आधीन लाया गया है एवं निजी आबंटन पर और अधिक नियंत्रण लगा दिया गया।

(ii) SEBI जिनके कार्यकलापों का पंजीकृत करती है एवं नियमन करती हैं वे हैं स्टॉक ब्रोकर, उप-ब्रोकर, शेयर ट्रांसफर एजेंट, निर्गम के बैंकर, न्यास संलेखों के न्यासी, निर्गमन का रजिस्ट्रार, मर्चेंट बैंकर, अभिगोपनकर्ता, पोर्टफोलियों मैनेजर, निवेश सलाहकार तथा अन्य मध्यस्थ जो किसी भी रूप में प्रतिभूति बाज़ार से जुड़े हैं।

ASE के परिचालन बोर्ड के स्थान पर SEBI

ASE के परिचालन बोर्ड के स्थान पर SEBI : SEBI ने अहमदाबाद स्टॉक एक्सचेंज बोर्ड को एक वर्ष के लिए स्थगित कर पी. के. घोष भूर्तपूर्व आई. ए. एस. अधिकारी को प्रशासक नियुक्त कर दिया गया। बाज़ार के नियमनकर्ताओं का कहना है कि यह अगस्त 2002 से ASE बोर्ड को कहती आ रही है कि वह अपने यहां अधिकारिक क्रय-विक्रय को बंद करें, परंतु बोर्ड इसमें असफल रहा। ASE ब्रोकर्स एसोसिएशंस के चेयरमैन अतुल चौक्सी का कहना था कि यह एक अवांछनीय कदम था तथा इस समय प्रबंध में परिवर्तन ASE के भविष्य को बुरी तरह प्रभावित करेगा।

धोखाधड़ी एवं अनुचित व्यापारिक कार्य

मूल्यों में हेराफेरी : *1990 के प्रारंभ में प्रतिभूति बाज़ार के पुराने नियमन ढांचे का सहारा लेकर हर्षद मेहता ने धन जुटाया एवं शेयर बाज़ार में काफी हेराफेरी की एवं शेयरों के मूल्यों में वृद्धि कराई, जैसे ACC के शेयरों की कीमत 500 रु. से बढ़कर 10,000 रु. हो गई। मेहता दलाल स्ट्रीट का पाइड पाईपर (Pied Piper) के रूप में उभर कर आया। हजारों छोटे नियोक्ताओं ने उसका अनुसारण किया और बुरी तरह डूब गए। उसका खेल निर्बाध गति से चलता रहा बाज़ार बुरी तरह लुढ़का। संवेद सूचकांक अपने 22 अप्रैल 1992 के उच्चतम बिंदु 4467 से 28 अप्रैल 1992 को 3896 पर आ गया। संसद ठप्प कर दी गई। SEBI एवं संयुक्त संसदीय कमेटी ने घोटाले की जांच की। उसके साथ उसके खेल में उसके भाई, हितेन दलाल एवं कई दूसरे बाज़ार प्रचालक थे। हर्षद मेहता घोटाले से 4100 करोड़ रुपए का घाटा हुआ।*

कंपनियां लुप्त हो गई : *भारतीय पूंजी बाज़ार में यह संभव है कि कोई कंपनी बाजार से पूंजी जुटा ले और फिर बिना दंड पाए हवा में विलीन हो जाए। यह तब भी हो जाता है जबकि सेबी एवं कंपनी मामलों का विभाग जैसे नियमन प्राधिकरण है जो निवेशकों के हितों के रक्षार्थ एवें भारतीय निगमित क्षेत्र के भली–भांति कार्य करने को सुनिश्चित करने के लिए हैं।*

कानपुर की मिडास टच इनवैस्टर एसोसिएशन ने 1998 में इलाहाबाद हाई कोर्ट में एक जनहित याचिका दायर की जिसमें आरोप लगाया गया कि SEBI एवं DCA भ्रष्ट कंपनियों को दंडित करने में असफल रही हैं। और न्यायालय से इन मामलों को देखने की प्रार्थना की। इसने भारतीय चार्टड एकांउटैंट संस्थान से भी इन कंपनियों के अंकेक्षों के विरुद्ध कार्यवाही करने की मांग की।

PIL के परिणामस्वरूप SEBI ने धोखा करने वाले प्रर्वतकों के विरुद्ध कार्येवाही करने के लिए एक उच्चस्तरीय केंद्रीय समन्वय एवं निगरानी कमेटी की स्थापना की। तथा लुप्त हो चुकी कंपनियों की पहचान करने का कार्य प्रारंभ कर दिया। मार्च 2001 में इसने 229 रातों रात पैदा होने वाली कंपनियों की सूची तैयार की। जिन्होंने 1992-96 के बीच प्राथमिक बाज़ार से कोष एकत्रित किए लेकिन अब उनका उनके पंजीकृत कार्यालयों पर भी नामोनिशान नहीं है। और उनके अंश, अंशधारियों के लिए कागजों की रद्दी मात्र हैं।

कोषों का दुरुपयोग : एम. एस. शूज़ (MS Shoes) का प्रर्वतक सचदेवा अपनी कंपनी के 100 करोड़ रुपए की ताकत से कहीं अधिक पैर पसारने लगा। इस व्यक्ति ने भारी विज्ञापन किया जिसमें इसने दावा किया कि MS Shoes धागे एवं वस्त्र उद्योग में प्रवेश कर रही है तथा मरूवेनी कॉरपोरेशन ने वापसी क्रय (Buy Back) की गारंटी दी है। कंपनी ने 428 करोड़ रुपए के पूर्णत: परिवर्तनीय ऋणपत्रों का निर्गमन किया। उसने पहले भारी विज्ञापन किया। इसके पश्चात् 271.51 करोड़ रुपए के अधिकार निर्गम जारी किए गए। घोटाले का भंडा–फोड़ तब हुआ जब सचदेवा को सी. बी. आई ने गिरफ्तार कर लिया। उन पर इल्जाम था कि उन्होंने SEBI के सार्वजनिक अधिकारियों से मिलकर निर्गम से प्राप्त धन राशि को प्रवर्तनकर्ताओं के अधिकार निर्गम को क्रय करने में व्यय कर दिए। लेकिन इस मामले में कोई विशेष परिणाम प्राप्त नहीं हुआ। सचदेवा बरी कर दिया गया। और उसकी कंपनी का भी कुछ नहीं हुआ।

प्राथमिकता पर निर्गमन का दुरुपयोग : SEBI द्वारा जारी दिशा निर्देशों से पहले पूर्वाधिकार निर्गमन का बहुत अधिक दुरुपयोग हो रहा था। कंपनी को केवल साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पारित करना होता था। क्योंकि अंशधारी पूरे देश में और दूसरे देशों में फैले होते थे। इसलिए कंपनियों के लिए विशेष प्रस्ताव पास कराना सरल हो जाता था। परिणामस्वरूप साधारण अंशधारी को भारी राशि की हानि होती थी और इस प्रक्रिया में प्रर्वतकों, संबंधियों सहयोगियों को अप्रत्याशित लाभ हो जाता था।

उदाहरण के लिए नब्बे के दशक के प्रारंभ में केस्ट्रॉल इंडिया का बाजार भाव 1050 रु. था। जनक कंपनी को प्राथमिकता पर आबंटन के माध्यम से यह अंश 110 रु. में प्राप्त हो गए। इसी प्रकार से कोलगेट इंडिया

ने पूर्वाधिकार आबंटन 60 रु. प्रति शेयर से किए जब कि प्रचलित बाज़ार भाव 700 रु. का था। अन्य बहुत सी कंपनियों ने भी प्रचलित बाज़ार भाव से भारी छूट पर पूर्वाधिकारिक आबंटन किए। ये कंपनियां थीं केडबरी, कलर केम, हिंदुस्तान लीवर, प्रोक्टर एंड गैम्बल एवं ग्लैक्सी।

शेयरों की मुनाफे के लिए बिकवाली : पूर्वाधिकारिक के आधार पर जिन शेयरों का आबंटन होता था वह बाज़ार मूल्य से काफी कम मूल्य पर होता था। इन अंशों को फिर बाज़ार में बेच दिया जाता था। इसका परिणाम काफी विनाशकारी होता था। एक ओर प्रवर्तकों / सहयोगियों को भारी अप्रत्याशित लाभ होता था क्योंकि उनको अंशों का आबंटन बाज़ार मूल्य से काफी कम मूल्य पर हो जाता था और वह उन्हें मुनाफे के लिए बाज़ार में बेच देते थे। दूसरी ओर वर्तमान अंशधारियों को घाटा होता था क्योंकि शेयरों की आपूर्ति बढ़ जाती थी जिससे कीमत गिर जाती थी। उसके बाद तो SEBI ने दिशानिर्देश जारी कर दिए जिसके द्वारा उपर्युक्त व्यवस्था पर रोक लगा दी।

(iii) SEBI म्युचूअल फंडों का पंजीयन एवं नियमन करती है;

(iv) SEBI कंपनियों के अधिग्रहण का नियमन करती है;

(v) SEBI स्टॉक एक्सचेंजों के संबंध में छान-बीन करती है। पूछताछ करती है एवं उनका अंकेक्षण करती है।

सारांश

परिकल्पना एवं प्रकृति

पूंजी बाज़ार की परिकल्पना एवं प्रकृति को वित्त बाज़ार के संदर्भ में समझा जा सकता है। बचत एवं निवेश प्रक्रिया में वित्त बाज़ार एक कड़ी का काम करता है। ये मुद्रा, पूंजी अथवा वित्तीय संसाधनों को बचतकर्ता से ऋण लेने वाले उद्यमियों को हस्तांतरित करने में सहायक होते हैं। इस प्रकार से वित्त बाज़ार ऋण लेने वालों एवं ऋण देने वालों को मिलवाता है तथा उन लोगों को धन उपलब्ध कराता है जो उसका उपयोग करने के बदले प्रतिफल देने को तैयार हैं। वित्त बाज़ार के दो प्रमुख भाग हैं (i) पूंजी बाज़ार– मध्य अवधि एवं दीर्घ अवधि वित्त के लिए बाज़ार (ii) मुद्रा बाज़ार – अल्प अवधि वित्त के लिए बाज़ार।

पूंजी बाज़ार

पूंजी बाज़ार मध्य अवधि एवं दीर्घ अवधि वित्त का बाज़ार है। इससे अभिप्राय: उन सभी संगठनों, संस्थानों एवं उपकरणों से है जो दीर्घ अवधि वित्त प्रदान करते हैं। इसमें अल्प अवधि वित्त बाज़ार सम्मिलित नहीं है जिसमें भुगतान अवधि एक वर्ष से कम है। बाज़ार से विभिन्न प्रकार की प्रतिभूतियों को निर्गमित कर धन एकत्रित किया जाता है। (i) समता शेयर अथवा स्वामीगत प्रतिभूतियां; (ii) ऋण पत्र अथवा साख प्रतिभूतियां; (iii) पूर्वाधिकार शेयर अथवा पूर्वाधिकार दावे वाली प्रतिभूतियां। (iv) अन्य नए प्रकार की प्रतिभूतियां जो प्रचलित प्रतिभूतियों से भिन्न है। पूंजी बाज़ार के निम्न घटक हैं: (i) प्राथमिक अथवा नए निर्गमनों का बाज़ार (ii) द्वितीयक बाज़ार अथवा स्टॉक एक्सचेंज।

प्राथमिक बाज़ार (नए निर्गमनों का बाज़ार)

यह बाज़ार नई दीर्घ अवधि की पूंजी के लिए होता है। प्राथमिक बाजार वह बाजार है जिसमें प्रतिभूतियों को प्रथमवार बेचा जाता है। यह नए निर्गमों अर्थात् नई पूंजी का बाज़ार है इसीलिए इसे नए निर्गमन का बाज़ार (NIM) भी कहते हैं। जिन प्रतिभूतियों का प्राथमिक बाज़ार में निर्गमन किया जाता है उनमें सभी दीर्घ अवधि वित्तीय विलेख सम्मिलित हैं; जैसे– समता शेयर, ऋण पत्र, बांड, पूर्वाधिकार शेयर अथवा इनके नूतन परिवर्तित रूप। ये प्रतिभूतियां प्राथमिक बाजार में निम्न में से किसी भी पद्धति द्वारा निर्गमित की जा सकती हैं। (i) प्रारंभिक सार्वजनिक प्रस्तावना (ii) अधिकार निर्गमन (निवर्तमान कंपनियों के लिए) (iii) पूर्वाधिकार अंश।

द्वितीयक बाज़ार (स्टॉक एक्सचेंज)

स्टॉक एक्सचेंज प्रतिभूतियों का द्वितीयक बाज़ार है। यह पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय का बाज़ार है। इस बाज़ार में प्रचलित प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है। इस बाज़ार में प्रतिभूतियों का निर्गमन कंपनी सीधे विनियोजक को नहीं करती। पूर्व निर्गमित प्रतिभूतियों को निवर्तमान विनियोजक दूसरे विनियोजक को बेच देता है। इस लेन–देन में कंपनी बिल्कुल भी सम्मिलित नहीं है। द्वितीयक बाज़ार का पूंजी निर्माण में सीधा योगदान नहीं होता है। कंपनी न तो कोई पैसा लेती है और न ही कोई पैसा देती है। द्वितीयक बाज़ार तो मात्र वर्तमान प्रतिभूतियों को विक्रेता–क्रेता को हस्तांतरित करता है। लेकिन ऐसा कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य का निर्वाह करता है। इससे विनियोजन को तरलता प्राप्त होती है तथा प्रतिभूतियों की विपणन योग्यता बढ़ जाती है।

मुद्रा बाज़ार

मुद्रा बाजार लघु अवधि कोषों का बाज़ार है जिनका एक वर्ष की अवधि के अंदर उपयोग कर लिया जाता है। मुद्रा बाज़ार एक ओर तो नकद की लघु अवधि की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कोष जुटाने का माध्यम है और दूसरी ओर आधिक्य कोषों को एक वर्ष या उससे कम अवधि के लिए लगा देने का माध्यम है। व्यावसायिक इकाई की दृष्टि से देखें तो मुद्रा बाजार कार्यशील पूंजी के लिए वित्त का प्रमुख स्रोत है। मुद्रा बाज़ार के महत्त्वपूर्ण विलेख अथवा प्रतिभूतियां इस प्रकार हैं : (i) मांग मुद्रा (ii) निधि बिल (T Bills) (iii) व्यापार पत्र (iv) वाणिज्यक पत्र (CP) (v) जमा प्रमाण पत्र (CD)।

पूंजी बाज़ार एवं मुद्रा बाज़ार में अंतर

इन दो बाज़ारों में प्रमुख अंतर इस प्रकार हैं : (i) भाग लेने वाले; (ii) प्रलेख; (iii) निवेश राशि; (iv) अवधि; (v) तरलता; (vi) सुरक्षा; (vii) संभावित प्रतिफल।

स्टॉक एक्सचेंज / स्कंध विनिमय – अर्थ

स्टॉक एक्सचेंज वह बाजार है जिसमें निवर्तमान प्रतिभूतियों का क्रय–विक्रय होता है। प्रतिभूति प्रसंविदा नियमन अधिनियम व्यक्तियों की किसी भी ऐसी समामेलित अथवा असमामेलित ऐसी संस्था या निकाय से है जिसकी स्थापना प्रतिभूतियों के क्रय–विक्रय एवं उनमें लेन–देन के व्यवसाय में सहायता, नियमन एवं नियंत्रण करने

के उद्देश्य से की गई है। ब्रोकर्स/दलाल क्रेता एवं विक्रेताओं के बीच मध्यस्थ का कार्य करते हैं। जिन प्रतिभूतियों का स्टॉक एक्सचेंज में व्यापार होता है उन्हें सूचीबद्ध प्रतिभूतियां कहते हैं। स्टॉक एक्सचेंजों / स्कंध विपणियों को कुछ निश्चित क्षेत्रों में ही व्यापार के अधिकार दिए जाते हैं।

स्टॉक एक्सचेंज के कार्य

स्टॉक एक्सचेंज के कार्य निम्नलिखित हैं : (i) तरलता; (ii) प्रतिभूतियों का मूल्यांकन; (iii) पूंजी का और अच्छा आबंटन; (iv) बचत एवं निवेश की आदत को बढ़ावा देना; (v) सुरक्षित लेन-देन।

भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज एवं भारतीय ओवर दि काउंटर एक्सचेंज

भारत में दो राष्ट्रीय स्तर के स्टॉक एक्सचेंज हैं ये हैं:

(i) भारतीय राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज (NSEI)

(ii) भारतीय ओवर दि कांउटर एक्सचेंज (OTCEI) इन दोनों के समान महत्तवपूर्ण लक्षण को नीचे सूचीबद्ध किया है।

(i) राष्ट्र व्यापी विस्तार; (ii) रिंग की आवश्यकता नहीं; (iii) स्क्रीन आधारित व्यापार; (iv) पारदर्शिता; (v) वित्तीय संस्थानों द्वारा समर्थित समामेलित इकाई। NSE के मुख्य उद्देश्य समता, ऋण एवं अन्य प्रतिभूतियों को एक पारदर्शी बाजार उपलब्ध कराना है। NSEI के मुख्य लक्षण हैं: प्रतिभूतियों में व्यापार; पूंजी बाज़ार प्रखंड; थोक ऋण बाजार; NSE में भुगतान एवं सुपुर्दगी सौदे के 15 दिन के अंदर कर दी जाती है।

OTCEI प्रकृति एवं उद्देश्य

OTCEI की स्थापना छोटी व्यावसायिक इकाइयों की कुछ विशिष्ट आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु की गई थी। OTCEI की विशेषताओं की सूची निम्न हैं : (i) अनिवार्य बाजार निर्माताओं द्वारा तरलता प्रदान करना; (ii) निपटान।

भारतीय प्रतिभूति तथा वि[illegible]नियम बोर्ड (SEBI) उद्देश्य एवं कार्य

सेबी की स्थापना 1988 में [illegible]भूति बाज़ार के व्यवस्थित तथा स्वस्थ विकास को संभव बनाने तथा निवेशकों के संरक्षण को आश्वस्त क[illegible] के दृष्टिकोण से की गई। इससे एक ऐसा वातावरण तैयार हो जाता है कि प्रतिभूति बाज़ार के माध्यम से पर्याप[illegible]ंसाधनों को जुटाना सरल हो जाता है। SEBI के उद्देश्य हैं: (i) प्रतिभूतियों में नियाजकों के हितों की रक्षा [illegible]ना। (ii) प्रतिभूति बाजार के विकास का प्रवर्तन करना। (iii) प्रतिभूति बाज़ार का नियमन करना।

लघु उत्तर प्रश्न

1. पूंजी बाज़ार की अवधारणा को समझकर लिखिए।
2. मुद्रा बाज़ार का वर्णन कीजिए।

3. मुद्रा बाज़ार के विभिन्न प्रपत्रों की रूपरेखा बताइए।
4. पूंजी बाज़ार के प्रपत्रों के लक्षण स्पष्ट कीजिए।
5. मुद्रा बाज़ार के प्रपत्रों के लक्षण बताइए।
6. मुद्रा बाज़ार के प्रपत्र, पूंजी बाज़ार के प्रपत्रों से अधिक तरलता लिए होते हैं। टिप्पणी करो।
7. वित्तीय बाज़ार का अर्थ बताएं।
8. प्राथमिक बाज़ार और द्वितीयक बाज़ार की अवधारण का वर्णन करें।
9. प्राथमिक एवं द्वितीयक बाज़ार में अंतर करें।
10. पूंजी बाज़ार एवं मुद्रा बाज़ार में अंतर करें।

दीर्घ उत्तर प्रश्न

1. "NSE एवं OTC राष्ट्रीय स्टॉक एक्सचेंज है क्षेत्रीय नहीं।" अपने विचार लिखें।
2. NSE एवं OTC के समान लक्षणों को समझा कर लिखें।
3. NSE एवं OTC में अंतर करें।
4. 'स्टॉक विपणी निवेश को तरलता प्रदान करते हैं।' अपने विचार लिखें।
5. 'पूंजी निर्माण में प्राथमिक बाजार का योगदान प्रत्यक्ष एवं मुद्रा बाज़ार का अप्रत्यक्ष होता है। टिप्पणी करें।
6. SEBI प्रतिभूति बाजार पर निगरानी रखने वाली संस्था है।' टिप्पणी करें।
7. SEBI के कार्यों का वर्णन करें।

3 अध्याय

विपणन प्रबंध

अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप :

- विपणन प्रबंध का अर्थ बता सकेंगे;
- विपणन प्रबंध के उद्देश्यों का खुलासा कर सकेंगे;
- आधुनिक विपणन की धारणा को बता सकेंगे;
- विपणन एवं बिक्री में अंतर स्पष्ट कर सकेंगे;
- विपणन के कार्यों की गणना कर सकेंगे;
- मिश्रित विपणन की व्याख्या कर सकेंगे;
- विपणन में विक्रय-प्रोत्साहन की भूमिका का विश्लेषण कर सकेंगे;
- विज्ञापन का अर्थ, भूमिका एवं तरीकों का वर्णन कर सकेंगे;
- विज्ञापन के विरोध को जांच सकेंगे;
- व्यक्तिगत विक्रय की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे;
- अच्छे बेचने वाले के गुणों को पहचान सकेंगे;

बढ़ती हुई प्रतियोगिता के क्षेत्र तथा बाज़ार की स्थिति में टाइटन का भाग वैधानिक घड़ी के बाज़ार में 50 प्रतिशत तक कम हो गया है। कंपनी बाज़ार हिस्से को फिर से प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गई है जिसमें लिए घड़ियों के विभाग के लिए उसका 25 करोड़ का बजट और अपने आभूषणों विभाग के लिए 5 करोड़ का बजट रखा है। यह विभाग "तनिष्क" के नाम से जाना जाता है। विपणन का कार्य ग्राहकों के नए भाग में शुरू हो गया है।

टाइटन घड़ी के मुख्य व्यवसाय, हाथ के घड़ियों के हिस्से की लड़ाई है। चीन वालों ने बाज़ार के निम्न स्तर पर आक्रमण किया है जहां बिना ब्रैंड की घड़ियां प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। जापान के मध्य भाग में अपने उत्पाद ऑल्विन और टाइम्स बेच रहे हैं और स्विस घड़ियां उच्चस्तरीय भाग में बिक रही हैं इसके अतिरिक्त सेल्यूलर फोन अप्रत्यासित रूप से समय का बोध करने वाले नए प्रतियोगी के रूप में लोकप्रिय हो गया है।

उच्च श्रेणी के ग्राहक छवि पर ध्यान केंद्रित करना अब उचित नहीं हैं। हम एक साधारण व्यक्ति हैं और अपने ही तरह के लोगों को लक्षित करते हैं.... औसत आदमी परिणामस्वरूप अब केंद्रबिंदु घड़ी बाज़ार के निम्न स्तर पर है जहाँ परिमाण अधिक है और नए क्षेत्रों का निर्धारण हो सकता है। नए क्षेत्र के ग्राहक जीवन शैली, सामाजिक-आर्थिक समूह तथा व्यक्तित्व के आधार पर पहचान लिए गए हैं और लक्षित किए जा रहे हैं– प्रत्येक भाग पर विपणन का विशेष ध्यान है जिसकी सहायता से अप्रिय घड़ियों का स्वरूप समाप्त है तथा नए स्वरूप की घड़ियां मूल्य और डिजाइन के महत्त्वपूर्ण क्षेत्र पर उपलब्ध हैं। टाइटन के ब्रैंड इक्वीटी इसकी सबसे बड़ी इकाई है- टाइटन अपने विक्रय को बाद की सेवाओं तथा वितरण व्यवस्था को भी मजबूत बना रही है–

120 घड़ी के स्टोर्स, 56 आभूषणों के स्टोर्स और 65 वितरण को 6000 डीलर्स से संपर्क पूरे देश में रख रहे हैं। ये सब विस्तार रूप से जमीनी स्तर की क्रियाओं को बताती हैं। अर्थात ग्राहकों को सुनना, प्रतिवेदन प्राप्त करना तथा परिपुष्टि प्राप्त करना, प्रतिस्पर्धा बाज़ार की सतही पहचान को नहीं समझती है।

टाइटन का दो ही लाभ यह है कि यह भारतीयों के छोटे सिस्ट साइज अधिक मात्रा में पसीना निकलना, (जो चमड़े के पटे में अपना कार्य करती है) तथा साथ ही गोल्ड फ्लेटिंग में अधिक मात्रा में खरची जैसी बातों को ध्यान को बदलते हुए आवश्यकताओं को समझना और ध्यान में रखना चाहिए।

लंबी दृष्टि में घड़ी बाज़ार को धमकी अप्रत्याशित मोबाइल फोन से है तथा इसके बाद के प्रदर्शनों से- घड़ी अचानक काम करना बंद कर दे- आशा की जाती है कि घड़ी को ऐसा बनाया जाए जो मोबाइल के साथ काम करे। यह एक चेतावनी देना है जब इसकी आवश्यकता हो। यह मोबाइल के साथ ताले के रूप में काम कर सकता है जिसके लिए मोबाइल बना है। स्पष्ट रूप से टाइटन के लिए यह समय है कि वह आगे बढ़ने में विश्वास करें।

विचार कीजिए हम अपना दिन किस तरह व्यतीत करते हैं, सुबह सोकर उठने के पश्चात् तरह-तरह के उत्पाद अपनी भूमिका निभाना प्रारंभ करते हैं जिससे हमारी इच्छाओं की संतुष्टि होती है उदाहरण के लिए, दांत साफ करने के लिए हम दांत के ब्रश और मंजन का प्रयोग करते हैं ऐसा हम इसलिए करते हैं क्योंकि दांतों की सुरक्षा दांत और मसूढ़ों के सुरक्षा की आवश्यकता को पूरा करती है तथा अच्छा महसूस करके एवं लोगों द्वारा स्वीकृति करने की भावना जागृति करती है जलपान के समय हम ब्रेड, मक्खन जैम, चाय और दूध आदि उत्पादों का प्रयोग करते हैं यह हम अच्छी तरह कह सकते हैं कि विभिन्न उत्पाद हमारे जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं- इस तरह के उत्पादों को कौन और क्यों बनाते हैं या उत्पादन करते हैं। ये उत्पाद हिंदुस्तान लीवर, कालगेट, अमूल, ब्रिटेनिया और नेसले जैसी फर्म अथवा संगठनों द्वारा बेची जाती हैं। इन संगठनों को बेचने वाले को संगठन कहते हैं। बेचने वाले अपने उत्पादों को बेचते हैं ताकि वे बाज़ार में या ग्राहकों द्वारा उपयोग किया जा सके। इन संगठनों के ऐसा करने का कारण यह है कि ग्राहकों को आवश्यकताओं की संतुष्टि हो सके। एक बहुत ही साधारण स्तर पर विपणन क्रियाओं का एक समूह है जिसे विक्रेता एक बाज़ार में ग्राहकों की आवश्यकताओं की सतुष्टि के लिए करता है। विपणन मुख्य रूप से बाज़ार में विचारों के आदान-प्रदान से संबंधित है अर्थात् फर्म या व्यावसायिक संगठन बाज़ार अथवा ग्राहकों से विचारों का आदान-प्रदान करें तभी दो पक्षों के बीच लाभप्रद विनियम हो सकता है।

विपणन को समझने के लिए कोई प्रयास करने से पहले यह आवश्यक है कि कुछ महत्त्वपूर्ण धारणाओं को समझा जाए।

बाज़ार

बाज़ार शब्द की उत्पत्ति लैटिन शब्द 'मारकैटस' से हुई है इसका अर्थ है माल, विक्रय सामग्री अथवा व्यापार। साधारण भाषा में बाज़ार शब्द से आशय ऐसे स्थान से है जहां पर व्यापार किया जाता है। उदाहरण के लिए, दिल्ली का सदर बाज़ार या सरोजनी नगर बाज़ार। कभी-कभी बाज़ार शब्द का प्रयोग उत्पादों के स्वाभाव को बताता है जिसका व्यापार किया जाता है, जैसे- सब्जी बाज़ार, कपड़ा बाज़ार अथवा कार बाज़ार। कभी-कभी बाज़ार शब्द का प्रयोग व्यापार के उस विस्तार को इंगित करता है

जो क्रेता एवं विक्रेता के बीच होता है। वह जगह–जहां पर समानों का व्यापार अधिक मात्रा में किया जाता है उसे थोक बिक्री बाज़ार और जहां पर फुटकर व्यापार किया जाए उसे फुटकर बिक्री बाज़ार कहते हैं। इस प्रकार बाज़ार शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों में किया जाता है। परंतु एक बात सभी प्रयोगों में पाई जाती है कि यह एक ऐसे स्थान की तरफ संकेत करती है कि जहां पर क्रय करने वाले और विक्रय करने वाले मिलते हैं और क्रय एवं विक्रय की क्रियाओं का संचालन करते हैं।

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि बाज़ार शब्द का केंद्र बिंदु स्थान से नहीं है बल्कि क्रेता एवं विक्रेता के मिलन पर है क्योंकि पारस्परिक रूप से क्रय करने वाले विक्रेताओं से एक भौतिक स्थान पर मिलते हैं। बाज़ार शब्द का प्रयोग एक स्थान की ओर इंगित करता है, ऐसा सोचना ठीक नहीं है– क्रेता एवं विक्रेता एक–दूसरे को बिना मिले फोन, डाक अथवा इंटरनेट द्वारा व्यापार कर सकते हैं इंटरनेट ने एक नई तकनीक की व्यवस्था की है जिसके द्वारा व्यापार हो सकता है। वास्तविक बाज़ार ने भौतिक बाज़ार की हानियों को दूर कर दिया है- अब क्रेता और विक्रेता एक दूसरे से कभी भी और कहीं पर भी मुलाकात कर सकते हैं।

ग्राहक

ग्राहक अथवा क्रय करने वालों के बिना विपणन संभव नहीं है। ग्राहकों से तात्पर्य लोगों अथवा संगठनों से है जो अपनी आवश्यकताओं तथा इच्छाओं की संतुष्टि चाहते हैं। अपनी आवश्यकताओं और इच्छाओं की संतुष्टि के लिए वे बाज़ार में उत्पादों अथवा

एक छोटे दुकानदार की कल्पना कीजिए– क्या इंटरनेट उसकी दुनिया में बाधा उत्पन्न करता है?

हां, यह हो सकता है अगर गांव का क्रेता शहर के मूल्यों के बारे में जानकारी रखता है तो वह स्वयं से पूछ सकता है– अगर वह शहर में जाकर उसे प्राप्त करे तो क्या यह उसके लिए ठीक होगा?. क्या यह उसके प्रयासों के अनुकूल होगा कि शहर में जाकर चीजों को प्राप्त करे और गांव में एक छोटे-सी पान की दुकान का प्रयोग न करे। जहां उसे थोड़े से पैसे एक शैंपू के पाउच पर या केचअप पर मिलते हैं। लेकिन अगर क्रेता यह समझता है कि शहर में जाना उचित नहीं है तो वह नहीं जाएगा– क्या लोग व्यापार से अलग हो जाएंगे? नहीं, वे अलग नहीं होगें अगर जितना मूल्य वे लेते हैं वह सूचना प्रबंधक के लिए पर्याप्त है।

चेन की प्रक्रिया में यह दुखमय है। मध्यस्थों के असंतोष के बावजूद, सूचना युग में थोक व्यापार के बाजार में बहुत ही परिवर्तन हो रहा है; उदाहरण के लिए, मछली मारने वाली नौकाएं केरल में सेलफोन का प्रयोग मूल्यों के नियंत्रण एवं तुलना के लिए प्रयोग करती हैं। यह सब ताकतों में भारी परिवर्तन है यह सेलफोन ही या इंटरनेट, एक ही चीज है वे इसकी सहायता से अब संप्रेक्षण कर सकते हैं– ऐसा क्यों है कि बहुत क्रांति हो रही है? ऐसा इसलिए कि अब सूचना को दूसरी जगह भेजना कठिन नहीं है।

ऐरो इलेक्ट्रोनिक्स एक डिस्ट्रीब्यूटर था तथा 1998 में यह सामान्य निष्कर्ष निकला कि सभी डिस्ट्रीब्यूटर प्रायः मृत हो गए हैं। ऐरो जिंदा है और कार्य कर रहा है ऐसा कैसे हुआ? यह इसलिए कि कंपनी मूल्य वृद्धि कार्यों को अधिक प्रोत्साहन देती थी जो कि इंटरनेट पर आधारित कंपनियां ग्राहकों को यह सुविधा नहीं देती थी। ऐरो ने अपने व्यापार में इंटरनेट की सुविधा लगाई–इस प्रकार इंटरनेट की उपयोगिता बढ़ी परंतु क्या यह एक नया तरीका है कारखानों के कार्यों को करने के लिए– नहीं यह एक नया तरीका है। वर्तमान कंपनियों के ग्राहकों के साथ व्यापार करने का।

स्रोत : इंडियन मैनेजमेंट

सेवाओं को क्रय करने के लिए जाते हैं– ग्राहक शब्द का प्रयोग विभिन्न रूपों में भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पुरुष अथवा महिला ग्राहक नाबालिग ग्राहक या किशोर ग्राहक अथवा वृद्ध ग्राहक। कभी-कभी बहुत से पैसे वाला ग्राहक, पैसे वाला ग्राहक, मध्यम श्रेणी का ग्राहक और अल्प आय का ग्राहक भी बाज़ार में दिखाई पड़ते हैं ग्राहकों को उनके धर्म, स्थान तथा व्यक्तित्व के गुण के आधार पर भी देखा जा सकता है।

फिर भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि ग्राहक बाज़ार के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि बिना ग्राहक के कोई बाज़ार संभव नहीं है- ग्राहक अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को बाज़ार से ही संतुष्ट करते हैं। बेचने वाला इन इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा करके सफलता प्राप्त करता है। आवश्यकताएं मानवीय जीवन के अस्तित्व एवं निर्वाह के लिए अत्यंत आवश्यक हैं, मानव जीवन की मूलभूत जरूरतें हैं। उदाहरण के लिए, हमें खाना, आश्रय तथा कपड़ों की आवश्यकता जीवन निर्वाह के लिए होती है। दूसरी आवश्यकताओं में मनोरंजन, दूसरों द्वारा सम्मान, दोस्ती आदि शामिल हैं। आवश्यकता जीवन निर्वाह के लिए होती है। आवश्यकताएं अपनी महत्त्व के आधार पर भिन्न-भिन्न होती हैं। एक बार जब मूलभूत आवश्यकताओं की संतुष्टि हो जाती है तो मनुष्य अन्य कम महत्त्व वाली आवश्यकताओं

ग्राहकों का प्रबंध

आई.सी.आई.सी.आई. बैंक का उदाहरण लीजिए। जिसमें अपना सी.आर.एम. कार्यक्रम दो वर्ष पहले शुरू किया। प्रारंभ में यह फुटकर व्यापारी समूह द्वारा किया गया। इसके पीछे विचार यह था कि ग्राहकों से संबंधित आंकड़ों का प्रयोग फुटकर व्यापारियों के लिए किया जाए और सेवा के स्तर तथा बिक्री स्तर में विकास करना बैंक की निश्चित की गई व्यापारिक नीति ने बैंक को अपने बहुत से ग्राहकों से संबंध बनाने में सहायता की ताकि आज आई.सी.आई.सी.आई. अपनी नीतियों से ग्राहकों को हित में ध्यान रखकर बनाती है न कि पहले वह एक मात्र चलन में आने वाले खातों को ध्यान में रखकर।

इस कार्यक्रम से यह भी "संभव हुआ कि सही ग्राहकों की समस्याओं का तुरंत ज्ञान हो जाता था तथा उन समस्याओं का समाधान भी समय पर किया जा सके, चाहे वह समस्या अनुरोध की हो या शिकायत की।" इससे कुछ शिकायतें आने कम हुई तथा प्रतिक्रिया में भी सहायता मिली। आई.सी.आई.सी.आई. के लिए नए ग्राहकों से संबंध प्रत्यक्ष रूप से नए माध्यम जैसे इंटरनेट अथवा मिलने के स्थान बनाने का कार्य चुनौतीपूर्ण था और इसने सी.आर.एम. कार्यक्रम इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए चुना।

उसी तरह एच.एस.बी.सी. में प्रशिक्षण वार्षिक रूप में लगातार चलता रहता है। प्रत्येक वर्ष क्लास रूप में प्रशिक्षण का कार्य बैंक कराती है और शाखा प्रबंधक तथा टीम मैनेजर के स्तर पर कर्मचारियों को शिक्षित किया जाता है। जहां पर ग्राहकों की सूचनाएं तथा बिक्री की विवरण होता है वहां रोज काफी भीड़ रहती है। सप्ताह में एक बार टीम लीडर आपस में विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। कुछ ऐसे अवसर भी आए हैं जहां ग्राहकों का नकारात्मक रूप प्राप्त हुआ है जिससे बैंक का अपना उत्पाद देने में फेरबदल करने में सहायता मिली है।

सभी व्यवसाय ग्राहकों से अच्छा संबंध बनाकर कार्य करना चाहती है। जहां भी आप जाएं अगर व्यक्ति आपसे अपनी समस्याओं के बारे कहता है- विक्रय प्रतिनिधि, सहायता करने वाले तकनीकी व्यक्ति, सेवाएं प्रदान करने वाले तकनीकी व्यक्ति, वह आपको अच्छी सेवाए प्रदान करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगे। इससे ग्राहकों की संतुष्टि में वृद्धि होती है, इससे निष्ठा में वृद्धि होती है, तथा यह लाभदायक भी होता है, जब तक प्राप्त किया गया पुरस्कार प्रयासों की तुलना में अधिक होता है।

स्रोत: इंडियन मैनेजमेंट

की संतुष्टि का प्रयास करता है। इच्छा से ही संबंधित एक विचारधारा की आवश्यकता है।

कुछ लोग इन दोनों भागों को पर्यायवाची मानते हैं परंतु यह ठीक नहीं है। आवश्यकताएं ही इच्छाओं का सृजन करती है। आवश्यकताएं मूलभूत एवं साधारण होती हैं जबकि इच्छाएं स्पष्ट रूप से संतुष्ट करने वाली हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति खाने की आवश्यकता महसूस कर सकता है परंतु जब वह डोसा या हैंवरगर की इच्छा करता है तो उसकी आवश्यकता इच्छा में बदल जाती है उसी तरह हमें मनोरंजन की आवश्यकता होती है परंतु जब मनोरंजन के कई तरीके सिनेमा, संगीत नाटक, डिस्को अथवा संगीत समारोह का प्रयोग होता है तो इसे इच्छा कहते हैं इस तरह लोग एक ही तरह की आवश्यकता के लिए अन्य विभिन्न उद्देश्यों की आवश्यकता महसूस करते हैं ताकि उनकी इच्छाएं पूर्ण हो सके। उदाहरण के लिए, एक दक्षिण भारतीय निवासी खाने की आवश्यकता महसूस करता है परंतु एक डोसा की इच्छा एक बंगाली मछली और चावल की और एक उत्तर भारतीय निवासी छोले-भटूरे की इच्छा जाहिर कर सकता है, एक ग्राहक क्या चाहता है। यह उसके सामाजिक शर्तों, जिसमें वह रहता है, पर निर्भर करता है। सामाजिक भिन्नता के कारण एक ही मूलभूत आवश्यकता की संतुष्टि के लिए ग्राहक भिन्न-भिन्न तरीकों का प्रयोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए करता है।

विक्रयकर्ता

अगर ग्राहक संतुष्टि को खोजने वाला है, तो विक्रेता संतुष्टि को देने वाला है। मैकडोनाल्ड तथा टाइटन जैसे व्यावसायिक संगठन विक्रेता हैं। मैकडोनाल्ड ग्राहकों के खाने की आवश्यकता विभिन्न प्रकार के 'फास्ट फूड' को उपलब्ध कराकर करता है। टाइटन कंपनी ग्राहकों को समय का बोध कराने के लिए तरह-तरह की घड़ियों की व्यवस्था करती है साधारणतया वस्तु को अथवा सेवाओं को उपलब्ध कराने वाला विक्रेता कहलाता है। विक्रेता अथवा बेचने वाला एक ही है, का अध्ययन आगे आने वाले वर्गों में किया जाएगा परंतु सरलता के दृष्टि से यह आवश्यक है कि इसे समझा जाए कि बाजार में ग्राहक के अलावा दूसरा अस्तित्व विक्रेता का है। विक्रय करने वाला अथवा विक्रेता ग्राहकों को भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्तित्वों की व्यवस्था करता है उदाहरण के लिए, हिंदुस्तान लीवर, जो लक्स, रिन, सर्फ, ब्रीज फेयर एंड लवली जैसे उत्पादों को उपलब्ध करता है उन्हें चीजों का, विक्रेता कहा जा सकता है क्योंकि उनके द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुएं अधिकांश रूप से भौतिक होती हैं परंतु स्टेट बैंक, सीटी बैंक, पंजाब नेशनल बैंक और इंडियन एयर लाइंस अपने ग्राहकों को कोई भौतिक वस्तुओं को नहीं देती है। वे ग्राहकों को सेवाएं प्रदान करती हैं, इसलिए इन्हें सेवा देने वाली विक्रेता कहा जाता है। अन्य प्रकार के विक्रेता अनुभवों को प्रदान करते हैं (वॉल्ट डिस्नी, बारिस्टा और अनुपम पी वी आर)- स्थानों (पर्यटक स्थानों, जैसे– थाइलैंड, मलेशिया या खजुराहो) एक विक्रय करने वाला अथवा विक्रेता का मूलभूत कार्य यह है कि वह उत्पादों अथवा सेवाओं को विक्रय स्थान पर ले आता है ताकि संभावित ग्राहकों से लेन-देन की यथार्थता हो सके। जब देने वाले और लेने वाले के बीच संभावित लेन-देन पूर्ण होता है तो मूल्यों का आदान-प्रदान होता है। मूल्यों का आदान-प्रदान विपणन का मूलभूत आधार है।

दूसरे शब्दों में, विक्रेता एक व्यक्ति अथवा संगठन हो सकता है जो उत्पादों अथवा सेवाओं को उपलब्ध करता है और ग्राहकों को उनकी आवश्यकताओं, इच्छाओं की पूर्ति के लिए उन्हें सेवाओं अथवा उत्पादों को प्रदान करता है। विक्रेता की सफलता ग्राहकों के प्रतिवेदन के निष्कर्ष पर निर्भर करता है

एक बाज़ार को सफल तभी कहा जा सकता है जब ग्राहक उत्पादों अथवा सेवाओं की क्रय करें जो विक्रेता उन्हें उपलब्ध कराते हैं।

विपणन

सामाजिक एवं प्रबंध की दृष्टि से विपणन की धारणा का अवलोकन किया जा सकता है। बहुत ही साध ारण भाषा में विपणन को लेन-देन के विनिमय की क्रिया कहते हैं जो विक्रेता एवं क्रेता के बीच होती है। इन लेन-देनों के द्वारा दोनों पक्ष जो चाहते हैं, वे करते हैं, एक विनियम को बिपणन विनिमय होने के लिए यह आवश्यक है कि यह इच्छा पूर्वक किया जाए अर्थात् किसी तरह न तो शक्ति का प्रयोग किया जाए और न कोई पक्ष किसी प्रकार का गोल माल करे। फिलिप्स कोटला ने विपणन की परिभाषा निम्न रूप से की है:

"विपणन एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति या समूह अपनी आवश्यकताओं अथवा इच्छाओं की प्राप्ति स्वतंत्रतापूर्वक उत्पादों एवं सेवाओं के सृजन एवं विनिमय से मूल्य के रूप में, दूसरों से प्राप्त करते हैं" विपणन विनिमय से दोनों पक्षों को लाभ होता है किसी भी स्वतंत्र विनिमय को पूरा होने के लिए यह महत्त्वपूर्ण है कि दूसरा पक्ष बनाने एवं देने के रूप में मूल्यांकित करता है। एक विपणन विनिमय को कार्य रूप में लाने के लिए निम्न तत्त्व महत्त्वपूर्ण हैं–

(i) कम से कम दो पक्षों की उपस्थिति-क्रेता एवं विक्रेता अथवा ग्राहक और विक्रेता अथवा देने वाला और लेने वाला।

(ii) दोनों पक्षों के पास कुछ होना चाहिए जो दोनों के लिए मूल्यवान हो।

(iii) दोनों पक्ष प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हो।

(iv) प्रत्येक पक्ष दूसरों के साथ काम करने में इच्छुक हो

(v) प्रत्येक पक्ष संप्रेक्षण एवं सुपुर्दगी के योग्य हो।

क्योंकि लेन-देन स्वभाव में ऐच्छिक है, विक्रेता को ग्राहकों की आवश्यकताओं को तालाश करने में काफी परिश्रम करना पड़ता है ताकि वे उत्पादों एवं सेवाओं का विकास उनकी संतुष्टि के लिए कर सके। जब उत्पाद अथवा सेवाओं का सृजन ग्राहकों की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है तो ग्राहकों के रहन-सहन के स्तर में वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए, ग्राहक टेलीविजन, रेफ्रिजरेटर, कार, सेल फोन, जूते धूप के चश्में आदि के प्रयोग का आनन्द लेना चाहेंगे क्योंकि कुछ विक्रेता उनकी आवश्यकताओं की पहचान कर लेंगे और उत्पादों का विकास इस प्रकार करेंगे जिससे उन्हें संतोष प्राप्त हो सके। कल्पना कीजिए इन उत्पादों के अभाव में हमारा जीवन कैसा होगा? ग्राहकों की आवश्यकताओं और इच्छाओं की पहचान की प्रक्रिया और उनके प्रति पुनरावृत्ति से विक्रेता एक अच्छे जीवन स्तर की सुपुर्दगी करते हैं।

प्रबंध की दृष्टि से विपणन एक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विक्रेता की आवश्यकताओं का उत्पाद एवं सेवा की दृष्टि से मिलान करके उनकी संतुष्टि एक लाभ के लिए करता है। इसके अंतर्गत बहुत सी व्यापारिक क्रिया का सृजन होता है जिससे ग्राहकों को उत्पादों एवं सेवाओं से संतुष्ट किया जाए। ध्यान देने योग्य बात है कि सभी फर्म ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का मिलान नहीं करती है बल्कि वे दूसरा भी कार्य करती है। विपणन की विचारधारा में ग्राहक क्या चाहता है उसे उपलब्ध कराना अथवा क्या बिकेगा उसको बनाना ही सम्मिलित है।

व्यावसायिक धारणा

विपणन का मुख्य बिंदु विक्रेताओं एवं ग्राहकों के बीच मूल्यों का विनिमय है। विक्रेता संभावित विनिमय

की यथार्थता को प्राप्त करना चाहते हैं ताकि वे अपने विक्रय एवं लाभ के उद्देश्य की प्राप्ति कर सके। इसे प्राप्त करने के लिए फर्म को बहुत से कार्य करने पड़ते हैं उन क्रियाओं के अंतर्गत उत्पादों एवं सेवाओं का विचार एवं उनका सृजन उनका मूल्य निर्धारण, उनका विकास एवं विपणन शामिल है। ये सब क्रियाएं एक प्रस्ताव का सृजन करती है जो विक्रेता अथवा फर्म ग्राहकों से अथवा बाज़ार से करता है, ताकि एक संभावित ग्राहक से विनिमय की यथार्थता प्राप्त कर सके। यहां यह समझना आवश्यक है, कि एक फर्ज इन क्रियाओं के समीप कैसे जाती है अर्थात फर्म के प्रयास को प्रस्ताव, सृजन तथा बाज़ार के विचारों के आदान-प्रदान से कैसे दिशा निर्देश मिलता है। विपणन के प्रयास में सभी फर्म एक ही विचार अथवा दर्शन द्वारा दिशा निर्देश नहीं प्राप्त करते हैं। विपणन के प्रयास बहुत से दर्शनों द्वारा प्रभावित होते हैं; जैसे– उत्पादन की धारणा, उत्पाद की धारणा, विक्रय की धारणा, बेचने की धारणा आदि।

उत्पादन धारणा

कुछ फर्मों का यह विश्वास है कि संभावित विनिमय तभी संभव हो सकता है जब उत्पाद अधिक खर्चीला न हो ओर अच्छी तरह उपलब्ध हो। यह विचार उत्पादन की धारणा का रहस्य है। वे फर्म जो उत्पादन की धारणा को मानते हैं ऐसा प्रयास करते हैं कि उनके उत्पाद कम खर्च वाले हों और बाज़ार में अच्छी मात्रा में उपलब्ध हो इस धारणा से बाजार में विपणन के प्रयासों में सफलता मिलती है। जहां ग्राहक अपनी आवश्यकताओं के मूलभूत हल की तलाश करते हैं और उपलब्धता के आधार पर नियंत्रित होते हैं – इस प्रकार फर्म जो उत्पादन की धारणा पर चलती है यह अपना मुख्य बिंदु अधिक उत्पादन और वितरण द्वारा लागत कम करते हैं। उस धारणा की सबसे मुख्य कमी यह है कि ग्राहक कभी-कभी कम खर्च वाले और उपलब्ध उत्पादों का क्रय नहीं करते हैं।

उत्पाद धारणा

उत्पाद धारणा इस बात को प्रस्तावित करता है कि व्यवसाय के उद्देश्य की प्राप्ति उन उत्पादों को बनाने में है जो उच्च गुणवत्ता की हो अर्थात ग्राहक उच्च गुण वाले उत्पादों को पसंद करते हैं। फर्म जो इस धारणा को मानते हैं वे अपने प्रयासों को उच्चतरीय उत्पादों को बनाने में तथा समय-समय पर उनमें परिवर्तन करने में लगाते हैं। यह सत्य है कि ग्राहक उच्च गुण वाली वस्तुओं को क्रय करना चाहते हैं। लेकिन तभी जब उन्हें उनकी आवश्यकता होती है। केवल अच्छा उत्पादन होने के कारण ग्राहक उसे क्रय नहीं करते हैं उदाहरण के लिए, एक ग्राहक जिसके पास काले बाल हैं। एक अच्छी गुण वाली डाई को क्रय नहीं करेंगे उसी तरह एक बहुत ही अच्छे चूहेदानी का कोई बाज़ार नहीं होगा अगर चूहों के पकड़ने की समस्या ही न हो। इस प्रकार विकसित गुण वाली वस्तुएं विपणन की सफलता का मार्ग सर्वदा नहीं हो सकती।

विक्रय धारणा

कुछ फर्म अपने प्रयासों को विक्रय धारणा से संगठित करती है। कहा जाता है कि ग्राहक अगर अकेला है तो यह किसी फर्म के उत्पाद को क्रय नहीं करेगा अथवा अधिक क्रय नहीं करेगा। अर्थात् एक ग्राहक को एक उत्पाद खरीदने के लिए उसे मनवाना होगा, प्रलोभन देना होगा तथा आकर्षित करना होगा। इसलिए फर्म की आक्रामक विक्रय के तरीकों एवं प्रोत्साहन के तरीकों को अपनाना होगा ताकि ग्राहकों को जो माल दिया जाए उसे वे क्रय करें। इस धारणा की भौतिक कल्पना यह है कि ग्राहकों को प्रलोभित किया जाए, उन्हें फुसलाया जाए तथा विश्वास दिलाया जाए ताकि वे क्रय करने में रूचि

लें अर्थात् फर्म ग्राहकों को उन चीजों को क्रय करने के लिए तैयार कर सकती है जिसकी उन्हें खरीदने की इच्छा नहीं है। फर्म, जो विक्रय धारणा को मानती है विज्ञापन की शक्ति पर विश्वास रखती है तथा अन्य ऐसे तरीकों पर जिसके द्वारा ग्राहक प्रभावित किए जा सकें।

विक्रय धारणा को एक कथन में कहा जा सकता है ''विक्रय जो आपके पास है'' इस प्रकार इस धारणा के अंतर्गत मुख्य बिंदु यह होता है कि उत्पादों को किसी भी तरीके से ग्राहकों के पास पहुंचाया जाए। विक्रेता का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि किसी भी तरह उत्पादों को नकदी में बदला जा सके। घर-घर जाकर बेचने वाले सेल्समैन या काउंटर सेल्समैन इस धारणा के तहत काम करते हैं और बहुत से तरीकों का प्रयोग करके ग्राहकों को माल के क्रय करने के लिए प्रयास करते हैं। वे इस ध्येय से काम करते हैं कि किसी भी तरह ग्राहकों को माल खरीदने के लिए तैयार करें। विक्रय क्रय करने वालों की हेरा फेरी पर निर्भर हैं। यह ध्यान में रखने आवश्यक है कि सभी क्रेता हेरा फेरी नहीं कर सकते और एक क्रेता अधिक समय तक हेरा फेरी नहीं कर सकता। एक ग्राहक अगर एक बार गलती से प्रलोभित हो जाता है तो वह फर्म की छवि को गलत शब्दों का प्रयोग करके खराब कर सकता है जिससे फर्म की विक्रय के सभी अवसर समाप्त हो जाएंगे और वह बंद हो जाएगी। विक्रय अल्प समय में ही सफल हो सकती है, दीर्घकाल में नहीं। इस पृष्ठभूमि के तहत विपणन की धारणा अस्तित्व में आई ताकि दीर्घकाल तक स्थायित्व बना रहे।

विपणन धारणा

विपणन धारणा इस बात का संकेत करती है कि फर्म अपने लक्ष्यों की प्राप्ति, एक चुने हुए बाज़ार में ग्राहकों की आवश्यकताओं को पहचानकर और उनकी संतुष्टि प्रतिद्वंदियों की तुलना में अच्छी तरह करके, कर सकती है। इससे यह निश्चित होता है कि फर्म उत्पादों और सेवाओं को इस प्रकार विकसित करे जिसे ग्राहकों की जरूरत हो ऐसा नहीं कि फर्म क्या बना सकती है? ग्राहकों की संतुष्टि फर्म के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पूर्व अवधारणा अथवा पूर्व-शर्त है। फर्म, जो विपणन धारणा को मानते हैं, वे कभी यह प्रयास नहीं करेंगे कि एक चौकोर कीले को एक गोल छिद्र में डाला जाए बल्कि वे कीले को छिद्र के हिसाब से विकसित करेंगे ताकि उसे ठीक से लगाने के प्रयास न करना पड़े। दूसरे शब्दों में, फर्म पहले आवश्यकताओं का पता लगाती है और तब उन्हें पूरा करती है। एक फर्म उत्पाद अथवा सेवाएं जो वह बाज़ार में बेचना चाहती है बाज़ार की आवश्यकताओं के अनुसार ही बाज़ार में आते हैं। जो वह बना सकते हैं उसे नहीं बेचते बल्कि जो बेच सकते हैं उसे बनाते हैं। विपणन धारणा के निम्न स्तंभ हैं:

(i) बाज़ार अथवा ग्राहकों का पता लगाना जिन्हें विपणन के प्रयासों का लक्ष्य बनाया जा सके।

(ii) लक्ष्य वाले बाज़ार में ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समझना।

(iii) लक्ष्य वाले बाज़ार की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए उत्पादों अथवा सेवाओं का विकास करना।

विक्रय	बेचना
• यह ग्राहकों की आवश्यकता से प्रारंभ होती है।	• यह विक्रेता की आवश्यकता से प्रारंभ होती है।
• इसमें ग्राहकों की संतुष्टि अपेक्षित है।	• इसमें विक्रेता की संतुष्टि अपेक्षित है।
• इसमें केंद्र दीर्घकालीन होता है।	• इसमें केंद्र अल्प समय के लिए होता है।

(iv) प्रतियोगियों की तुलना में लक्ष्य वाले बाज़ार की आवश्यकताओं को अच्छी तरह संतुष्ट करना।

(v) ये सब कार्य, लाभ की दृष्टि से करना।

ये फर्म जो विपणन धारणा को अपनाती हैं, बाज़ार के स्थिति निर्धारण का विकास करती हैं। ग्राहक और प्रतियोगी बाजार की दो प्रभावशाली शक्तियां हैं इस कारण विपणन वाली फर्म ग्राहकों पर लगातार नजर रखती हैं ताकि होने वाले परिवर्तनों, जिससे ग्राहकों की आवश्यकताएं प्रभावित होती हैं, का आसानी से पता लगाया जाए, इसे ग्राहकों की स्थिति निर्धारण कहते हैं। इससे उत्पादों अथवा सेवाओं को, ग्राहकों की आवश्यकतानुसार चलते हुए आधार पर, आकार प्रदान करने में सहायता मिलती है। परंतु ग्राहकों की इच्छानुसार विक्रय करना पर्याप्त नहीं क्योंकि किसी भी बाज़ार में ताकतवर शक्ति के रूप में एक दूसरी ताकतवर शक्ति प्रतिस्पर्धा है– प्रतियोगी भी उन्हीं ग्राहकों का पीछा कर सकते हैं जिन्हें एक फर्म संतुष्ट करने का लक्ष्य रखती है ऐसी स्थिति में केवल ग्राहकों की आवश्यकताओं का ध्यान रखना पर्याप्त नहीं है। फर्म को प्रतियोगियों की तुलना में ग्राहकों की संतुष्टि के लिए अच्छा होना पड़ेगा। प्रतियोगियों के ऊपर लगातार ध्यान रखना प्रतियोगी का स्थिति निर्धारण कहलाता है। इससे प्रतियोगियों को प्रतिस्पर्धा से बाहर रखने में सहायता मिलती है।

सामाजिक विपणन धारणा

एक व्यवसाय के स्थिति निर्धारण में विपणन धारणा का अच्छा दर्शन है। इसकी महत्ता इसकी योग्यता में है जिससे एक फर्म को प्रतिस्पर्धा युक्त बाज़ार में सफलता मिलती है। इसलिए उद्यमी विपणन धारणा को मानने के लिए प्रेरित किए जाते हैं। परंतु विपणन धारणा की महत्ता के बावजूद इसकी आलोचना उन लोगों द्वारा की जाती है जो समाज एवं वातावरण में अभिरुचि रखते हैं उनका कहना है कि आंख मूंदकर ग्राहकों की संतुष्टि के लक्ष्य को ध्यान में रखने से–ग्राहकों की आवश्यकताओं को पहचानाना एवं उसे पूरा करना– बहुत–सी सामाजिक एवं पर्यावरण संबंधी बुराई आ जाती है। इनके अंतर्गत पर्यावरण, मिट्टी के साधनों का लुटना, बहुत–सी जातियों का समापन, दवा का दुरुपयोग आदि आती है। इस कारण विपणन धारणा के अंतर्गत आवश्यकता संतुष्टि की प्रक्रिया में सामाजिक उद्देश्य का होना जरूरी है। अर्थात फर्म विपणन की क्रिया इस प्रकार करें कि सामाजिक अस्तित्व में वृद्धि हो। विपणन के सामाजिक, नैतिक और इकोलौजिकल भाग पर ध्यान देना आवश्यक है।

विपणन प्रबंध

जैसा कि पिछले भागों में विवेचना की गई है कि विपणन धारणा एक दर्शन है जो उपभोक्ताओं की महत्त्व को दर्शाती है यह ग्राहकों को एक ऐसा केंद्र बिंदु मानती है कि उसके चारों तरफ संपूर्ण व्यापारिक क्रियाएं संगठित एवं संचालित की जाती हैं दूसरे शब्दों में, सभी व्यापारिक निर्णय और कार्य का संपादन व्यापारिक क्रियाओं का उपभोक्ताओं पर क्या प्रभाव डालेगा को ध्यान में रखकर किया जाना आवश्यक है।

यह बात तर्कयुक्त एवं प्रशंसनीय है कि व्यापार का अस्तित्व उपभोक्ताओं द्वारा प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं अथवा सेवाओं के सृजन से है। ग्राहक व्यापार के अस्तित्व के मूल कारण हैं जब विपणन को एक संयुक्त दर्शन के रूप में स्वीकार किया जा चुका है तो विपणन व्यापार के निर्देशन एवं मुख्य कार्यों का निर्धारण करता है यह व्यवसाय के संपूर्ण साधनों को बनाने का आधार है बाज़ार की आवश्यकताओं एवं अवसरों के आधार पर सभी महत्त्वपूर्ण क्रियाओं का सृजन एवं संचालन होता है।

एक व्यवसाय में विपणन प्रबंधन के क्या मुख्य उद्देश्य हैं ? विपणन प्रबंध क्या और कैसे चाहता है? विपणन प्रबंध का व्यापार में विवेचनात्मक उद्देश्य निम्न है– साधनों को गतिमान करना और निर्देश देना कि बाज़ार के अवसरों को पूंजीकरण ग्राहकों की आवश्यकताओं और इच्छाओं को पूरा करके किया जा सके। दूसरा कंपनी प्रबंधन एवं कर्मचारियों को ग्राहकों की स्थितिकरण एवं सोच के आधार पर एक रंग से रंगना। यह इसलिए कि ग्राहक व्यापार का मुख्य अंग है यह एक केंद्रबिंदु है जिसके चारों तरफ विपणन तथा अन्य व्यापारिक क्रियाएं घूमती रहती हैं। विपणन प्रबंध विपणन को एक संयुक्त जीवन स्तर के रूप में तथा व्यापार के संगठन एवं क्रियान्वयन में एक दर्शन के रूप में प्रस्तुत करता है यह ग्राहकों के विभिन्न उपभोग संबंधी समस्याओं को फर्म के उद्देश्यों के अनुसार समाधान करने का प्रयास करता है।

जब व्यापार विपणन के सिद्धांत के अनुसार चलता है तो नवीनीकरण विपणन प्रबंधन एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि बाज़ार की प्रतिस्पर्धाओं को स्वीकार करना तथा व्यापारिक अवसरों को अपने अनुकूल बनाने के लिए उत्पाद उनके तरीकों का एक संगठन में नियोजित नवीनीकरण की आवश्यकता होती है। नियोजित नवीनीकरण एक आधुनिक विपणन धारणा के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जहां पर नवीनीकरण नहीं है वहां व्यापार का अस्तित्व नहीं होता है व्यापार जो नवीनीकरण को नहीं अपनाते हैं वे परिवर्तन के शिकार हो जाते हैं उदाहरण के लिए मर्फी अथवा टेलीविस्टा जैसी कंपनियां बाज़ार से हट गई क्योंकि इन कंपनियों ने ग्राहकों की बदलती हुई आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा और न उन्हें समझा और ग्राहकों की इच्छाओं के अनुरूप कार्य नहीं किया।

एक स्थिर व्यापार बदलते हुए व्यापारिक वातावरण में शिथिल हो जाते हैं और पूर्ण रूप से मूल्यहीन हो जाते हैं, क्योंकि उनके उत्पादों अथवा सेवाओं की मांग समाप्त हो जाती है अथवा नए व्यवसायी उच्चस्तरीय चीज़ों को बाज़ार में ले आते हैं कंपनियां जो हाथ से प्रयोग किए जाने वाली टाइपराइटर बनाती थी वे समाप्त

बाज़ार में अंश बनाए रखना

पैरीवेयर क. ने आवश्यकता के आधार पर स्वास्थ्य संबंधी शीशे के सामानों को बनाने एवं विक्रय में बाज़ार को नेतृत्व प्रदान किया है। संगठित भागों के बाज़ार में छोटे से प्रवेश के साथ पेरीवेयर डिविजन ने इस बात का दावा किया है कि इसने बाज़ार का नेतृत्व संभाला है। बाज़ार पारिवारिक व्यापार के लिए आसान काम नहीं है पैरीवेयर ने दो तरह परिवर्तन किया। पुराने तरह के फैशन के उत्पादों को नए स्वास्थ्यवर्धक उत्पादों में लाना और सफाई के क्षेत्र में उत्पादों का निर्माण करना इससे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि इसके पारिवारिक व्यापार को एक पेशेवर संगठन में परिवर्तित करना।

हमने एक खास विपणन विभाग का निर्माण किया और अपनी गुणवत्ता को बनाए रखा। 900 ग्राहक सेवा केंद्रों के एक सर्विस नेटवर्क की स्थापना की गई जो ना सिर्फ उत्पाद रेंज बल्कि बाथरूम की समस्त समस्याओं का समाधान करती है। यह व्यूह रचना बढ़ते हुए बाथरूम परिष्करण भाग को व्यक्त करती है जो 30 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से बढ़ता हुआ अनुमानित है।

स्रोत: बिजनेस वर्ल्ड

होने लगी क्योंकि व्यापारिक वातावरण में आने वाले परिवर्तनों की इन कंपनियों ने नहीं समझा और उनके प्रति अपने उत्पादों में उचित नवीनीकरण नहीं ला पाए। अमेरिकन कार के. फोर्ड तथा जनरल मोटर ने सत्रहवीं शताब्दी में काफी कठिनाईयों का अनुभव किया क्योंकि उन कंपनियों ने ग्राहकों की छोटी कार के लिए आवश्यकताओं को ध्यान में नहीं रखा क्योंकि तेल के दामों में वृद्धि हो रही थी इसलिए यह आवश्यक है कि विपणन मैनेजर व्यापार में होने वाले परिवर्तनों को देखते हुए विकास के कार्यों को इस प्रकार सम्पन्न करें कि व्यापार में आने वाले परिवर्तनों में अवरोध को दूर कर सके नवीनीकरण तथा परिवर्तन किसी व्यापार के विपणन क्रिया के मूल चालक है।

हमने एक विशेष रूप से विपणन विभाग स्थापित किया और अपने गुणवत्ता को बनाए रखा परंतु सबसे महत्त्वपूर्ण कदम था 900 ग्राहक सुविधा केंद्रों का खोलना जहां पूरे उत्पाद के प्रकार उपलब्ध रहते थे और स्नानघर से संबंधित सभी उत्पाद प्राप्त किए जा सकते थे यह एक ऐसी रचना थी जिससे स्नानघर के नवीनीकरण होता है और इसमें लगभग प्रतिवर्ष 30 प्रतिशत की वृद्धि होती है।

उद्देश्य

विपणन प्रबंध के मुख्य उद्देश्यों को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है -

(i) मांग का सृजन: विपणन बहुत से तरीकों द्वारा मांग का सृजन करती है यह एक ऐसा सचेत प्रयास है जिससे ग्राहकों की आवश्यकताओं का ज्ञान होता है उत्पादक पहले पता लगाते हैं कि ग्राहक क्या चाहता है और फिर ग्राहकों की इच्छानुसार उत्पादन करते हैं उत्पादों एवं सेवाओं की बिक्री उचित कीमतों पर विभिन्न बाज़ारों में क्रम के अनुसार की जाती है। उत्पादों अथवा सेवाओं की उपयोगिता का ज्ञान ग्राहकों को पहले ही बता दिया जाता है। ये सब प्रयास एक उत्पादक को बाज़ार में अपने उत्पाद की मांग का सृजन करने में सहायक होते हैं।

(ii) बाज़ार का अंश : एक प्रतिस्पर्धा के जगत में सभी व्यावसायिक संस्था बाज़ार का एक उचित भाग अपने अधिकार में रखना चाहती है। विपणन एक इकाई को बाज़ार में अपनी स्थिति की अच्छी तरह से प्रदर्शित करने में सहायक होती है बहुत से प्रलोभनकारी तरीकों का प्रयोग उत्पाद को सर्वाप्रिय प्राप्त कराने के लिए किया जाता है ग्राहकों की मांग का उचित मूल्य तथा गुणवत्ता के संबंध में ध्यान रखा जाता है। आक्रामक बिक्री के तरीकों का प्रयोग किया जाता है ये सब क्रियाएं एक फर्म को बाज़ार में उचित हिस्सा प्राप्त करने में सहायक होती हैं।

(iii) ख्याति : विपणन एक फर्म को बाज़ार में एक निश्चित समय के अंतराल पर ख्याति बनाने में सहायक होती है अच्छे गुणवाले उत्पादों को एक उचित मूल्य पर बेचने से फर्म अपने लिए बाज़ार में स्थान बनाती है विपणन मुख्य रूप से फर्म की प्रतिष्ठा को विभिन्न प्रतिष्ठा निर्माण के तरीकों का प्रयोग करने के लिए प्रेरित करती है। उदाहरण के लिए, उत्पादों का विज्ञापन उचित मूल्य, उच्च गुण तथा सरल बाज़ार आदि क्रियाओं से सर्वप्रिय बनाया जा सकता है।

(iv) लाभप्रद विक्रय मात्रा उपभोक्ताओं की संतुष्टि द्वारा : विपणन दीर्घकालीन लक्ष्यों जैसे लाभ, स्थायित्व तथा विकास की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है इसकी प्राप्ति ग्राहकों की आवश्यकताओं की संतुष्टि से ही हो सकती है एक कंपनी के सभी मूलभूत कार्यों (जैसे उत्पादन वित्त, विपणन आदि)का आपस में सामंजस्य करके ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करना और लाभ कमाना है। आधुनिक विपणन इस प्रकार ग्राहकों से प्रारंभ होता है और ग्राहकों पर ही समाप्त होता है।

विपणन एवं विक्रय

आम भाषा में लोग विपणन एवं विक्रय को एक ही समझते हैं परंतु ऐसा नहीं है एक विक्रेता तथा एक विपणन में अंतर है यह अंतर क्या वे करना चाहते हैं और कैसे करते हैं अर्थात विक्रय का उद्देश्य वह नहीं है जो एक विपणन का है और इन उद्देश्यों की प्रगति किन क्रियाओं द्वारा होती है उनमें भी भिन्नता है दूसरे शब्दों में विक्रय और विपणन के उद्देश्यों एवं उन्हें प्राप्त करने के तरीकों में अंतर है अगर किसी को यह पता लगाना हो कि बाज़ार में कौन विक्रेता अथवा विपणन है तो उसे लक्ष्य एवं उसके प्राप्त करने के तरीकों का ज्ञान आवश्यक है।

एक विक्रेता का उद्देश्य उत्पाद अथवा सेवाओं को बेचने से है यह विक्रय ग्राहकों के लिए किया जाता है विक्रय के अंतर्गत उत्पादों को नगद में परिवर्तित किया जाता है इसलिए विक्रेता हमेशा क्रेता के नकदी पर ही ध्यान रखते हैं– विक्रेता का प्रारंभ बिंदु फैक्टरी है जो एक उत्पाद को बनाता है जिसे विक्रेता बेचता है इस विक्रेता के पास उत्पाद होता है तो उसका मुख्य ध्येय एक ऐसे संभावित क्रेता की तलाश होती है जिसे वह अपना उत्पाद दे सके। विक्रय में पूरा ध्यान इसका रहता है कि किस प्रकार उत्पाद को नगद में परिवर्तित किया जाए इसलिए विक्रेता अल्प समय के लेन-देन पर ध्यान देता है अर्थात विक्रेता एक बार विक्रय हो जाने पर इस बात की परवाह नहीं करता कि क्रेता का क्या होगा? विक्रेता का लक्ष्य उसी समय पूरा हो जाता है जब क्रेता माल खरीद लेता है।

विक्रेता का यह प्रयास होता है कि उसके पास जो है उसे बेच दिया जाए चाहे क्रेता को उसकी आवश्यकता हो अथवा नहीं इस कारण विक्रय में जोर की आवश्यकता होती है। इस जोर का तात्पर्य है समान को क्रेता या बाज़ार में भेजना क्योंकि इस क्रिया में क्रेता की आवश्यकताओं को ध्यान नहीं दिया जाता। कभी-कभी विक्रेता का क्रेता से अनबन हो जाता है। इस अनिश्चितता अथवा अनबन को समाप्त करने के लिए विक्रेता को विक्रय के प्रयास में प्रलोभन का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार विक्रय उद्देश्य की प्राप्ति का मुख्य साधन अथवा अभाव है। ऐसा करने में विक्रय की धारणा इससे दूर हो जाती है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि विक्रय का प्रयास करके जो भी विक्रेता के पास है उसे या तो बाज़ार में या क्रेता के पास बेचना। विक्रय बेचने वाले की ही प्रक्रिया है। यह विक्रेता की आवश्यकताओं पर ध्यान देता है, जिसका तात्पर्य उत्पाद को नगद में परिवर्तित करना है।

विपणन की धारणा "विक्रय धारणा से अधिक है। विक्रय जो उत्पाद से प्रारंभ होती है। विपणन ग्राहकों एवं उनकी आवश्यकता की आधार पर शुरू होती है। वास्तव में विपणन एक ऐसी क्रिया है, जो ग्राहकों की इच्छाओं की संतुष्टि करता है यह अपने विषय सामग्री एवं क्षेत्र में अधिक फैला हुआ है विपणन उपभोक्ताओं का केंद्रबिंदु है। विपणन के अंतर्गत ग्राहकों की संतुष्टि का ध्यान रखा जाता है जब कि विक्रेता स्वयं की संतुष्टि करता है। विपणन का उद्देश्य ग्राहकों की संतुष्टि है। विपणन का प्रारंभ ग्राहकों की इच्छाओं और आवश्यकताओं से होता है।

ग्राहकों की संतुष्टि की प्रक्रिया में वे सब क्रियाएं आती हैं, जिनसे ग्राहकों की धारणा सृजन एवं संप्रेषण का बोध होता है और ग्राहकों को मूल्य की सुपुर्दगी होती है। विपणन से इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि ग्राहक यह नहीं चाहता है कि आप क्या बना सकते हैं– उसका मतलब यह हुआ कि ऐसी चीजों का निर्माण जिसे बिना विक्रय प्रयास से बेचा जा सके इसलिए यह कहा जाता है कि विपणन ग्राहकों के साथ प्रारंभ होता है और उन्हीं के साथ समाप्त होता है विपणक ग्राहकों के नगद पर ध्यान नहीं देता है बल्कि उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखता है

विपणन एवं विक्रय में अंतर

- विक्रय के अंतर्गत बेचने वाले की आवश्यकताओं को प्रमुख समझा जाता है। जैसाकि विपणन के अंतर्गत ग्राहकों की आवश्यकताओं अथवा लक्ष्य बाज़ार को महत्त्व दिया जाता है।
- विक्रय उत्पाद से प्रारंभ होता है जबकि विपणन ग्राहकों की आवश्यकताओं से प्रारंभ होता है।
- विक्रेता माल बेचने के लिए विक्रय के ताकतों जैसे प्रोत्साहन एवं विश्वास का प्रयोग करता है जबकि विपणन स्वीकृत विपणन प्रयासों का प्रयोग करता है।
- विक्रेता ग्राहकों को उत्पाद के अनुसार आकर्षित करता है जबकि विपणन स्वयं को ग्राहकों की आवश्यकता के अनुसार तैयार करता है।
- विक्रेता विक्रय की मात्रा से लाभ अर्जित करता है जबकि विपणक ग्राहकों की संतुष्टि से लाभ अर्जित करता है।
- विपणन बाहरी तरीकों से स्थितिकरण करती है जबकि विक्रय के अंतर्गत आंतरिक तरीके से स्थितिकरण किया जाता है।

जब विपणन वास्तविक रूप में किया जाता है तो इससे विक्रय व्यर्थ हो जाता है। यह इसलिए है कि ग्राहक जो चाहता है उसकी पूर्ति की जाती है इस कारण विक्रय के लिए किसी प्रकार के दबाव की आवश्यकता नहीं होती है ग्राहक उसे स्वयं ही लेगा क्योंकि उसे इसकी आवश्यकता होती है। विपणन के अंतर्गत विपणक ग्राहकों की संतुष्टि से लाभ प्राप्त करता है जबकि विक्रय में बेचने वाला विक्रय की मात्रा को बढ़ाने से लाभ अर्जित करता है।

विपणन के कार्य

जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विपणन के अंतर्गत बाज़ार की क्रियाओं का आदान-प्रदान सम्मिलित है विपणन फर्मों को अपने लाभ की लक्ष्य प्राप्ति के लिए ग्राहकों के साथ संभावित विनिमय का यथार्थीकरण करके सहायता करता है। इस प्रक्रिया में विक्रेता भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य करता है इन कार्यों के अंतर्गत बाज़ार को समझना, उत्पादों, अभाव सेवाओं का नियोजन और विकास, प्रोत्साहन और संप्रेषण, भौतिक गतिविधि तथा वितरण और अंत में विनिमय में सहायक होना, आता है- मुख्य रूप से निम्न कार्य विपणन में आते हैं-

(i) विपणन-शोध: विपणन शोध का तात्पर्य शोध की उस प्रक्रिया से है जिससे समस्याओं को दूर किया जाता है सर्वप्रथम विक्रेता को यह पता लगाना होता है कि ग्राहकों की आवश्यकताएं एवं इच्छाएं क्या हैं? इसके अंतर्गत बाज़ार एवं ग्राहकों का अध्ययन सम्मिलित होता है अथवा उनके बारे में जाना जाता है। विक्रेता को यह समझना होता है, कि ग्राहक क्या क्रय करना चाहता है कब क्रय करना चाहता है, किस माने में क्रय करना चाहता है तथा कहां से क्रय करना चाहता है आदि। ग्राहक विभिन्न प्रकार के होते हैं- उनकी खरीदने की इच्छा भी परिवर्तनशील होती है। विपणन के लिए बाज़ार का अध्ययन जरूरी है जिससे यह ज्ञात हो जाए कि बाज़ार में किस प्रकार के ग्राहकों का समूह है। उदाहरण के लिए, ग्राहक विभिन्न आयु, आय, संस्कृति, धर्म, स्थान के होते हैं उसी प्रकार उनकी आवश्यकताएं एवं इच्छाएं भी होती हैं।

विक्रेताओं को ग्राहकों के खरीदने के उद्देश्य एवं आवश्यकताओं का भी ज्ञान आवश्यक है। उदाहरण के लिए, एक ग्राहक जूतों को सुरक्षा, स्टाइल और बचत के हिसाब से खरीदता है। ग्राहकों के उद्देश्यों का बिना शोध किए ठीक उत्पाद एवं रूचि का पता

नहीं लगाया जा सकता। उसी तरह एक उत्पाद को ब्रांडनेम अथवा व्यापार चिह्न देना चाहिए- इसके अंतर्गत बहुत से नामों में से एक नाम चुनाव करने की आवश्यकता होती है— फिर विक्रेता को इस बात का पता लगाना होता है कि कौन-सा नाम ठीक होगा और ग्राहकों को आकर्षित करेगा उसी तरह उत्पाद को ठीक से बांधना होगा— पैकेज का क्या आकार होना चाहिए इसका निर्णय बिना विपणन शोध के नहीं किया जा सकता एक बार जब उत्पाद बना दिया गया, उस पर लेबल लगा दिया गया और पैकेजिंग भी कर दी गई तब यह प्रश्न उठता है कि ग्राहकों को कैसे सूचित किया जाए— विक्रेता को बहुत-सी माध्यम

गुण और बी पी सी एल - एक विपणन पहुंच

अपने ग्राहकों को गुण और मात्रा का आश्वासन प्रदान करना एक बहुत ही कठिन कार्य है। विशेष रूप से क्योंकि उस समय बी पी सी एल का ग्राहकों से संबंध केवल उनके डीलर द्वारा ही संभव था इसलिए ग्राहकों से व्यवहार में परिवर्तन का मतलब डीलर के कार्यों में परिवर्तन। डीलर जो बताए, उन्हें बताया गया कि यदि BPCL गुण और मात्रा का आश्वासन देती है तो ग्राहकों की धारणा उनके स्टेशन के बारे में बदलेगी और इससे निष्ठा में वृद्धि होगी।

एक बार जब डीलर ने स्कीम को स्वीकार किया तो उसे बी पी सी एल के कर्मचारी को अपने पम्प पर आने की स्वतंत्रता देनी होगी ताकि वे लगातार उनका निरीक्षण कर सके। उनके सुझावों को स्वीकार करें जो तेल की गुणवत्ता तथा मात्रा से संबंधित हो और ग्राहकों की संतुष्टि हो। कंपनी ने आठ तरह के सीलिंग प्लान बनाए जो सभी Pure for sure Dealers (निश्चित ग्राहकों के लिए शुद्धता) के लिए लागू किया गया। यह लिस्ट सभी पेट्रोल पंप पर लगा दी गई जिससे पता चल सकता था कि डीलर कब और कैसे ग्राहकों को ठग सकता है ओर उन्हें तथा कंपनी को गुण तथा मात्रा में धोखा दे सकता है। बी पी सी एल ने इन बिंदुओं को 'सील' का दिया और डीलर को बता दिया कि सील खोलना नहीं है यदि वे डीलर स्कीम या प्रोग्राम में सम्मिलित रहना चाहते हैं।

बी पी सी एल ने अपने सी आर एम प्रयासों को थोड़ा आगे बढ़ाया इसके लिए उसने पेट्रो कार्ड तथा स्पीड जैसी योजनाओं को प्रारंभ किया। पेट्रो कार्ड वर्तमान क्रेडिट कार्ड का ही एक वैकल्पिक तरीका है जिसके अंतर्गत 2.25 प्रतिशत सरचार्ज लिए गए तेल पर लिया जाता है। ग्राहकों के लिए बहुत से लाभ थे पेट्रोकार्ड ने डेबिट कार्ड की तरह काम किया और तेल बिलों के पूर्व भुगतान की सुविधा कुछ समय के लिए किया कंपनी ने ग्राहकों की निष्ठा पर पुरस्कृत करने के लिए बहुत से दूकानदारों और चेन स्टोर्स से भी संबंध स्थापित किया जहां ग्राहक पुरस्कृत किए जा सकें।

यह कार्य हैदराबाद के पास एक कस्बे से प्रारंभ हुआ और उसके बाद कार्ड शुरु किया गया कार्ड को काफी सफलता मिली और शीघ्र ही लाभ कंपनी की 'वेवसाइट' पर इसके बारे में जानकारी प्राप्त करने लगे। मौखिक प्रचार ने कंपनी को अवसर दिया कि वह मुंबई में डीलरों से फिर से बातचीत करे उसने पेट्रोकार्ड को पुनः लागू किया तथा ग्राहकों की निष्ठा, लेन-देन के समय में की गई कमी, कम लागत खर्च आदि की शुरुआत हुई। कार्ड ने धीरे-धीरे गति पकड़ी और अब मिलियन से ऊपर इसे लोग प्रयोग कर रहे हैं। आखिर में पता चला कि कार्ड बनाने वाली कंपनी कार्ड की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में काफी प्रयत्नशील हैं।

स्रोत : इंडियन मैनेजमेंट

उपलब्ध हैं जिससे के अपने उत्पादों को प्रोत्साहित कर सकें। उचित माध्यम का चुनाव तब तक नहीं किया जा सकता जब तक कि भिन्न-भिन्न प्रकार के माध्यमों की क्षमता और प्रभावशीलता के बारे में शोध न कर लिया जाए। संक्षेप में कह सकते हैं कि विपणन शोध एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिससे विक्रेता सभी महत्त्वपूर्ण निर्णयों को ठीक से कर सकें।

(ii) उत्पाद नियोजन : प्रत्येक फर्म बाज़ार में कुछ चीजों को देती है। एक फर्म एक उत्पाद अथवा सेवा ग्राहकों को उनकी आवश्यकता की संतुष्टि के लिए प्रदान कर सकती है। परंतु यह प्रश्न जो प्रत्येक विक्रेता को सुलझाना है वह यह कि बाज़ार में क्या दिया जाए, अगर कोई टेलीविजन अथवा साबुन जैसे उत्पाद को देखता है तो वह इस प्रकार के उत्पाद को जानने के बारे में लिए गए निर्णयों एवं संख्याओं का ज्ञान विकसित कर सकता है। उदाहरण के लिए, बी पी एल टेलीविजन, जो कि बाज़ार में उपलब्ध है, विक्रेताओं के बहुत से निर्णयों के आधार पर बनाया गया है। इन निर्णयों में सबसे पहले लिया गया निर्णय टेलीविजन का उत्पादन करना है, उत्पाद के गुणवत्ता का विचार, ब्रांड नाम या व्यापारिक चिह्न विभिन्न प्रकार के मंडल के उत्पादन का निर्णय, पैकेजिंग मूल्य, वितरण एवं यातायात संबंधी निर्णय आते हैं।

(iii) क्रय एवं संकलन : फर्म को एक तरह से देखा जाए तो यह कह सकते हैं कि यह एक परिवर्तन की पद्धति है यह वातावरण से योगाभ्यास प्राप्त करती है, उन पर प्रक्रिया करती है फिर उन्हें अंतिम उत्पाद के रूप में वातावरण में फिर भेज देती है इस परिवर्तन की प्रक्रिया में विभिन्न साधनों अथवा योगदानों को प्राप्त करना एक मुख्य कार्य हो जाता है। अतः क्रय करना एक महत्त्वपूर्ण कार्य है जिसे एक विक्रेता को करना होता है। भिन्न-भिन्न तरह के कच्चे मालों का क्रय किया जाता है। जिन्हें बने हुए उत्पाद के रूप में परिवर्तित करके बाज़ार में विक्रय हेतु उपलब्ध कराया जाता है। उदाहरण के लिए, मारुति उद्योग कच्चे माल का क्रय जैसे लोहा, टायर, बैटरी, सीट, स्टीयरिंग, बिजली के लैंप, तार का सामान, पेंट, रबड़ के छोटे हिस्से स्क्रू आदि विभिन्न स्रोतों से क्रय करती है जो एक पूर्ण उत्पाद के रूप में एकत्रित किया जाता है अर्थात् एक कार के रूप में। कार उद्योग अपने संकलन लाइन के लिए जानी जाती है। एक संकलन लाइन क्रियाओं के क्रम को बताती है जिन्हें भिन्न भिन्न प्रकार के हिस्सों को क्रम तरीके से एकत्र उन्हें अंतिम उत्पाद का रूप दिया जाता है अतः बहुत से भागों के योगदान को एकत्रित करना विक्रेता का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। सचमुच कभी कभी विक्रेता को विभिन्न अवयवों को इकट्ठा करने वाला भी कहा जाता हैं।

(iv) पैकेजिंग : भौतिक उत्पाद जिसे हम प्रायः खरीदते हैं वह हमें बंधे हुए रूप में या पैकेज में मिलते हैं साबुन कागज में या प्लास्टिक पेपर में, बिस्कुट या तो कार्टन में या सादे कागजों के पैक में, टेलीविजन या फ्रीज सख्त लकड़ी या दफ्ती के कार्टून में, महंगे परफ्यूम्स तथा शराब चमकीले बॉक्स में तथा चित्रकार वाले बोतलों में मिलते हैं। ग्राहकों का उत्पाद के प्रति रुचि निर्धारण करने में पैकेजिंग का विशेष महत्त्व है कभी कभी पैकेजिंग को देखकर ग्राहक उत्पाद के गुणों का पता लगाने की कोशिश करते हैं। अच्छी पैकेजिंग कभी-कभी उत्पाद के विक्रय में सहायक होती है। पैकेजिंग को कभी-कभी **शांत विक्रय करने वाला** भी कहते हैं।

उत्पाद के पैकेजिंग का प्रारंभ इस आवश्यकता से हुआ कि क्षति से सुरक्षित रखा जाए। जब वे या तो जहाज़ में रखे जाएं या बाज़ार में भेजे जाएं। कारखाने में उत्पाद अधिक मात्रा में उत्पादित किए

जाते हैं। परंतु उन्हें ऐसी मात्रा में रखना आवश्यक हो जाता है जिसे ग्राहक प्राथमिकता दें। उदाहरण के लिए, घी, तेल, चावल, टैलकम पाउडर आदि का उत्पादन कारखानों में टनों में होता है। परंतु ये 100 ग्राम, एक किलोग्राम अथवा दो किलोग्राम के डिब्बों में पैक होकर आते हैं। इस कारण पैकेजिंग इसलिए की जाती है क्रेताओं को खरीददारी की सुविधा हो दूसरे बिना पैकेजिंग के उत्पादों का यातायात सरलता पूर्वक नहीं हो सकता। मूल अथवा मुख्य रूप से पैकेजिंग का प्रारंभिक उद्देश्य सुरक्षा कार्य को करना है।

(v) संग्रहण तथा गोदाम: एक बार जब चीजों का उत्पादन हो जाता है तो वे एक साथ ही उपयोग में नहीं लाए जाते। उत्पादन एवं उपभोग में निश्चित रूप से समय का अंतर होता है। इस बीच में उत्पादित वस्तुओं का क्या होता है? चीजों को बहुत प्रकार की हानियों से सुरक्षित रखा जाता है एवं बचाया जाता है। मौसम में परिवर्तन, नमी, कीड़े-मकोड़े, चोरी, आदि हानि के मुख्य कारण हैं। अत: विक्रेता के लिए यह आवश्यक है कि वह ऐसे उपायों की व्यवस्था करे जिससे समानों पर उपरोक्त हानियों का असर कम से कम हो। संग्रहण तथा गोदाम का कार्य इस लक्ष्य के लिए निर्देशित होता है। विक्रेता कभी-कभी अपना स्वंय का गोदाम उत्पादों को इकट्ठा करने के लिए रखते हैं, अथवा वे गोदाम कंपनियों की सहायता लेती है जो विक्रेताओं के लिए कुछ फीस लेकर गोदाम की व्यवस्था करती है गोदाम का सबसे अच्छा उदाहरण फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया द्वारा बड़े-बडे गोदामों का रख-रखाव करना है। फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया विभिन्न राज्यों में फसलों की कटाई के समय अनाजों को किसानों से क्रय करके अपने गोदामों में रख लेते हैं क्योंकि उत्पाद एक ही साथ उपयोग में नहीं लाया जा सकता। अधिक उत्पाद को बड़े-बड़े गोदामों में इकट्ठा कर लिया जाता है ताकि बाज़ार की आवश्यकता अथवा उपयोग की जब जरूरत हो पूरा किया जा सके। संग्रहण की आवश्यकता का सृजन मांग और पूर्ति में सामंजस्य न होने के कारण होता है।

(vi) यातायात: यह सत्य है कि चीजों का जहां उत्पादन किया जाता है वहां पर वे निश्चित रूप से उपयोग में नहीं लाई जाती हैं। सामानों का उत्पादन कारखानों में किया जाता है परंतु उनका उपयोग बाज़ारों में किया जाता है जो उत्पादन स्थान से बहुत दूर पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, मारुति कार गुड़गांव में, जो दिल्ली के पास में है बनाई जाती है। परंतु पूरे भारत में उनकी बिक्री होती है। उसी प्रकार सोनी, जो रंगीन टेलीविजन, सी.डी. तथा अन्य इलेक्ट्रॉनिक समानों के उत्पादन की सुविधा जापान में है परंतु यह उनके उत्पादन को अमेरिका, यूरोप तथा एशिया में बेचती है यह सब इसलिए संभव है कि यह अपने उत्पादों को कारखाने से बाज़ार तक भेज सकती है। इस प्रकार यातायात विक्रेता का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। यातायात के अंतर्गत चीजों अथवा लोगों का भौतिक रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना होता है। यातायात एक महत्त्वपूर्ण कार्य है क्योंकि यह ग्राहकों को उत्पादकों से मिलने में सहायक होता है।

यह आवश्यक नहीं है कि केवल पक्के ही माल का यातायात किया जाए बल्कि कच्चे माल का भी यातायात उनके उद्गम स्थान से उपयोग के स्थानों पर किया जाता है। उदाहरण के लिए, कमीज बनाने वाले को कपड़ा, धागा, बटन, सिलाई मशीन आदि की आवश्यकता होती है जिसे वह नए कारखाने में भिन्न-भिन्न स्थानों से प्राप्त करते हैं- जहां कहीं भी मनुष्य या सामग्री की चाल

(Movement) होती है, वहां यातायात की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए विक्रेता को अपने यातायात के काम को सावधानीपूर्वक करना चाहिए। यातायात के अंतर्गत उनके तरीकों एवं रास्तों के नियोजन के संबंध में निर्णय किया जाता है। यातायात का निचोड़ यह है कि सही चीज सही जगह पर सही समय में पहुंच जाए। कल्पना कीजिए यदि चीजों अथवा मनुष्यों का यातायात संभव न हो सके तो क्या होगा? कुछ स्थान ऐसे होंगे जहां पर उत्पादन अधिक मात्रा में उपलब्ध हो जहां उनका उत्पादन किया गया हो। उसी तरह कुछ स्थान ऐसे होगे जहां पर ग्राहकों को उन वस्तुओं की जरूरत होगी जो अन्य स्थानों पर अधिक उपलब्ध हैं ऐसी स्थिति में जहां पर चीजें अधिक उपलब्ध हैं वहां पर वे व्यर्थ सिद्ध हो सकती हैं और असंतुष्टि ग्राहकों को जिनकी आवश्यकताएं कमी वाले क्षेत्र में पूरा नहीं हो सकती, में वृद्धि होती हैं। ऐसा होने से एक ऐसी न चाही हुई स्थिति उत्पाद हो जाती है जहां पर दोनों उत्पादक एवं उपभोक्ता का नुकसान होगा।

(vii) प्रोत्साहन एवं विक्रय : एक बार जब चीजों का उत्पादन हो जाता है तो विक्रेता उसे सम्मानित ग्राहकों को खरीद के लिए अवसर प्रदान करता है। इससे दो मुख्य कार्यों को करने की आवश्यकता होती है। ये दो कार्य प्रोत्साहन एवं विक्रय है। प्रोत्साहन के अंतर्गत वे सब कार्य आते हैं जो उत्पादन की स्थिति, गुण, उपलब्धता तथा मूल्य आदि के बारे में सूचना देते हैं। उदाहरण के लिए, निरमा ने एक नए दंतमंजन या नमक का उत्पादन किया है। ग्राहकों को उत्पाद कैसा है, किस नाम से जाना जा रहता है, कहां उपलब्ध है, और उसके प्रमुख गुण क्या हैं आदि के बारे में जानकारी का कोई माध्यम नहीं है। इस ज्ञान के अभाव में ग्राहक उत्पादन को खरीदने के बारे में सोच नहीं सकते। इस कारण विक्रेता को बहुत से प्रकार के कार्य करने होते हैं जैसे विज्ञापन, विक्रय प्रोत्साहन, व्यक्तिगत विक्रय, प्रचार एवं जन संपर्क आदि। ये सब क्रियाएं करने के बाद विक्रेता सम्मानित ग्राहकों को क्रय करने के लिए तैयार करता है।

अस्पताल शृंखला द्वारा विपणन

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अस्पताल विपणन क्षेत्र में काफी तेजी से आगे बढ़ रहे हैं। स्वास्थ्य शिविर तथा मार्ग प्रदर्शनी (Road Shows) लगातार होते रहती हैं। स्वास्थ्य शिविर में आम बीमारी के लिए पैकेज लगभग 5 या 6 प्रकार के परीक्षण के लिए 400 रु. में तैयार किए जाते हैं। अपोलो अस्पताल इस संबंध में जनता को जागरूक करने के लिए समय-समय पर डाक विभाग द्वारा जानकारी देती रहती है और डिस्काउंट कूपन को भी प्रदान करती है । मैकस सामूहिक शिक्षण प्रोग्राम चलाते हैं और लोगों को प्रारंभिक परीक्षण के लिए डिस्काउंट देते हैं।

इनमें से बहुत से प्रोग्राम आम बीमारियों के लिए बनाए गए हैं। Wock Harot किडनी या गुर्दे के लिए, दिल या मधुमेह के लिए प्रोग्राम बनाते हैं जबकि मैकस भयंकर बीमारियों जैसे मधुमेह, तनाव, अस्थमा तथा जोड़ के दर्द आदि का प्रोग्राम बनाते हैं।

अस्पताल के लिए रोग रोकने वाली स्वास्थ्य रक्षक व्यवसाय ही आकर्षक है क्योंकि इससे दीर्घकालीन संबंध की स्थापना होती है। इसमें यह माना जाता है कि एक रोगी जब परीक्षण के लिए आता है तो भविष्य में यदि कोई उपचार की आवश्यकता होती है तो वह पुन: अस्पताल आएगा।

स्रोत: बिजनेस वर्ल्ड

कुछ उत्पाद विशेष तौर पर तेजी से चलने वाले उपभोग की वस्तुओं के फुटकर दूकान पर बेचने वाले आदमी के अधिक प्रयास के बिना पर ही बेचा जा सकता है। कुछ उत्पाद विशेष रूप से औद्योगिक जैसे जटिल मशीन, औद्योगिक प्रतिष्ठान, यत्र-तत्र आदि विभिन्न तरीकों से बेचे जाते हैं। कंपनियां जो इस तरह के उत्पादों को बेचती हैं, वे बेचने वालों की एक फौज को रखती हैं जो ग्राहकों को उत्पाद के बारे में जानकारी देना, मूल्यांकन करना, समझाना और अंत में ग्राहकों को बेचने का कार्य करते हैं। बेचने वाले लोग संभावित ग्राहकों अथवा भविष्य की मांग की पहचान करते हैं, उनकी आवश्यकताओं को समझते हैं, उनके पास प्रदर्शन एवं दिखावे के लिए जाते हैं, उनकी अपत्तियों का निवारण करते हैं और विक्रय को अंतिम रूप देते हैं।

विक्रय एक महत्त्वपूर्ण काम है क्योंकि जब तक विक्रय नहीं होता तब तक कोई आय प्राप्त नहीं होती। केवल विक्रय करके ही विक्रेता आय प्राप्त करने के योग्य हो सकता है।

विपणन संयुक्त

विपणन संयुक्त की धारणा को समझने के लिए यह लाभदायक होगा कि हम विपणन की धारणा पर फिर से विचार करें। विपणन में एक तरफ विक्रेता अथवा फर्म है और दूसरे तरफ बाज़ार या ग्राहक। फर्म ग्राहकों से लेन-देन करने का प्रयास करती है। यह संभावित विनिमय को वास्तविकता में परिवर्तित करती है परंतु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए फर्म को उत्पाद अथवा सेवाओं का विकास करना चाहिए, ग्राहकों को इसके बारे में सूचना देनी चाहिए, उसे उपलब्ध कराना चाहिए और इसके मूल्य का निर्धारण करना चाहिए ये सब कार्य इस बात की तरफ संकेत करते हैं कि विक्रेता को अपने सब साधन एक संसर्ग में रखना चाहिए ताकि उसका उद्देश्य एक सफलतापूर्वक विक्रय के रूप में प्राप्त किया जा सके। इस प्रसंग में विक्रेता को विभिन्न संघटकों का इकट्ठा करने वाला अथवा संसर्ग करने वाला कहा जा सकता है। विक्रेता की सफलता इस पर निर्भर करती है कि वह अवयवों को किस प्रकार इकट्ठा करता है।

एक विक्रेता द्वारा क्या मिश्रण किया जाता है। इसका ज्ञान किसी उत्पाद अथवा सेवा के निरीक्षण से हो सकता है। इस संबंध में एक उदाहरण टाइटन उद्योग द्वारा बनाई गई सोनाटा घड़ी का लिया जा सकता है। घड़ी सोनाटा नाम से बनाई जाती है, इसे प्लास्टिक के बॉक्स में रखा जाता है। इसका एक रूप है, इसके गुण तथा लक्षण का ज्ञान होता है। कंपनी कुछ आश्वासन देती है, इसका लिखित मूल्य होता है, परंतु दुकानदार कभी-कभी छूट दे देता है। कंपनी फुटकर दुकानदारों की श्रृंखला द्वारा इन्हें वितरित करती है। ये इकट्ठा करते जाते हैं और बाज़ार में भेजते जाते हैं। कंपनी के बेचने वाले अधिक मात्रा में घड़ियों को थोक व्यापारियों को बेचते हैं। यह कंपनी द्वारा विज्ञापन तथा विक्रय शक्तियों द्वारा प्रोत्साहित होती है। ये सब कार्य फर्म एक अंश के रूप में हैं जिसके द्वारा सोनाटा तैयार की जाती है और यह पता चलता है कि सोनाटा, क्या है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि टाइटन इन सब तत्त्वों को एकत्र करके एक प्रस्ताव का सृजन किया है जिसे बाज़ार में ले जाकर संभावित ग्राहक विनिमय के लक्ष्य का निर्धारण किया जा सके। एक विक्रेता जो भी सम्मिलित करता है उसे विपणन मिश्रण करते हैं।

विपणन मिश्रण उन अवयवों अथवा साधनों अथवा अस्थिर स्तंभों से संबंधित है जिसे एक विक्रेता मिश्रित करता है जिसके आधार पर वह एक विशिष्ट बाज़ार में विचारों का आदान-प्रदान करता है। कोटकर ने विपणन मिश्रण को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

"विपणन साधनों का एक समूह है जिसे फर्म लक्ष्य के बाज़ार में विपणन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयोग करता है।" क्यूलिटन ने कहा है कि "विक्रेता अवयवों को मिलाने वाला एक व्यक्ति है जिसके द्वारा वह अपने को लगातार व्यस्त रखता है ताकि वह भिन्न-भिन्न अवयवों को रूप देना है ताकि विपणन की सफलता की प्राप्ति हो सके।" कंपनी के अधिकारी एक निर्णायक अथवा कलाकार के रूप में जाने जा सकते हैं जब वे अपने विधि को तैयार करते हैं अथवा किसी समय ऐसी विधि का प्रयोग करते हैं जो विभिन्न अवयवों के रूप में तुरंत उपलब्ध होती है अथवा किसी ऐसे अवयव की खोज करते हैं जिस पर कभी किसी ने कार्य किया हो। विपणन में महत्त्वपूर्ण यह है कि विक्रेता के पास जो भी है उसका संकलन अथवा सम्मिश्रण कैसा है अथवा उनके विकास करने से है जिनके द्वारा लाभदायक व्यावसायिक प्रक्रिया विनिमय प्रक्रिया द्वारा उपलब्ध की जा सके। इस प्रकार विपणन किसी भी विपणन प्रयास के निचोड़ का मिश्रण है। यह किसी फर्म के विपणन प्रयासों का मुख्य भवन है।

उपर्युक्त क्रियाएं अथवा निर्णय इस बात को बताते हैं कि विक्रेता या फर्म बाज़ार में किस चीज को प्रस्तुत करता है। इन्हीं के द्वारा बाज़ार का सृजन एवं प्रबंध होता है। उपर्युक्त लंबी विपणन मिश्रण की सूची को मैकार्थी ने फिर से चार भागों में विभाजित किया है

बॉर्डन के विपणन मिश्रण

पहले के प्रयास में इस बात का पता लगाना कि सचमुच एक विक्रेता क्या मिलाता है या इकट्ठा करता है, बॉर्डन ने विपणन मिश्रित तत्त्वों की एक सूची तैयार की है। बॉर्डन के विपणन मिश्रण में निम्न अवयव अथवा तत्त्व आते हैं–

- *उत्पाद नियोजन:* इसके अंतर्गत उत्पाद के क्रम, गुण, बाज़ार, नए उत्पादों की डिजाइन या रूप, और उनके विकास से संबंधित नीतियां और विधियां आती हैं।
- *मूल्यांकन:* इसके अंतर्गत मूल्य श्रृंखला, अतिरिक्त राशि मूल्य निर्धारण, नीति संबंधी क्रियाएं आती हैं।
- *ब्रैंडिग:* इसके अंतर्गत ब्रैंडिंग, ट्रेडमार्क जैसी क्रियाएं आती हैं।
- *वितरण की प्रणाली:* इसके अंतर्गत माध्यम, प्रकार, माध्यम की सहभागिता संबंधी नीतियां आती हैं।
- *व्यक्तिगत विक्रय:* इसके अंतर्गत व्यक्तिगत विक्रय तथा थोक और फुटकर व्यापार में व्यक्तिगत विक्रय पर कितना विश्वास किया जाए संबंधी नीतियां आती हैं।
- *विज्ञापन से संबंधित नीति और विधियां:* इसके अंतर्गत बजट, उत्पाद तथा व्यवसाय की प्रतिष्ठा संबंधी नीतियां आती हैं।
- *प्रोत्साहन:* इसके अंतर्गत विशेष विक्रय योजना पर क्या भार आएगा, ग्राहकों के प्रोत्साहन संबंधी तरीके आदि शामिल हैं।
- *पैकेजिंग:* इसके अंतर्गत लेबिल एवं पैकेज संबंधी नीतियाँ आती हैं।
- *दिखावट:* इसके अंतर्गत उत्पादों के दिखावट के तरीके और उनका व्यापारिक हित में प्रयोग संबंधी नीति आती है।
- सेवाएं कैसी दी जाएंगी।
- *भौतिक रूप से व्यवहार करना:* इसके अंतर्गत यातायात गोदाम तथा स्टॉक की सूची संबंधी नीति आती हैं।
- *तथ्यों का पता लगाना एवं उनका विश्लेषण:* विश्लेषण संबंधी नीति और विधि का निर्धारण तथा तथ्यों का विपणन क्रियाओं में प्रयोग।

जो प्रसिद्धि के आधार पर विपणन चार हैं 'P'– उत्पाद (Product) मूल्य (Price) स्थान (Place) प्रोत्साहन (Promotion) के रूप में जाने जाते हैं। ये सब विक्रेता के साधन हैं जो मिलकर एक प्रस्ताव का सृजन करते हैं एक सफल विक्रेता इन अवयवों के मिश्रण में क्षमता को प्रदर्शित करता है। यह केवल अच्छे मिश्रण का ही परिणाम है कि वे ग्राहकों के लिए अच्छे मूल्य का सृजन करते हैं और साथ ही साथ अपने विक्रय एवं लाभ के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं।

उत्पाद का मिश्रण तत्त्व इस बात को बताता है कि ग्राहकों के लिए बेस (वास्तविक) अथवा अति सूक्ष्म उत्पाद कितना सार्थक है। यह ग्राहकों की दृष्टि से उनकी आवश्यकताओं अथवा समस्याओं को हल करना अथवा संतोष देने का एक तरीका है। उदाहरण के लिए, कार या कलम ग्राहक में यातायात या लिखने की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। विक्रेता द्वारा लिया जाने वाला मूल्य दूसरा मिश्रित तत्त्व है। यह विक्रेता के लिए आय का साधन है। लेकिन ग्राहक के लिए उप बलिदान की तरफ इंगित करता है जिसे ग्राहक विक्रेता के वस्तु को लेता है। यह ग्राहक के लिए मूल्य या लागत है। स्थान अथवा वितरण तत्त्व ग्राहक के लिए सुविधा प्रदान करता है और अंत में प्रोत्साहन तत्त्व के अंतर्गत संप्रेषण की क्रियाएं आती हैं जिसे विक्रेता करता है। यह संप्रेषण के द्वारा ही पता चलता है कि क्या उत्पाद उपलब्ध है? मिश्रण को लुभाने वाला संयोग में आवश्यकताओं की संतुष्टि का उत्पाद होगा जिसे क्रेता को कम मूल्य पर आसानी से उपलब्ध कराया जा सकेगा जिसके लिए संप्रेषण अधिक क्षमता से किया जाता है।

उत्पाद

विपणन मिश्रण का सबसे प्रत्यक्ष तत्त्व उत्पाद है- उदाहरण के लिए, फिलिप्स जैसी कंपनी टेलीविजन, आडियो, प्लेयर, सेलफोन, रेडियो का उत्पादन करती हैं। गोदरेज साबुन, चमड़े की क्रीम, बाल डाई करने का पाउडर, रेफ्रीजीरेटर, स्टील की आलमारी और कुर्सियां बनाते हैं। ये सब फर्म उत्पाद विपणन फर्म कहलाती है। कुछ फर्म सेवाओं का विक्रय करती है; जैसे– बैंक, बीमा कंपनियां तथा सिनेमा हाल। उत्पाद का अर्थ विक्रेता तथा ग्राहकों की दृष्टि से क्या हैं ?

विपणन मिश्रण

उत्पाद
- उत्पाद मिश्रण
- नए उत्पादों का निर्णय
- पैकेजिंग
- लेबलिंग
- उत्पाद का गुण
- ब्रैडिंग

मूल्य
- मूल्यांकन के तरीके
- मूल्यांकन की व्यूह रचना या रणनीति
- मूल्यांकन की नीति
- मूल्य परिवर्तन

स्थान
- चक्रव्यूह या रणनीति का माध्यम
- मध्यस्थ
- लंबरूप (Vertill) विपणन प्रणाली
- माध्यम की लड़ाई
- माध्यम चुनाव
- भौतिक वितरण

प्रोत्साहन
- प्रोत्साहन मिश्रण
- विज्ञापन
- विक्रय-प्रोत्साहन
- व्यक्तिगत विक्रय
- प्रचार
- जनसंपर्क

साधारण शब्दों में यह कहा जा सकता है कि विक्रेता जो बेचना चाहता है और क्रेता जो खरीदना चाहता है उसे उत्पाद कहते हैं। उत्पाद को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "कोई भी चीज जिसे बाज़ार में एक इच्छा या आवश्यकता की संतुष्टि के लिए पेश किया जाए इसे आकर्षण के लिए, प्राप्त करने के लिए, प्रयोग करने के लिए अथवा उपभोग के लिए पेश किया जाता है। एक उत्पाद मुख्य रूप से ग्राहकों की आवश्यकता की संतुष्टि करता है।" इस परिभाषा का केंद्र बिंदु भौतिक उत्पाद नहीं है लोग साधारण तौर पर उन्हीं चीजों को लेना चाहेंगे जिनका उनके लिए भौतिक अर्थ हो, परंतु विपणन की दृष्टि से उत्पाद के अंदर वे चीजें आती हैं जिन्हें ग्राहक की आवश्यकता संतुष्टि के लिए पेश किया जाए। चूंकि ग्राहकों की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताएं होती हैं जिन्हें बहुत-सी चीजें पेश करके संतुष्ट किया जा सकता है। इस कारण उत्पाद में चीजें, सेवाएं घटनाएं, व्यक्ति, स्थान, विचार तथा रचनाएं आदि शामिल होती हैं।

उत्पादन की दृष्टि से एक उत्पाद का अर्थ है विभिन्न भागों का जटिल मिश्रण इस स्वरूप के अंतर्गत मुख्य बिंदु उत्पादन प्रक्रिया होती है। अर्थात उत्पाद को बनाने में क्या प्रयोग किया जाता है घटक हिस्से और केमिकल्स आदि। विपणन का स्वरूप ग्राहकों के लिए क्या किया जाता है पर ध्यान केंद्रित करता है। उसी तरह उत्पाद को एक उपयोगिता के बंडल के रूप में देखा जाता है जिसे ग्राहकों को दिया जाता है। इसके द्वारा भौतिक एवं क्रियात्मक और मनोवैज्ञानिक संतुष्टि प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए, एक कलम द्वारा लिखने की क्रियात्मक उपयोगिता प्रेरित होती है साथ ही साथ इससे प्रतिष्ठा एवं भौतिकी का मनोवैज्ञानिक लाभ भी मिलता है। एक कार से यातायात की क्रियात्मक उपयोगिता प्राप्त होती है परंतु इससे सम्मान की भी उपयोगिता प्राप्त होती है। उत्पाद तत्त्वों का एक मिश्रण है जिसे विक्रेता उस उद्देश्य से बाज़ार में ले जाता है ताकि वह ग्राहकों के संभावित विनिमय का यथार्थीकरण कर सके ।

- क्रेताओं के संदर्भ में उत्पाद वह है जिसे वह विक्रेता द्वारा लेन देन में प्राप्त करता है।
- क्रेता सदा भौतिक उद्देश्य की प्राप्ति नहीं करता है। कभी क्रेता जो खरीदता है वह एक सेवा होती है जो अदृश्य होता है।
- एक विपणक को यह समझना चाहिए कि क्रेता किसी उत्पाद अथवा सेवा को नहीं खरीदता है बल्कि उत्पाद अथवा सेवा उसके किस काम आती है।

यह विचारधारा विपणक को उत्पाद पर अधिक ध्यान देने में सहायक होती है। उत्पाद के प्रति यह सम्मोह कभी-कभी विपणन के चौंधेपन का मूल कारण हो जाता है। इसलिए विपणक को उत्पाद अथवा सेवाओं द्वारा ग्राहकों को दी जाने वाली उपयोगिता पर ध्यान देना चाहिए। एक उत्पाद क्रियात्मक, सामाजिक, और मनोवैज्ञानिक लाभ का एक साधन है। उदाहरण के लिए, एक कमीज तीन उपयोगिताओं को साथ रख

विभिन्न प्रकार के उत्पाद

• भौतिक उत्पाद	• साबुन, कार, टेलीविजन, जूते;
• सेवाएं	• बैंकिंग, बीमा, शिक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा;
• अनुभव	• प्रदर्शन, नाट्यघर, फुटकर बिक्री करना;
• स्थान	• केरल, मलेशिया, दुबई;
• विचार	• ड्रग्स के लिए नहीं कहो;
• सूचना	• सूचना सेवाएं जैसे निर्यात विधि;

सकती है। ये उपयोगिताएं धूप से सुरक्षा अथवा मौसम से ग्राहकों को सुरक्षा (क्रियात्मक लाभ) एक ग्राहक कमीज पहनकर स्वयं को चतुर एवं विश्वास योग्य समझ सकता है (मनोवैज्ञानिक लाभ) वह एक विशेष प्रकार की कमीज पहनकर एक समूह द्वारा स्वीकृति प्राप्त कर सकता है। (सामाजिक लाभ)

एक विपणक को उत्पाद की धारणा सही तरीके से समझने के विभिन्न कारणों में से एक कारण यह है कि इससे उसे उत्पाद के पेश करने में सहायता मिलती है। बाज़ार में उत्पाद को पेश करते समय यह आवश्यक है कि संभावित क्रेता या ग्राहक पर ध्यान दिया जाए। क्रेता क्या चाहता है यही उत्पाद के नियोजन का आधार होना चाहिए। उसी तरह एक विपणक अपने प्रस्ताव को विकसित करने के लिए उत्पाद धारणा के विभिन्न स्तरों को प्रयोग कर सकता है।

स्तर मूल्यों को विभिन्न तहों की ओर इंगित करते हैं जिसे उत्पाद में जोड़ा जा सकता है ताकि अधिक संतुष्टि प्राप्त हो सके ओर प्रतिद्वंदियों को भी नीचा दिखाया जा सके।

(i) प्रथम स्तर पर मुख्य लाभ होता है यह एक आधारभूत लाभ होता है जिसे ग्राहक खरीदता है अथवा किसी उत्पाद अथवा सेवा में तलाश करता है। उदाहरण के लिए, एक कार मुख्य रूप से यातायात की सुविधा देता है अथवा जूते का एक जोड़ा पैरों की सुरक्षा देता है। विपणक मूलभूत उत्पाद को मुख्य लाभ की सुपुर्दगी के लिए बनाता है। इस प्रकार यातायात के मुख्य लाभ और पैरों की सुरक्षा कार या जूते द्वारा प्राप्त हो सकती है।

(ii) उत्पाद का दूसरा स्तर आशावाद उत्पाद है इसका यह अर्थ हुआ कि एक ग्राहक खरीदारी करते समय क्या आशा करता है, अर्थात् एक क्रेता कार अथवा जूते के क्रय में किन विशेषताओं की आशा करता है। उदाहरण के लिए, एक ग्राहक कार के क्रय में एक अच्छी मूल्य रूप, रंग, कार्य तथा तेल खपत की क्षमता आदि गुणों की कल्पना करता है उसी तरह जूता क्रय करने वाला ग्राहक यह चाहेगा कि जूता ठीक माप, रंग और आरामदायक हो। क्रेता की आशा उत्पाद के न्यूनतम स्तर को निर्धारित करती है ताकि वह उत्पाद स्वीकार किया जा सके।

उपभोक्ता की वस्तुएं

टिकाऊ वस्तुएं: ये सब एक बार में ही उपभोग नहीं की जाती हैं ये बहुत दिन तक रहती है और बहुत तरीकों द्वारा प्रयोग की जाती है और इसलिए इनकी खरीद असामान्य रूप से की जाती है। इलेक्ट्रिक आयरन, टेलीविजन, रेफ्रीजरेटर आदि।

अटिकाऊ वस्तुएं: इनका उपयोग एक अथवा कुछ रूपों में किया जाता है उन्हें तेजी से प्रयोग में लाया जाता है तथा ये सामान्य रूप से खरीदी जाती हैं; जैसे– साबुन, दंतमंजन आदि।

आराम वाली वस्तुएं: इन्हें सामान्य तरीके से लगातार खरीदा जाता है जिनके लिए कम से कम प्रयास करना होता है ग्राहक इनके खरीद में कम से कम प्रयास करता है। जैसे– नमक सिगरेट कोल्डड्रिंक आदि।

शापिंग सामान: इन वस्तुओं की खरीद काफी प्रयास और उनके मूल्य गुण, उपयोगिता प्रकार आदि को ध्यान में रखकर किया जाता है। जैसे– कुर्सी, जूते, कार आदि।

विशिष्ट वस्तुएं: इस प्रकार की वस्तुएं बिलकुल अद्भूत होती हैं और इन्हें खरीदने के लिए क्रेता को विशेष प्रयास करना पड़ता है; जैसे– आदमियों का सूट, डिजाइन की कुर्सी, घड़ी आदि।

बिना खोजा हुआ सामान: ये ऐसी वस्तुएं हैं जिनके बारे में उपभोक्ता को पता नहीं चलता और ये इन्हें खरीदने की सोच भी नहीं सकते; जैसे– बीमा पॉलिसी, आग बुझाने वाले यंत्र आदि।

(iii) लेकिन केवल क्रेता की इच्छानुसार उत्पाद को बनाने से प्रतिस्पर्धा के बाज़ार में जीवित रहने के लिए पर्याप्त नहीं है इस प्रकार एक तीसरे स्तर के उत्पाद की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसे वृद्धि किया हुआ उत्पाद स्तर कहा जाता है वृद्धि करने का तात्पर्य है अतिरिक्त गुण जिसे विपणक अपने उत्पाद में जोड़ सकता है। कार बनाने वाला विक्रय के बाद की सेवाओं, वित्त संबंधी व्यवस्था, गारंटी, क्रय के बाद निःशुल्क परीक्षण आदि सेवाएं प्रदान कर सकता है जिसे अतिरिक्त गुण में सम्मिलित किया जा सकता है। विपणक अपने उत्पादों में वृद्धि इसलिए करते हैं ताकि वे प्रतिद्वंदियों की तुलना में ग्राहकों को अच्छी तरह संतुष्ट कर सके।

विपणन के अंतर्गत चीजों और उत्पाद को कभी-कभी आपस में बदलकर प्रयोग किया जाता है। उत्पादों का वर्गीकरण विभिन्न तरीकों द्वारा किया जाता है इस प्रकार का एक वर्गीकरण की योजना उत्पाद के गंतव्य स्थान पर निर्धारित करती है अथवा उत्पाद के अंतिम ग्राहक पर आधारित होती है। इसी तरह हम उपभोक्ता की वस्तुओं और औद्योगिक वस्तुओं को रखते हैं उपभोक्ता वस्तुओं में जूते, लिपिस्टीक, दंतमंजन, कमीज तथा घड़ी आदि आते हैं दूसरे तरफ औद्योगिक वस्तुएं वे हैं जिनका प्रयोग व्यापारी अथवा औद्योगिक समूह खुद के उपभोग के लिए नहीं खरीदते हैं बल्कि एक उत्पाद को बनाने के लिए खरीदते हैं उत्पाद प्रायः दूसरे अंतिम उत्पाद को बनाने में योगदान करते हैं। औद्योगिक वस्तुओं के उदाहरण के अंतर्गत लोहा, कोयला, रबड़, उपकरण तथा यंत्र आदि सम्मिलित होता है।

कोपलैंड ने एक दूसरे वर्गीकरण की योजना के बारे में बताया है। उन्होंने उपभोक्ताओं के क्रय के व्यवहार एवं रुख के आधार पर वस्तुओं को विभिन्न प्रकार वर्गीकृत किया है। इस वर्गीकरण की योजना में तीन तरह के सामान– सुविधा, शापिंग और विशिष्ट सामान आते हैं। सुविधा वाली वस्तुएं वे हैं जो क्रेता द्वारा कम से कम प्रयास द्वारा लगातार क्रय की जाती है इस श्रेणी की वस्तुओं के अंतर्गत दिया-सलाई, नमक, सिगरेट, दंतमंजन, और बिस्कुट आते हैं।

दूसरे श्रेणी की वस्तुओं में 'शापिंग गुडस' आते हैं। जैसा कि नाम से प्रतीत होता हैं ये ऐसी वस्तुएं हैं जिन्हें काफी प्रयास के बाद खरीदा जाता है। इन

औद्योगिक वस्तुएं

पूंजीगत वस्तुएं: इस तरह की वस्तुएं काफी समय तक रहती हैं और प्रत्यक्ष रूप से अंतिम उत्पाद बनाने या उसका विकास करने में योगदान देती है। इस प्रकार के सामान का उदाहरण व्यवस्थापन और साधन है (Installation and Equipment)।

- *व्यवस्थापन:* इसके अंतर्गत भवन आते हैं जिसमें फैक्टरी और कार्यालय कार्य करते हैं।
- *साधन:* इनका प्रयोग उत्पाद को बनाने में किया जाता है जैसे संभवत मानव (Robots) ड्रिल्स, प्रेसेज, हैंडटूल्स, लिफ्ट आदि।

कार्यालय साधन: ऐसे यंत्र जो कार्यालय के काम में आते हैं जैसे कंप्यूटर टाइपराइटर, फैक्स मशीन और टेलीफोन।

कलपूर्जे: वे सामान जो प्रत्यक्ष रूप से एक उत्पाद को बनाने में प्रयोग किया जाता है। इन कल पूर्जों का प्रयोग बिना किसी फेरबदल के किया जाता है। उदाहरण के लिए, टायर, लैम्प, बैटरी अथवा कार में बिजली का सामान।

कच्चा माल: अंतिम उत्पाद को बनाने के लिए कच्चा माल का प्रयोग एक योगदान के रूप में किया जाता है ये दो प्रकार के होते हैं : खेती योग्य माल (गन्ना, फल-फूल एवं सब्जियां) तथा प्राकृतिक उत्पाद (कच्चा तेल, जिंक, चूना, लकड़ी और कच्चा लोहा)

प्रयासों के अंतर्गत खोज ओर सामानों का मूल्य, गुणा और उपयोगिता के आधार पर तुलना की जाती है अर्थात् इस प्रकार की खरीद में उपभोक्ता बाज़ारों में उपलब्ध वस्तुओं में से एक उपयुक्त उत्पाद को तलाश करने में काफी प्रयास करता है इस प्रकार के सामान के उदाहरण में टेलीविजन, फर्नीचर, जूते, रसोई के समान, म्यूजिक सिस्टम कमीज और सूट आदि आते हैं।

तीसरे श्रेणी के सामानों में विशिष्ट सामान आते हैं- विशिष्ट सामान अद्‌भूत प्रकार के होते हैं और ग्राहकों के लिए विशेष महत्त्व रखते हैं। क्रेता इनके बारे में प्राय: ज्ञान रखता है और उनकी इच्छा विशेष रुचि के कारण करते हैं। परिणाम यह होता है कि क्रेता इसे प्राप्त करने के लिए विशेष प्रयास करता है विशिष्ट सामान महंगे और सस्ते दोनों प्रकार में हो सकते हैं सस्ते दामों के अंतर्गत टिकट और सिक्कों का इकट्ठा करना आता है अथवा Discontinuity विशेषक के लिए खास तरह का खाना। महंगे विशिष्ट वस्तुओं के अंतर्गत डिजाइनर सूट (अरमनी सूट) कार (मर्सिडीज या फोर्ड) कलम (मोंट ब्लैंड या कार्टियर) क्रेता इस प्रकार के सामानों के क्रय के लिए विशेष प्रयास को तैयार रहते हैं।

उत्पाद मिश्रण

एक फर्म जब अपनी विपणन की क्रियाओं को शुरू करता है तो प्राय: वह एक उत्पाद से करता है। ऐसा इसलिए कि प्रारंभ में उसके सामने जो चुनौती होती है कि वह अपने प्रयासों को छोटे बाज़ार में केंद्रित करे ताकि उसे सफलता प्राप्त हो। उदाहरण के लिए, निरमा ने सबसे पहले कपड़े धोने वाले बाज़ार में धावा बोला। अमूल ने सबसे पहले अपने मक्खन के बाज़ार को संभाला। विडियोकॉन का पहला प्रवेश टेलीविजन

रिलायंस में सेवाओं का विपणन

भारत में स्वदेशी बाजार बहुत ही मजबूत है, इसके अंदर काफी क्षमताएं है। हमारे मोबाइल में जावा है जिससे कोई भी व्यक्ति कही भी कभी भी बात कर सकता है।

हमारी आय का स्तर सभी व्यवसायों में एक समान रहता है। हम पूंजीगत लागत एवं क्रियात्मक लागत का निर्धारण करते हैं और हम वास्तव में ग्राहकों के पीछे काम करते हैं। मोबाइल फोन की दिशा में हम ये नहीं चाहते कि कोई ग्राहक प्रति माह पांच सौ रुपए से ज्यादा दे। हम ग्राहकों से फोन प्राप्त करने के लिए 1500 रुपए नहीं ले सकते और इसे बर्दाश्त नहीं कर सकते। हमें इसे 400 रुपए तक लाना है लेकिन यह कैसे होगा यह प्रश्न है। ग्राहक की दृष्टि वह आदमी आपके घर आया हम उन्हें एक फोन देंगे जिसका प्रदर्शन वह आपके सामने करेंगे गांव में हम यह कहेंगे "अच्छा इससे बातकर लो" इससे ग्राहक टेलीफोन की आवाज के गुणों को परख सकता है और उसकी उपयोगिता समझ सकता है। प्रत्येक आदमी उत्पाद को स्पष्ट करना एवं महसूस करना चाहता है। इसके बाद नए आकड़ों का प्रदर्शन करेगा। हमे विश्वास है कि इन प्रदर्शनों से हम काफी विचार प्राप्त करेंगे।

एक बार जब कोई ग्राहक हमारा फोन खरीदने को तैयार होता है तो वह फार्म भरता है। भारतीय टेलीफोन की आवश्यकताएं बहुत ही जटिल है। वह अपने फार्म को सिस्टम में जमा करेगा। कुछ लोगों का यह विश्वास है कि विपणन टेलीविजन में अच्छे विज्ञापन को देता है।

जब ग्राहकों का फार्म आता है तो यह स्वयं प्रोसेस हो जाता है और पर्ची बाहर आ जाती है। कोरियर आपके घर फोन सुपुर्दगी करता है। इस संजोग के द्‌वारा ग्राहकों की प्राप्ति लागत 400 रुपए से कम हो जाती है। प्रभावी तरीके पर हम लोग ग्राहकों को लुभाने के लिए 100 करोड़ से 300 करोड़ तक प्रतिमाह खर्च करते हैं और उसके बाद भी एक से दो लाख आदमी, छ: सौ अलग शहरों में रिलायंस के प्रति निष्ठा रखते हैं।

बाज़ार में हुआ और टी–सीरीज ने कैसेटों का व्यवसाय शुरू किया। बहुत सी फर्म पहले एक उत्पाद से कार्य आरंभ करती है ओर समय के साथ–साथ वह अपने प्रयासों को बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए, निरमा अब नमक, स्नानघर के साबुन, दंतमंजन को भी बेचने लगा है। विडियोकॉन के पास भी अब फ्रिज, आडियो सिस्टम, संपत्ति, वाशिंग मशीन, वातानुकूलित यंत्र जैसे सामान हैं। अर्थात् एक उत्पाद वाली कंपनी बहु उत्पाद वाली कंपनी में परिवर्तित हो जाती है। इस प्रयास के पीछे यह भावना होती है कि विकास हो और बाज़ार में बने रहे तथा एक क्रमबद्ध योजना, जिसे उत्पाद मिश्रण कहते हैं, जिसका प्रयोग व्यापार में सोच समझ कर किया जाए।

जब एक फर्म अपने बहुत से उत्पादों को एक साथ बाज़ार में रखती है तो धीरे–धीरे उनके प्रयास बहुत हो जाते हैं। अर्थात् ये फर्म बहु उत्पादित फर्म हो जाती है। उदाहरण के तौर पर, जब हुंडई मोटर्स ने अपना कार्य भारत में शुरू किया। उसने अपने प्रयास को सैंट्रो के रूप में आरंभ किया लेकिन अब इसके पास बहुत से उत्पाद हैं; जैसे– सोनाटा Acce आदि। ठीक इसी प्रकार मारुति ने अपना उत्पाद मारुति 800 से शुरू किया। लेकिन मारुति की उत्पाद श्रेणी में अब जेन, वैगन R, इस्टीम, स्पीन, जिप्सी बालेनो और अलटो हैं।

संपूर्ण उत्पाद जो एक विपणक बाज़ार में प्रस्तुत करता है उत्पाद मिश्रण अथवा उत्पाद वर्गीकरण कहते हैं। उत्पाद मिश्रण उत्पाद की लाइनों से बना हुआ है। उदाहरण के लिए, आई. टी. सी. के उत्पाद मिश्रण में होटल (वेलकम समूह) सिगरेट (विल्स, इंडिया किंग) बने बनाए कपड़े (विल्स, स्पोर्ट) और किराना के सामान हैं (आभीर्वाद)। उत्पाद की प्रकृति एवं गुण जो मिश्रण में पाया जाता है उन्हें उत्पाद लाइन, चौड़ाई, गहराई, लंबाई और एक रूपता के रूप में जाना जाता है।

(i) उत्पाद लाइन यह एक उत्पाद की श्रेणी के उत्पाद से संबंध रखता है जो एक दूसरे से अपनी समानता कार्य की उपलब्धि के रूप में अथवा खरीदने वाले के रूप में रखते हैं। उदाहरण के रूप में, डिटरजेंट लाइन, दंतमंजन लाइन या मोटर साइकिल लाइन।

(ii) चौड़ाई का मिश्रण इसका तात्पर्य संपूर्ण उत्पाद की लाइनों से है जिसे एक कंपनी बेचती है या उस पर कार्य करती है। कुछ कंपनियां कम चौड़ाई रखती है और केवल एक या बहुत कम सामानों में काम करती हैं; जैसे– मारुति केवल कारों का काम करती है जब कि कुछ कंपनियां बहुत ही विस्तार से कार्य करती हैं; जैसे– पी. और जी. जो कपड़े धोने के पाउडर, स्नानघर के साबुन, डाइपर लाइन और स्त्रियों के स्वास्थ्य से संबंधित सभी सामानों को बेचता है।

(iii) लाइन की लंबाई इसका तात्पर्य ऐसे उत्पादों से है जो एक प्रकार के होते हैं तथा एक लाइन में होते हैं। जैसे– हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड अपने नहाने के अलग–अलग सामानों को एक लाइन में रखता है; जैसे– लक्स, रेक्सोना, लाइफबॉय, हमाम, डव, ब्रीज, लिटिल, डेनिम, केयर एंड लवली आदि।

(iv) गहराई उत्पाद गहराई से तात्पर्य उन अलग–अलग प्रकारों से है जो प्रत्येक उत्पाद में पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए, लक्स साबुन विभिन्न रंगों तथा महकों में आता है। कभी–कभी ये विभिन्न प्रकार के पैक साइजों में उपलब्ध होते हैं।

(v) मिश्रित एकरूपता एकरूपता का तात्पर्य इससे है कि उत्पाद एक दूसरे से कितने मिलते हैं जो कि मिश्रण में पाए जाते हैं। इनकी समानता उत्पाद आवश्यकता, वितरण अथवा ग्राहकों में देखी जा सकती है।

मिश्रित विस्तार से यह पता चलता है कि कोई फर्म कैसे विकसित होती है और अपने व्यवसाय को बढ़ाती है पहले नए उत्पाद लाइनों को बढ़ाया जा सकता है। आई. टी. सी. ने अभी हाल में ही अपने

उत्पादों में सिले–सिलाए कपड़ों को शामिल किया है बजाज ने अपने उत्पादों में मोटर साइकिल को जोड़ा जब उन्होंने देखा कि मोटर साइकिल बाज़ार में विकास की गति तेज है। दूसरा विकल्प फर्म के लिए यह है कि वह उत्पाद लाइन और उत्पाद को जोड़कर बढ़ा दे। उदाहरण के तौर पर, विडियोकॉन ने अभी अपनी टेलिविजन लाइन में दो नए बैंड बड़ा दिए (अकाई और सैन्सुइ) इसके बाद भी कंपनी अपने समानों की गहराई सामानों में विभिन्न प्रकार के रूप में बढ़ा सकती है। उदाहरण के लिए, हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड (एच. एल. एल.) ने अपनी लिरिल साबुन के प्रकार में बर्फीला नीला रंग तथा लाइफबॉय ब्रांड ने सुनहरा तथा संतरा रंग का प्रकार बढ़ाया है।

ब्रांडिग

बाज़ार में घूमने के बाद यह पता चलता है कि एक दुकान में दो तरह के समान होते हैं। एक उत्पाद का एक समूह नामों से जाना जाता है जो बाज़ार में आसानी से पहचाना तथा जाना जाता है। और उत्पाद का दूसरा समूह बिना किसी नाम के होता है। उत्पाद जैसे पेप्सोडेंट, फिलिप्स, नेचर फ्रेस, राजधानी पिलस्बरी और सैमसंग पहले समूह में आते हैं। जबकि दूसरे समूह की वस्तुएं सामान्य रूप से बेची जाती है; जैसे– चावल, नमक बेसन आदि। उत्पाद जो निश्चित रूप से पहचाना जाता है वह बेचने वाले तथा खरीदने वाले दोनों के लिए लाभदायक होता है। ऐसा तरीका जो एक उत्पाद को

हिंदुस्तान लीवर के उत्पाद मिश्रण

साबुन	डिटरजेंट	शैम्पू	टूथपेस्ट
पियर्स	सुपर 501	सनसिल्क	क्लोज अप
लाइफबॉय	सर्फ	क्लीनिक	पेप्सोडेंट
लाइफबॉय गोल्ड	सर्फ इंटरनेशनल	आलक्लियर	पेप्सोडेंट गमस्
लाइफबॉय आरेंज	रिन	लक्स	पेप्सोटेंट टू इनवन
लाइफबॉय लिक्वीड	नीला ह्वील		
लक्स	रिन केक		
लक्स इंटरनेशनल	हरा ह्वील		
लक्स सावर जेल	सर्फ ऐक्सेलमेटिक		
रेक्सोना	सर्फ डिब्बा		
ब्रीज			**स्किन सामग्री**
लिरिल			फेयर एंड लवली क्रीम
लिरिल सावर जेल			फेयर एंड लवली लोशन
डव			लिरिल पाउंडर
मोती			पियर्स फेस वास
हमाम			
जय			
सेवलान			
फेयर एंड लवली			
डेनिम			

एक अलग अस्तित्व प्रदान करता है उसे ब्रैडिंग कहते हैं और इस प्रक्रिया का परिणाम ब्रांड के सृजन के रूप में होता है। आजकल बाज़ार का झुकाव ब्रैडिंग के तरफ है। वह उत्पाद जो सामान्य नाम से बेचे जाते थे वह भी अब ब्रांडेड हो गए हैं। शुरू में भारत में केवल उत्पादित वस्तुएं ही ब्रांडेड होती थी लेकिन अब उपयोगी वस्तुएं भी ब्रैडिंग होती जा रही है। इस प्रकार हमें उपयोगी वस्तुओं जैसे नमक, पेट्रोल, नमकीन में भी ब्रांड मिलता है।

ब्रैडिंग को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते है कि यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक नाम, चिह्न, व्यवहार या डिजाइन का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से या किसी मिश्रण के साथ किसी उत्पाद को पहचानने के लिए किया जा सकता है। आजकल ब्रैडिंग न केवल बेचने वाले अथवा बनाने वाले को ही पहचानने के लिए किया जाता बल्कि उनको अपने प्रतियोगी से भी अलग रखता है। ब्रांड को एक संक्षिप्त रूप से परिभाषित किया जा सकता है कि यह एक शब्द चिह्न, अवसर अथवा इन सबका एक समूह है। लेकिन ब्रांड एक पहचानने के चिह्न से भी कहीं ज्यादा है। यह वास्तव में बेचने वाले का वचन होता है कि वह निश्चित लाभ, गुण अथवा संतुष्टि की सुपुर्दगी करे। एक ब्रांड खरीदने वाले की इच्छाओं को बताता है तथा उनको संतुष्टि देने के लिए लगातार वचनबद्ध रहता है।

ब्रैडिंग की शुरुआत अठारहवीं शताब्दी में हुई जब जानवरों एवं शराब बेचने वालों ने अपने समानों पर अलग निशान लगाना शुरू किया ताकि वह दूसरों से अलग दिख सके। चिह्न, निशान और नाम के द्वारा उत्पादक यह जान जाते थे कि कौन-सा माल उनका है। और दूसरी तरफ उपभोक्ता यह ज़ान जाते थे कि कौन-सा उत्पादक उन्हें बढ़िया वस्तुएं देता है। ब्रैडिंग ने बाज़ार में नाम कमाया क्योंकि यह उपभोक्ता तथा उत्पादक दोनों के लिए ही फायदेमंद साबित हुआ। ब्रांड की सहायता से हम यह आसानी से जान सकते हैं कि कौन सा उत्पाद किस कंपनी का है। इससे हमे पहले ही पता चल जाता है कि कौन-सा उत्पाद अच्छा गुण रखता है या नहीं। जब फर्म समान में अच्छा नाम बना लेती है तब ब्रांड उन्हे ही उपभोक्ताओं पर बेहतर पकड़ बनाने में मदद करती है क्योंकि उपभोक्ता बार-बार उनके उत्पाद खरीदने लगते हैं। इस तरह वह खरीदने वालों की निष्ठा को ब्रांड की सहायता से प्राप्त कर सकते हैं। निष्ठावान ग्राहक, अनिष्ठावान ग्राहकों से अधिक लाभप्रद होते हैं। और दूसरी तरफ ब्रांड ग्राहकों को बाज़ार की खरीदारी करने में सहायक होता है। जब ब्रांड जाना पहचान होता है तब खरीदने वाले को उत्पाद की उपयोगिता का मूल्यांकन नहीं करना पड़ता जब भी वह उसे खरीदते हैं। उसके अंदर एक ऐसी सोच उत्पन्न हो जाती है कि कौन-सा ब्रांड खरीदना है और कौन-सा नहीं। ब्रांड द्वारा दी गई एकरूपता की वचनबद्धता ग्राहकों को खरीदारी में उनके प्रयासों में सरलता लाती है। इससे खरीदारी की तीव्रता बढ़ जाती है। इस प्रकार विक्रेता बेचने के समय तथा प्रयास में कमी करता है।

ब्रांड के नाम व्यूह रचना (Strategy)

एक बेचने वाले को कौन-सी ब्रैंडिंग अपनाई जाए यह एक कठिन प्रश्न है। विभिन्न उपलब्ध विकल्पों में उचित और सचेत चुनाव करना पड़ता है। नीचे दी गई ब्रैंडिंग की कुछ मुख्य व्यूह रचना (Strategy) है:

(i) व्यक्तिगत ब्रैंडिंग : इसके अंतर्गत प्रत्येक उत्पाद के लिए फर्म अलग-अलग ब्रांड नाम का प्रयोग किया जाता है। एक उत्पाद का ब्रांड नाम दूसरे उत्पाद को विकसित करने के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। बहुत ही कम कंपनियां हैं जो इस व्यूह रचना को पूर्ण रूप से प्रयोग में लाती है। रैकिट बेनकिसर एक ऐसी कंपनी है जो इस सिद्धांत को प्रयोग में

लाती है। इसके ब्रांड के समूह में विभिन्न नाम हैं; जैसे– रॉबिन नील, जूते की चेरी ब्लाशम पालिश, फर्श की सफाई के लिए लाइजोल घास की सफाई के लिए कोलिन, फर्श की पालिश के लिए मेशन। इस तरह दूसरी कंपनियां जो इस व्यूह रचना को प्रयोग करती है वह है प्राकटर और गैंबल, इसके ब्रांड समूह में कई नाम आते हैं, जैसे– कैमे, एरियल, टाइड, विस्पर, हेड एंड सोल्डरस और ओल्ड पाइस। इस व्यूह रचना का सबसे बड़ा फायदा यह है कि यह फर्म को एक अलग पहचान बनाने में सहायता करता है जबकि इसका नुकसान दायक हिस्सा यह है कि यह एक मंहगी व्यूह रचना साबित होती है।

(ii) असीमित पारिवारिक ब्रैंडिंग : यह व्यक्तिगत ब्रैंडिंग से बिलकुल अलग है। इस व्यूह रचना को फीलिप्स, सैमसंग, डब और जनरल इलैक्ट्रिक जैसी कंपनियां प्रयोग करती हैं। इस व्यूह रचना के अनुसार कंपनियां अपने सभी सामानों के लिए एक ही ब्रांड नाम इस्तेमाल करती है। यह एक बहुत ही साधारण तथा सस्ती व्यूह रचना है। जब कभी फर्म का कोई नया उत्पाद बाज़ार में आता है तब फर्म को उसकी ब्रांड बनाने के लिए अत्यधिक रुपए नहीं खर्च करने पड़ते। इसी कारणवश फर्म के स्थापित नाम की वजह से नए उत्पाद को जल्दी ही पहचान तथा मान्यता मिल जाती है। उदाहरण के लिए, जब सैम्संग ने भारत के

ब्रांड निष्ठा

क्या ब्रांड निष्ठा एक पौराणिक कथा है ?

इसको शुरू करने का न्यायसिद्ध तरीका यह है कि असली ब्रांड की प्रथा को देखें। पहले, यह कि उस व्यक्ति ने पिछले छः महीनो में उस ब्रांड को प्रयोग किया है। दूसरा, यह कि क्या वह व्यक्ति उस उत्पाद को दूसरों से इस्तेमाल करने को कहता है और तीसरा, यह कि क्या उस व्यक्ति ने उसी श्रेणी को उसी समय में किसी और वस्तु का उपभोग किया है।

सबसे ऊपर की तलिका बहुत ही अंतरंग लगती है। जैसा कि एक सोचता है कि कोलगेट 82% से उन सबसे आगे है जो उसे पहचानते हैं और इस्तेमाल करने का दावा भी करते हैं। दूसरे स्थान पवर ब्रिटैनिया उपभोग के 78% के अंक पर है।

उपभोक्ता टिकाऊ ब्रांड केवल उपभोग की वजह से बिना कारण ही नुकसान उठाती है। सबसे कम इस्तेमाल होने वाली साठ ब्रांडों में मारुति भी है जिसका कारण भी स्वीकार करने योग्य है (उसका अत्यधिक विशाल बाजारी परीक्षण) जो कि केवल नौ प्रतिशत है (उसका पहचान तल)।

परंतु अब कम उपभोग बिना कारण ही उत्पादक को परेशान नहीं करते। कम उपभोक्ता प्रचलन तलिका मारुति सबसे कम उपभोक्ता ब्रांड होने के बाद भी मजबूत अंकों की श्रेणी में 48 वे स्थान पर है और उसके 88 प्रतिशत उपभोक्ता दूसरों को भी मारुति इस्तेमाल करने की सलाह देते हैं। इस कारण तो मारुति को उपभोक्ता तालिका में सबसे आगे कर दिया है।

प्रतिवादी आश्चर्य-चकित रूप से आमंत्रित है दूसरी अलग ब्रांड इस्तेमाल करने के लिए। भारत की कुछ बहुत ही शक्तिशाली ब्रांड ने भी तुच्छ ढंग के फिलैड्रिंग का सामना भी किया है। इससे यह मालूम होता है कि उपभोक्ता अब सही मूल्य समय को देखते हैं, तब भी जब उपभोक्ताओं के विचार किसी बड़ी कंपनी के ब्रांड मिलते-जुलते हैं।

लेकिन फिर भी कोला साबुन तथा पाउडर आदि से कम निष्ठा क्यों पाते हैं? अंत में यह कहा जा सकता है कि यह सब बाज़ार की तीक्ष्णता पर निर्भर होता है। श्रेणी चाहे जो कुछ हो, अंतर स्पष्ट रूप तथा अस्पर्शमय कारणों का, यह विपणन का कार्य है कि वह ब्रांड को एक ऐसी वरीयता दिलाए जो कभी भी न डगमगाए।

मोबाइल बाज़ार में कदम रखा तो उसे अपनी फर्म के नाम के कारण जल्दी ही अलग पहचान तथा संघ मिल गया। उसे अपने ग्राहकों को सब कुछ शुरू से समझाने अथवा बताने की जरूरत ही नहीं पड़ी। परंतु इसका एक नकारात्मक पक्ष यह है कि वह बहुत तेजी से अपने ब्रैंड को आगे नहीं बढ़ा सकी। जब कभी विभिन्न प्रकार के समान एक साथ विकसित किए जाते हैं इसमें फर्म को अपनी ब्रांड का नाम तथा उत्सुकता खोने का भी डर रहता है।

(iii) विभाजित पारिवारिक ब्रांड नाम: कुछ कंपनियां अपने अलग-अलग सामानों के लिए अलग-अलग ब्रांड के नामों का प्रयोग करती हैं। अर्थात् उत्पाद को अलग-अलग परिवारों के बीच दिया जाता है तथा प्रत्येक परिवार को अलग ब्रांड नाम दिया जाता है।

(iv) एक नाम से मिला हुआ कंपनी का नाम: बजाज इसी नीति पर चलती है। वह स्कूटर तथा मोटर साइकिलों को आगे बढ़ाती है; जैसे— बजाज चेतक, बजाज सनी, बजाज स्ट्राइड, बजाज कैलिबर बजाज बाक्सर, और बजाज पल्सर। इसी तरह ब्रिटैनिया भी एक ही नाम को कंपनी के नाम जोड़ती है। इसके ब्रांड के नामों में ब्रिटैनिया गुड्डे बिस्कुट, ब्रिटेनिया क्रीम ट्रीट, ब्रिटैनिया मैरी, ब्रिटैनिया नूरी चकमस, ब्रिटैनिया टाइगर, ब्रिटैनिया चेन बिस्कुट और ब्रिटैनिया फिफ्टी-फिफ्टी- इस व्यूह रचना के अंतर्गत व्यक्तिगत कंपनी ब्रैंड की अच्छाइयों को मिलाने का प्रयास किया जाता है। इस तरह यह व्यूह-रचना संघ तथा पारिवारिक दोनों के ब्रांड के नामों को मिलाने का प्रयत्न करती है।

अच्छे ब्रांड नाम की विशेषताएं

एक बार जब विस्तृत सहमति बन जाती है तब अगला कार्य ब्रांड के नाम को चुनना होता है। ब्रांड के नाम को चुनने में निम्न बातों पर ध्यान अवश्य देना चाहिए।

(i) ब्रांड का नाम सरल तथा छोटा होना चाहिए। लंबे तथा मुश्किल शब्दों को अलग रखना चाहिए। क्योंकि वह पढ़ने तथा याद रखने में कठिनाई उत्पन्न करते हैं।

(ii) ब्रांड का नाम आसानी से बोलने योग्य हो। उपभोक्ता खरींद के समय पर उन ब्रांड के नामों को नहीं पूछते जो कि बोलने में कठिन हो।

(iii) सूचना देने वाले नाम बेहतर होते हैं क्योंकि वह वस्तु की विशेषताओं को बताते हैं। जैसे हाजमोला हाजम करने की बात दूसरे तक पहुंचाता है। उजाला उजाले की ओर संकेत करता है, गोदरेज का कलर सॉफ्ट हेयर डाई, नमी का संकेत देती है, हेयर और केयर, ख्याल रखने की बात कहता है, सनसिल्क रोशनी की ओर संकेत करता है, तथा मुलायम डेयरी दूध रोशनी दूध की अच्छाई को बताता है।

(iv) ब्रांड का नाम दूसरों से अलग होना चाहिए। अर्थात वह भीड़-भरी बाज़ार में अपनी पहचान न खोने पाए। एक ब्रांड जब दूसरों से उसी श्रेणी में अलग नजर आती है तभी वह अलग लगती है। एरियल, टाइड, सिनथाल, पार्क सभी एक दूसरे से अलग ब्रांड हैं।

(v) अंत में ब्रांड के नाम का चुनाव दूसरी भाषा तथा संस्कृति को ध्यान में रखकर ही करना चाहिए। कई शब्द एक देश या संस्कृति में उत्तम होते हैं परंतु कई आक्रमक, अश्लील तथा अनुपयुक्त हो जाते हैं। उदाहरण के लिए, भारत में एक "अंबेस्डर नोवा" नामक कार है परंतु नोवा शब्द का अर्थ स्पेनिश भाषा में होता है 'मत जाओ'।

व्यापार चिह्न

व्यापार चिह्न का अर्थ साधारण रूप में यह है कि व्यापार का वह चिह्न है जिसे कोई जानी-पहचानी

हस्ती व्यापार को चलाती है। यह सामान्य रूप में एक चिह्न, प्रतीक, निशान, शब्द या कई शब्द होते हैं। व्यापार चिह्न उत्पाद को उसी श्रेणी के दूसरे उत्पादों से अलग रहता है। उदाहरण के लिए, जब कभी हम तीन नुकीले तारे देखते हैं तो हम पहचान लेते हैं कि यह कार मर्सीडिज है। इसी प्रकार, फोटो संबंधी सामान जिन पर 'R' का निशान होता है हम पहचान लेते हैं कि कोडैक कंपनी का है। व्यापार चिह्न पंजीकृत तथा अपंजीकृत दोनों ही होता है।

एक व्यापार चिह्न दूसरों से अलग तथा आकर्षित करने वाला तथा लाभप्रद भी होना चाहिए। वह बोलने में बहुत आसान होना चाहिए। वह छोटा तथा साधारण होना चाहिए ताकि वह याद रखा जा सके। लेकिन एक व्यापार चिह्न पहले आसानी से पंजीकृत किसी व्यापार चिह्न से मिलता-जुलता पंजीकृत नहीं हो सकता। उसके अंदर कोई भी ऐसा शब्द या चिह्न नहीं होना चाहिए जो कि लोगों की संवेदन-शक्ति के विरुद्ध हो। कई चिह्न ऐसे हैं जो अलग-अलग उत्पादों की श्रेणी में जरूरी होते हैं जैसे– इंडियन स्टैंडर्ड मार्क का सार्वजानिक नाम आई.एस.आई है दूसरे चिह्न जैसे एफ.पी.औ. एगमार्क आदि भी है।

पैकेजिंग

हम बहुत से उत्पाद खरीदते हैं जो बंडल में या गठरी के रूप में होते हैं। उदाहरण के लिए, हम पेप्सी खरीदते हैं जो सर्वव्याप्त बोतलों में आती है। डेटॉल के पास अपनी अलग बोतलें हैं, निरमा एक प्लास्टिक के थैले में आता है, ब्रिटैनिया गुड-डे बिस्कुट मुड़ी हुई पन्नी में आता है, सुप्रसिद्ध कोलगेट दंतमंजन प्लास्टिक के टूटने वाले टयूब में आता है; जोडिएक शर्ट पेपर से बने डिब्बे में आती है, मैगी सास के बोतल में आता है। यह प्रदर्शित करता है कि उत्पादों को बंडल बनाने या पैक करने की आवश्यकता होती है ताकि वह उस जगह तक पहुंच सके जहां उन्हें इस्तेमाल होना है। बंडल बनाना विपणन का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। अंत के दो दशकों में बंडल एक ऐसा महत्त्वपूर्ण हथियार बन कर उभरी है जो विपणन का एक जरूरी महत्त्वपूर्ण कार्य बन गई है।

बंडल शुरूआती स्तरों पर एक कर्त्तव्य तथा कार्यों का समूह कही जा सकती है जिसमें उत्पाद को रखने के लिए एक उचित कंटेनर का स्वरूप और उत्पादन किया जाता है। वह डिब्बा जिसमें उत्पाद रखा जाता है उसे बंडल या कंटेनर कहा जाता है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि डिब्बे अलग-अलग प्रकार में आते हैं।

उत्पाद को बंडल बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? बंडल इस लिए महत्त्वूपर्ण है क्योंकि वह उत्पाद को खराब होने अथवा क्षति से बचाते हैं। वह रक्षक का कार्य करता है। बंडल बनाना, चिप्पी लगाने से बहुत मिलता है। डिब्बों अथवा बंडल पर लगी चिप्पी उत्पाद के विषय में जानकारी देते हैं। आजकल बंडल बनाना केवल रक्षा के कार्य के लिए ही नहीं प्रयोग होता परंतु उत्पादक इसे विपणन का साधन बनाते हैं जो कि कई कार्य पूरा कर सके; जैसे– आसानी, सस्तापन तथा प्रोत्साहन आदि।

बंडल बनाने का निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य है।

(i) बचाव या रक्षा: यह बंडल बनाने का सबसे आधारभूत कार्य है। यह उत्पाद को उन कारणों से बचाता है जो उसे हानि पहुंचा सकते हैं। जब वह बाज़ार तक जाते हैं उपयुक्त बंडल उत्पाद की सूर्य से, वर्षा से, नमी से, उठाने में टूटने से, कीड़ों आदि से बचाते हैं। उदाहरण के लिए, खाने योग्य सामान जैसे चिप्स बिस्कुट, जैम, कोला आदि को पर्यावरण से भी बचाने की आवश्यकता होती है। यह डिब्बे का जीवन बढ़ाती है तथा उत्पाद को ताजा रखती है। इसी तरह वितरक तथा उत्पादक हवा बंद डिब्बों का भी प्रयोग

इन उत्पादों के लिए करते हैं। सामान जैसे टेलीविजन और दूसरे उपकरणों का कारण इन्हें बड़े-बड़े दफ्ती के डिब्बों में रखा जाता है तथा अंदर थर्मोकोल भी लगाया जाता है।

(ii) पहचान: बंडल बनाने की सहायता से उत्पादों को आसानी से पहचाना भी जा सकता है। कोक की सबसे अलग बोतल के कारण उसे दूसरों से अलग पहचान करने में मददगार है। कोडैक के पीले तथा काले बंडल जल्दी से यह बता देते हैं कि उत्पाद क्या है? तथा इसका उत्पादक कौन है? यह केवल पहचान कार्य के कारण ही है जो फर्म ने अब अलग तरह के बंडल निकाले हैं जो कि अलग दफ्ती के डिब्बों के आकार, रंग, और Textures बुनावर के होते हैं जो कि उपभोक्ताओं को एक उत्पाद को दूसरे उत्पाद से अलग पहचानने में मदद करते हैं।

(iii) आसानी: बंडल बनाना दोनों ही उपभोक्ताओं तथा मध्यस्थों को आसानी से बढ़ाता है। दलाल चाहते है कि उत्पाद इस तरह बंडलित होना चाहिए जिससे रखने तथा ढोने में आसानी हो। उदाहरण के लिए, कोला के नई पेट बोतल, जो कि बड़ी मात्रा में कोला रखती है, वह दलालों को यात्रा के बीच की हानि तथा रखने की हानि के जोखिम से बचाता है। उपभोक्ताओं की दृष्टि से प्रयोग में आसानी ही असली सुविधादायक है। उदाहरण के लिए, पीने वाले टेट्रापैक बंडल, जैसे रियल फ्रूटी और ट्रापिकाना के दफ्ती के डिब्बे पीने में, बोतलों को रखने तथा ले जाने में भी सुविधाजनक होते हैं।

(iv) प्रोत्साहन: आज कल की स्वयं रोजगार प्रदान करने वाले छोटे धंधे तथा बड़ी ब्रांड में भी उत्पाद की बंडलिंग एक चुप तथा निःशब्द बेचने वाले का कर्त्तव्य निभा सकते हैं। बंडल बनाना लोगों का ध्यान खींच सकता है उत्पाद की खुशियां बता सकता है तथा उपभोक्ताओं को उसे खरीदने के लिए प्रेरित भी कर सकता है।

(v) नव-निर्माण: नव-निर्मित बंडलों को बनाने से उत्पादक नए उपभोक्ताओं के समूह को खींच सकता है। उदाहरण के लिए, भारत में शैंपू बनाने वाले उत्पादक गांवों तथा कम आय वाले लोगों को आकर्षित करने में काफी सफल रहे। क्योंकि वह शैंपू की छोटी थैली बनाते हैं। आकर्षक बंडल से बिक्री को भी बढ़ाने का मौका प्रदान कर सकती है। उदाहरण के लिए, कोलगेट ने अपने पारिवारिक डिब्बे की सहायता से अधिक दंतमंजन बेचे थे।

बंडल बनाने को अगर ठीक से कार्यरत किया जाए तो वह बहुत ज्यादा सहायक हथियार साबित हो सकता है। वह उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों को बहुत से फायदे देता है। इसी कारणवश बंडल बनाने का निर्णय बहुत ही सोच समझकर तथा समझदारी से लेना चाहिए। यह बहुत ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है अगर निम्न प्रश्न पूछे जाए तथा उपयुक्त ढंग से उत्तर दिया जाए। हमें बंडल बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ती है? इससे किस कार्य को पूरा करने की आशा की जाती है? क्या यह दलालों तथा उपभोक्ताओं की आसानी को बढ़ाती हैं? किस तरह की बंडल एक भीड़-भाड़ वाले बाज़ार में अलग खड़ी होगी? किस तरह की धातु बंडल का कार्य तथा कर्त्तव्य के लिए उपयुक्त है?

लेबलिंग

आप कोई भी ऐसा उत्पाद उठाइए जो घर पर प्रयोग होता है तथा उसका बंडल को ध्यानपूर्वक देखिए। उसका बंडल कुछ बहुत ही स्वाभाविक जानकारी रखता है जैसे उत्पाद का नाम, उत्पादक का नाम तथा पता, उसमें मिश्रित अंश, रेखाचित्रित, प्रयोग का तरीका, बेचने का अत्यधिक मूल्य आदि। यह सभी जानकारी उत्पाद के लेबल पर दिखती है। लेबल उत्पाद के बंडल पर लगी होती है जो कि पहचान तथा जानकारी में सहायक सिद्ध होती है।

उत्पाद के लेबल बहुत ही सरल रूप में भी आती है जैसे कि स्थानीय छोटे वितरकों द्वारा बनाएं गए उत्पाद जैसे दाल, चावल या नमकीन। कभी-कभी उत्पाद पर बहुत ही विस्तृत जानकारी वाली लेबल होती है जो कि ज्यादा जानकारी देती है। इस तरह की लेबल उन उत्पादों पर पाई जाती है जो कि संगठित बाज़ार की बड़ी कंपनियों द्वारा बनाए जाते हैं। क्या वितरक कोई भी लेबल तथा उससे दी गई बातों को खुलकर पसंद कर सकता है? वितरक कुछ पसंदों तथा उसकी बातों को पसंद करने में आनंद उठा सकता है। लेकिन कई बार धरती का कानून बताते हैं कि लेबल पर किस प्रकार की जानकारी होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, क्रमबद्ध खाने की वस्तुएं, औषधियां, कुछ सौंदर्य-प्रसाधन के सामान आदि जरूरी है कि वह उत्पादक के बारे में जानकारी अंदर की वस्तुएं, उससे मिश्रित अंश तथा उपयुक्त प्राधिकार से मंजूरी, चेतावनी अगर कोई है तथा प्रयोग के तरीकों के बारे में बताएं। उदाहरण के लिए, सिगरेट तथा पान-मसाले की पन्नियों पर कानूनी चेतावनी होना आवश्यक है। संकटमय अथवा जहरीले उत्पादों पर परिपूर्ण बचाव की चेतावनी दिखाना आवश्यक है।

लेबल कई **कार्य** पूरा करती है। इन्हीं कार्यों के कारण लेबल बहुत ही सोच-समझ कर करनी चाहिए। एक सतर्क उत्पादी लेबलिंग विपणन की मदद कर सकती है तथा उसी समय वह कानून की भी जरूरतों को पूरा कर सकती है। सबसे पहले लेबल उत्पादक अथवा ब्रांड की पहचान कराती है। उदाहरण के लिए, स्नान के साबुन में से लक्स लिखा हुआ साबुन हमें यह जानने में मदद करता है कि उन कई साबुनों में से लक्स कौन-सा है? लेबलिंग की सहायता से उत्पादक भी अपने उत्पादों को अलग-अलग श्रेणी में विभाजित कर पाता है। यहां तक की लेबल का रंग भी उसको अलग श्रेणी की जानकारी दे सकता है। उदाहरण के लिए, हिंदुस्तान लीवर लिमिटेड पीली लाल तथा हरी लेबल की अलग-अलग श्रेणियों की चाय बेचता है।

जैसा कि पहले बताया गया है कई लेबल सबसे निचले स्तर पर जानकारी देती है जो कि उपभोक्ताओं को दी जाती है। इसलिए लेबल उत्पाद के बारे में, उत्पादक के बारे में, उत्पादन की तारीख के बारे में, उत्पादन के समय के बारे में तथा उसमें मिश्रित अंशों के बारे में बताती है। बाद में विक्रेताओं ने लेबल को एक वितरण का हथियार बना लिया है। वे लगातार उत्पाद को प्रभावी बनाने में सहायक हो रहे हैं। लेबल आजकल न केवल जानकारी देने के लिए बनाई जाती है जो कि कानून द्वारा निर्धारित की गई है बल्कि उन्हें इसलिए भी बनाया जा रहा है कि वह उस समय मददगार सिद्ध हो सके। जब लेबल तथा उत्पाद के भविष्य का दृष्टिकोण विक्रय के समय पर आमने-सामने आ जाए। ऐसे समय में सतर्कतापूर्वक बनाई गई लेबल ध्यान आकर्षित कर सकती है। उत्पाद के बारे में बता सकती है और खरीदने के कारणों को भी बता सकती हैं। उत्पाद के बारे में जानकारी उस समय और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण होती है जब उत्पादों की श्रेणी में फर्क बहुत ही कम होता है। लेबल वास्तव में क्रेता को उत्साहित कर सकती है और उसे उत्पाद को खरीदने के लिए झुका सकती है। तेज चलने वाले उपभोग की वस्तुएं जैसे नमक दंतमंजन बिस्कुट केचप, साबुन आदि में लेबल विपणन में मुख्य भूमिका निभाती है।

दाम (मूल्य)

विपणन के अदल-बदल में दाम वह मूल्य है जो क्रेता से विक्रेता तक एक वस्तु अथवा सेवा के बदले जाता है यह विपणन का एक अंग है जिसे विक्रेता दूसरे अंशों से मिलाता है ताकि वह क्रेता से इच्छानुसार

लेन-देन कर सके। दाम या मूल्य वह मुख्य वजह है जो यह तय करता है कि क्रेता तथा विक्रेता के बीच लेन-देन वास्तविक हो जाएगा या नहीं। जब कभी मूल्य क्रेता की समझ तथा सोच से ज्यादा होता है, लेन देन बड़ी मुश्किल से हो पाता है। इसी तरह जब प्रस्ताव का दाम मूल्य के अनुसार कम होता है तब विक्रेता से ज्यादा क्रेता लेन-देन के लिए उत्साहित होता है। इसी कारणवश यह जरूरी है कि दाम का मूल्यांकन बहुत ही सावधानी तथा समझदारी से करना चाहिए। दाम फर्म की आय के उस स्रोत पर असर करती है जो कि वह बाज़ार से कमाने की कोशिश करती है।

मूल्य प्रायः मौद्रिक रूप में व्यक्त किए जाते हैं। यह एक उत्पाद या सेवा की मौद्रिक रूप में कीमत होती है। यह एक मुद्रा का बलिदान है जो एक ग्राहक किसी वस्तु को क्रय करता है। मूल्य को बहुत से नामों द्वारा जाना जा सकता है उदाहरण के लिए, शिक्षा के लिए शैक्षणिक फीस, यातायात के लिए किराया, एक सड़क अथवा पुल को प्रयोग करने के लिए टोल टैक्स, कार्यालय नौकरी के लिए वेतन, मजदूरों को देने के लिए मजदूरी, प्रवक्ता के लिए पारिश्रमिक, एक मकान के लिए किराया आदि। इस प्रकार मूल्य को व्यापार और रीति के अनुसार विभिन्न प्रकार से जाना जा सकता है। चाहे इसको किसी भी नाम से पुकारा जाए। यह विपणन का एक महत्त्वपूर्ण यंत्र है और बाकी जितने यंत्र हैं वे लागत कहलाते हैं। किसी उत्पाद अथवा सेवा के लिए मौद्रिक मूल्य तय करना आसान कार्य नहीं है। प्रबंधक मूल्य संबंधी निर्णयों तक अवास्तविक तरीके से नहीं पहुंच सकते। जब मूल्यों का निर्धारण सरल तरीके से किया जाता है। फर्म लाइन से अलग होने के जोखिम का बाहरी और आंतरिक वातावरण का सामना करती है। तब बाज़ार और व्यापारियों की तुलना लाइन से अलग हो जाती है जिसके फलस्वरूप प्रतिस्पर्धा बढ़ जाती है। अथवा मूल्य इतना कम हो जाता है कि लागत की वसूली भी नहीं हो पाती। इसलिए यह आवश्यक है कि मूल्यों का निर्धारण करते समय सभी महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को ध्यान में रखना चाहिए जो मूल्य से संबंध रखते हैं (वे तत्त्व जिनको ध्यान में रखना चाहिए क्रमशः कंपनी के उद्देश्य, लागत प्रतिस्पर्धा ग्राहकों की मांग से संबंध रखते हैं)।

उद्देश्य

एक उत्पाद का क्या मूल्य होना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि फर्म अपनी विपणन क्रियाओं द्वारा उद्देश्य की प्राप्ति कैसे करती है। मूल्यों का उद्देश्य कंपनी के उद्देश्यों से मिलना चाहिए। स्पष्टता के अभाव में मूल्यों में समानता न होने का डर होता है। उदाहरण के लिए, कंपनियां जैसे रोलस रोयस मर्सीडिज बेंज एक दूसरे से सुपर प्रीमियम कार बाजार में मुकाबला करती है। वह कम दाम निर्धारण करने की स्थिति में नहीं रहते तथा फर्म खर्च करने वाले विभाग में नहीं जा सकती। यह कंपनी के रुतवे के लिए हानिकारक है। इसलिए यह आवश्यक है कि एक उचित समझ मूल्य उद्देश्य के प्रति रखा जा सकें।

एक फर्म अपने मूल्य नीति का निर्धारण अधिक लाभ कमाने के उद्देश्य से कर सकती है। यह मूल्य ही है जिससे अधिक से अधिक लाभ का सृजन हो सकता है। कभी-कभी ऐसा भी उद्देश्य होता है। कि एक विशिष्ट लाभ को प्राप्त किया जाए। कुछ फर्म विक्रय से संबंधित उद्देश्य बनाती है जैसे लक्ष्य की प्राप्ति प्रति इकाई अथवा रुपयों में अथवा बाज़ार का एक विशेष स्तर का हिस्सा। फर्म कई बार मूल्यों के संबंध में निर्णय इस प्रकार लेती है ताकि वह बाज़ार में औरों की तुलना में ठीक रहे। अर्थात वह मूल्यों की

नाव को नहीं हिलाना चाहते। इन परिस्थितियों का उद्देश्य यह नहीं है कि बाज़ार में मूल्य संतुलन को बिगाड़ा जाए जिससे कई बार मूल्य की लड़ाई उत्पन्न हो जाती है।

लागत

दूसरा मुख्य उद्देश्य जिसे ध्यान में रखना चाहिए वह है लागत। लागत मूल्य के फैसलों को तय करती है। यह आवश्यक है कि मूल्य थल लागत को निकाल ले जिसमें विपणन कार्य तथा जोखिम का ठीक फल भी हो। दो महत्त्वपूर्ण तरह की लागत को अलग करने की आवश्यकता होती है। यह है स्थिर लागत तथा अस्थिर लागत। स्थिर लागत को ओवर हेड भी कहते हैं। यह उत्पाद स्तर के भिन्न होने के बाद भी एक समान होती है। उदाहरण के लिए, मकान का किराया, स्थायी कर्मचारियों का वेतन आदि। अस्थिर लागत उत्पाद स्तर के हिसाब से बदलती है। यह लागत इन वस्तुओं से जुड़ी होती है जो एक उत्पाद को बनाने में मदद करते है। प्रबंधक को बीते हुए समय में मूल्य के व्यवहार का विश्लेषण करना चाहिए कि वह अल्पकाल और दीर्घ काल में कैसा बर्ताव करते हैं। मूल्य ऐसा हो जिससे संपूर्ण लागत वसूल हो सके। लेकिन कई बार उत्पादों का मूल्यांकन लागत से कम किया जाता है जिसका उद्देश्य विशिष्ट बाज़ार की आवश्यकता को पूरा करना अथवा प्रतिस्पर्धा की चुनौतियों का सामना करना होता है जैसे प्रतिद्वंदी का बाज़ार में प्रवेश मुश्किल करना अथवा प्रतिद्वंदी को समाप्त करना। एक उत्पाद की कीमत किस स्तर तक लागत मूल्य में कम की जा सकती है? प्रायः मूल्य ऐसा हो जिससे कम से कम अस्थिर लागत की वसूली हो सके, क्योंकि स्थिर लागत के अंतर्गत डूबने की प्रवृत्ति होती है। वे खर्च होते ही हैं चाहे उत्पादन हो अथवा न हो इसलिए वे आवश्यकता के समय मूल्य निर्धारण के लिए ध्यान में नहीं रखे जाते।

प्रतिस्पर्धा

मूल्य निर्धारण में प्रतिस्पर्धा का ध्यान रखना भी आवश्यक है। जब फर्म को किसी प्रकार की स्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ता। वह मूल्य निर्धारण के लिए पूर्ण रूप से स्वतंत्र होती है। अर्थात् यह ऐसी दशा में 'मूल्य बनाने' वाली ही होती है। लेकिन जब प्रतिद्वंदी उसी तरह का माल बेचते हैं तो फर्म के मूल्य निर्धारण की स्ततंत्रता बहुत ही कम हो जाती है। उसका मूल्य प्रतिस्पर्धा के मूल्य के अनुरूप ही होना चाहिए। इस प्रकार प्रतिद्वंदी में जितना ज्यादा उत्पाद में समानता होती है मूल्य निर्धारण की स्ततंत्रता उतनी ही कम हो जाती है। उदाहरण के लिए, मारुति जेन अब बहुत ही प्रतिस्पर्धा का सामना सैंट्रो, इंडिका का तथा पैलियो जैसी ब्रांडों से कर रही है। इसलिए इसके मूल्य निर्धारण को दूसरे उत्पादों के मूल्य से अलग नहीं रखा जा सकता।

ग्राहकों की मांग

अंत में ग्राहकों की मांग को भी ध्यान में रखना चाहिए। मूल्य का लचीलापन इस संबंध में बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। यह उत्पाद के मूल्य परिवर्तन के आधार पर मांग का प्रतिवेदन है। जब कभी एक उत्पाद की मांग में लचीलापन नहीं है तो विक्रेता अधिक मूल्य बिना किसी बाज़ार अथवा मांग के ले सकता है। अगर जब मांग में लचीलापन होता है तो मूल्य में थोड़ा परिवर्तन मांग को बहुत प्रभावित करता है। लचीले मांग की स्थिति में बेचने वाला मूल्यों में कमी करके अधिक आय प्राप्त कर सकता है। लेकिन मूल्यों का बढ़ाना वांछित नहीं होता है। क्योंकि मूल्यों में मामूली बढ़त करना मांग को बुरी तरह से कम कर सकता है जो कि आगे लाभ को भी कम कर सकता है। जब उत्पाद लाभ के कई प्रतिस्थापी होते हैं तब

मांग में लचीलापन अधिक होता है ग्राहक दाम के प्रति सचेत रहते हैं तथा खरीदने वाले जल्दी अपनी खरीदने की आदत बदल देते हैं।

मूल्य निर्धारण की व्यूह रचना

विस्तृत रूप से इसका दो रूपों में अध्ययन किया जा सकता है: **मूल्यों को निचोड़ना** और मूल्यों के तह तक जाना। **मूल्यों के निचोड़ने** से तात्पर्य है प्रारंभ में ऐसी ऊंची मूल्य को प्रयोग में लाना ताकि मांग की फीस को निचोड़ा जा सके। सामान्यत: जब एक विपणक एक नया उत्पाद बाज़ार में लाता है तो वह इसका मूल्य थोड़ा अधिक रखता है ताकि उच्चस्तर के सीमित उपभोक्ता समूह इसका उपयोग कर सके। नए सामान बनाने वाले सोनी तथा फिलिप्स जैसी कंपनियां इस तरीके को अपनी उच्च स्तरीय गुणों वाले उत्पाद को बेचने में प्रयोग करते हैं। घड़ियों के बाज़ार में स्विटजरलैंड में बनने वाले घड़ी जैसे ओमेगा, पटेक, वौम तथा मसिपर तथा रोलैक्स आदि इस विधि का प्रयोग उपभोक्ताओं के उच्च स्तरीय समूह में बेचने के लिए प्रयोग करते हैं। जर्मनी के कार बनाने वाले जैसे मर्सिडीज तथा बी एम डब्ल्यू जैसी कारों को बेचने के लिए इस विधि का प्रयोग करते हैं। इनके कारों के बेचने का बाज़ार निम्नस्तर के लोगों के लिए नहीं किया जाता है इसमें ग्राहकों के उच्चस्तरीय वर्ग को केंद्रित किया जाता है और विपणन के प्रयासों को इसी वर्ग पर सीमित रखा जाता है। नई-नई वस्तुएं बनाने वाले इस गति को इस कारण प्रयोग में लाते हैं ताकि एक अल्प अवधि में वे अपने शोध एवं विकास में किए गए खर्चो को पूरा कर सके। बाज़ार में मूल्य निचोड़ने की क्रिया ऐसी नहीं है कि इसका प्रयोग कोई भी विचारक कभी भी कर सकता है इसके लिए कुछ सहायक शर्तें भी हैं। जिसे इस विधि का प्रयोग करने के पहले पूरा करना

कोक बनाम पेप्सी

गुड़गांव में डी. एल. एफ. कारपोरेट, क्लब जहां पेप्सी का प्रधान कार्यालय है वहां काफी उत्तेजना दिख रही है। इसके विपरीत कोक के प्रधान कार्यालय इनकाव में उत्तेजना कम है यदि आप उनके अधिकारियों से बात करें विश्लेषक का ऐसा विश्वास है कि यह साल अलग होगा। कुछ भी हो साफ्ट ड्रिंक के मूल्यों में बहुत ही परिवर्तन हुआ है तथा यह परिवर्तन पांच रुपए तक आ गया है।

दोनों पेय जलों के दिगज्जों के सामने बाज़ार की बढ़ोत्तरी का मुख्य लक्ष्य है न कि एक-दूसरे से बिना कारण के लड़ाई करना।

परंतु कुछ चीजों में कुछ महीने पहले परिवर्तन हुआ। पिछले वर्ष अक्तूबर में कोका-कोला कंपनी में आक्रामक तरीके से मूल्यों में 15-25 प्रतिशत की कमी की जिसका परिणाम यह हुआ कि पेप्सी को भी यही कार्य करना पड़ा। यह एक मूल्य की लड़ाई थी जिसने उपभोक्ताओं को मुस्कराने का कारण दिया। यह दोनों के लिए आसान नहीं था। वह अपनी क्रियाओं में केवल पैकिंग क्षमताओं में ही परिवर्तन ला सके और अपनी क्रियाओं को इस प्रकार फिर से बनाया ताकि मूल्य कटौती का सामना आसानी से किया जा सके। अब नए ग्राहकों के प्रति उनका ध्यान जाएगा जो बाज़ार में उपलब्ध हो रहे हैं। कोक और पेप्सी दोनों अपनी नई मूल्य नीति के तहत ग्राहकों की बढ़ोत्तरी पर ध्यान दे रहे हैं तथा वर्तमान बाज़ार में अंदर तक पहुंच की कोशिश कर रहे हैं। दोनों में वही जीतेगा जिनको इस प्रतिस्पर्धा में आरंभिक लाभ प्राप्त होगा। इस बात पर ध्यान दिया जाएगा कि अपने प्रतिद्वंदियों का हिस्सा न छीने बल्कि एक लंबे विकास की ओर बढ़े जिससे मूल्यों में कमी आए। घाटे वाली इकाइयों के बीच एक कड़ी एवं माध्यम का काम करते हैं इस प्रकार से वित्त बाज़ार ऋण लेने वालों एवं ऋण देने वालों को मिलवाता है तथा उन लोगों को धन उपलब्ध कराता है जो उसका उपयोग करने के बदले प्रतिफल देने को तैयार हैं।

आवश्यक होता है। इस संबंध में पहली शर्त है मांग के मूल्यों में लचीलापन हो। अगर उत्पाद बहुत ही विशिष्ट है तो इसकी मांग में लचीलापन नहीं होगा ऐसी परिस्थितियों में निचोड़ने की क्रिया का प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि विक्रेता वस्तुओं के नएपन तथा विशिष्टता को देखते हुए ऊंची कीमत पर उन्हें खरीदने को तैयार हो जाएंगे। दूसरी शर्त यह है कि वितरक को वस्तु की विशिष्टता को कुछ समय के लिए ठीक रखनी पड़ती है। अगर उत्पाद की नकल आसानी से ली जा सकती है तो निचोड़ना अच्छी विधि नहीं होगी अंतिम शर्त यह है कि बाज़ार का एक भाग ऐसा हो कि जो उच्च मूल्यों को महत्त्व दें। मूल्यों की संवेदनशीलता के आधार पर अगर बाज़ार को विभाजित नहीं किया जा सकता तो निचोड़ने की विधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

दूसरी तरफ मूल्यों के तह तक जाने की विधि का तात्पर्य यह है कि इसके अंतर्गत प्रारंभ में कम मूल्य रखा जाता है ताकि बाज़ार का अधिक से अधिक भाग विक्रेता की पकड़ में रहे। बाज़ार में प्रवेश करने वाला उत्पादक को कम दाम में अक्रामक रूप से पेश करता है और बाज़ार का एक बड़ा भाग अपने कब्जे में कर लेता है ताकि बाज़ार का थोड़ा-सा ही भाग दूसरों के लिए बचा रहे। इसका प्रभाव यह होता है कि प्रतिद्वंदियों को एक छोटे से बाज़ार में ही कंपनी क्रियाओं को करना होता है। और इस प्रकार वे मूल्य वेधक विक्रेताओं की तुलना में कम रहती है छोटे से उपलब्ध बाज़ार में विक्रेता आने में इच्छुक नहीं रहता है और अपने को अलग रखता है।

मूल्य वेधक प्रणाली निम्न दशाओं में आकर्षित होती है। प्रथम मांग के मूल्य में लचीलापन अधिक होना चाहिए अर्थात् क्रेता मूल्यों के प्रति संवेदनशील होता है। दूसरी शर्त यह है कि फर्म के पास उत्पादन की अच्छी क्षमता होनी चाहिए अर्थात् मांग बढ़ने पर उत्पादन बढ़ाने की क्षमता उसमें होनी चाहिए। तीसरी शर्त यह है कि जब कोई भी ग्राहक न हो अथवा थोड़ी मात्रा में ही ग्राहक हों जो मूल्य की परवाह किए बिना ही क्रय करें और बाज़ार में कोई विशिष्ट ग्राहक भाग न हो। अंतिम यह है कि मूल्य भेदक मूल्य निर्धारित तभी उत्तम है जब विक्रेता उत्पाद के प्रारंभ करने के तुरंत बाद ही मजबूत प्रतिस्पर्धा की कामना करता है।

स्थान

विपणन मिश्रण के अंतर्गत स्थान का तात्पर्य ऐसे नीतियों की सूची से है जिसे इसलिए लेना आवश्यक है कि उत्पाद को ग्राहकों के क्रम और उपभोग के लिए उपलब्ध कराया जा सके। अगर उत्पाद को ग्राहकों के पास उचित समय, मूल्य स्थान और मात्रा में उपलब्ध नहीं कराया गया तो वे उसे खरीदने में समर्थ नहीं हो सकेंगे और जब उत्पाद को खरीदा नहीं जाएगा तो विपणन विनिमय का यथार्थीकरण नहीं हो पाएगा। ग्राहकों को उत्पाद उपलब्ध कराने के लिए वितरण प्रणाली और उत्पादों का भौतिक रूप से वितरण करने की क्रिया का विकास करना पड़ता है यह एक ऐसा तरीका है जिससे उत्पादों का हस्तांतरण उत्पादन के स्थान से उपभोग के स्थान पर किया जाता है।

वितरण प्रणाली

अपने नजदीक के मिठाई की दुकान के बारे में सोचिए। जब आप इस दुकान पर जाकर मिठाई खरीदते हैं तो यह सोचिए कि उत्पाद आपके पास कैसे आता है? यहां विक्रेता ही उत्पाद का बनाने वाला है वह उत्पाद को बनाता है और सीधे आप को बेचता है। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच किसी भी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन कभी-कभी जिस उत्पाद को खरीदा जाता है उसे बहुत ही लंबा रास्ता मध्यस्थों जैसे थोक एवं फुटकर व्यापारियों के बीच से होकर आना

पड़ता है। ऐसी स्थिति में वितरण व्यवस्था अप्रत्यक्ष हो जाती है। उदाहरण के लिए, दांत का मंजन जो प्रयोग किया जाता है वह एक फैक्ट्री जैसे हिंदुस्तान लीवर लि. में किया जाता है परंतु जब यह हमारे पास आता है यह बहुत से मध्यस्थों के बीच से गुजरता है जो इसे हमारे पास सही समय, मूल्य और मात्रा में उपलब्ध कराते हैं।

इस प्रक्रिया में कुछ प्रश्न उत्पन्न होते हैं- विपणक द्वारा कोई उत्पाद क्यों प्रत्यक्ष रूप से बिना किसी मध्यस्थ की सहायता से बेचा जाता है और दूसरे तरीकों में मध्यस्थों का प्रयोग क्यों किया जाता है- और कुछ उत्पाद सभी फुटकर दुकानों पर क्यों उपलब्ध होते हैं और कुछ की उपलब्धता सीमित क्यों होती है?

विपणन विनिमय में स्थान के महत्त्व को देखते हुए, फर्म को इस संबंध में निर्णय लेने की आवश्यकता होती है कि उत्पाद को कैसे उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराए। वितरण प्रणाली एक ऐसा रास्ता है जिससे उत्पाद ग्राहकों तक पहुंचता है अर्थात बहुत सी फर्म अथवा व्यक्ति उत्पादों को उत्पादकों के पास से ग्राहकों तक पहुंचाने में लगे रहते हैं। कभी-कभी उत्पाद को उपलब्ध कराने में आपस की बहुत सी संस्थाएं प्रयोग में आती हैं। अथवा लोगों को इस काम के लिए रखा जाता है (जैसे कंपनी एजेंट, डीलर, थोक एवं फुटकर व्यापारी) जो उत्पाद के अधिकार के हस्तांतरण में सहायक होते हैं क्योंकि ये उत्पाद उत्पादकों के पास से उपभोक्ताओं के पास पहुंचते हैं प्रणाली उत्पादों को उत्पादन के स्थान से उपभोक्ताओं के पास पहुंचाने का कार्य करती हैं। ऐसा करने से समय, स्थान तथा अधिकार में जो अंतर होता है उसे समाप्त किया जा सकता है तथा ऐसा करने से वस्तुएं अथवा सेवाएं उन लोगों के पास पहुंच जाती हैं जो उन्हें चाहते हैं और जिनके पास वस्तुएं अथवा सेवाएं होती हैं।

फर्म उत्पाद के वितरण में मध्यस्थों का प्रयोग क्यों करती हैं? कभी कभी विभिन्न कारणों की वजह से मध्यस्थों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है- प्रथम वितरण एक खर्चीला कार्य है। कुछ फर्म वितरण का कार्य स्वयं नहीं कर सकतीं क्योंकि उनके पास वित्तीय साधन पर्याप्त नहीं होते इसलिए मध्यस्थों की सेवाएं ली जाती हैं। उदाहरण के लिए, मारुति विभिन्न डीलर्स को कार बेचने एवं उसके रख-रखाव के लिए प्रयोग में लाती है। अगर कंपनी इस कार्य को करना चाहती है जिसे मध्यस्थ करते हैं, तो ऐसा करने के लिए कं. को उसी तरह का जाल बनाना होगा अथवा वर्तमान जाल को खरीदना होगा। इस कार्य को करने में करोड़ों रुपए का विनियोग करना पड़ सकता है। प्रश्न यह है कि क्या ऐसा हो सकता है? प्रत्यक्ष विक्रय विक्रेता को निश्चय रूप से अच्छा नियंत्रण देता है परंतु ऐसा करना खर्चीला भी होता है। वित्तीय बाधाएं कभी-कभी मध्यस्थों के प्रयोग के लिए आवश्यक हो जाती हैं दूसरे यह कि- कभी-कभी प्रत्यक्ष विक्रय बिना मध्यस्थों की सहायता के लिए ही नहीं जा सकता। यह सोचने योग्य बात है कि आई. टी. सी. जैसी एक कंपनी जो सिगरेट के विपणन में अच्छा स्थान रखती है उसके लिए यह कितना कठिन काम होगा कि पूरे देश में वह सिगरेट की उपलब्धता की व्यवस्था करे। मध्यस्थ उत्पाद ग्राहकों को वस्तुओं अथवा उत्पादों की उपलब्धता कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। वे ऐसा करने में सक्षम अपने संबंधों, विभिन्नताओं और क्रियाओं के फैलाव के कारण होते हैं।

प्रणाली बहुत से कार्यों को संपादित करती है। प्रथम, वे विपणन सूचना के स्रोत होते हैं। वे ग्राहकों और प्रतिदवंद्दियों के संबंध में सूचनाएं इकट्ठा करते हैं तथा साथ ही विपणन वातावरण का भी संकलन करते हैं। दूसरे, प्रणाली के सदस्य प्रेरक का कार्य करते हैं वे ग्राहकों को प्रेरित करके उत्पादों

इंटरनेट एक नया विक्रय का तरीका

सुंदरम केमिकल्स की दशा में यह ज्ञात हुआ कि कंपनी एक ऐसे बाज़ार में काम कर रही थी जहां वातावरण काफी महत्त्वपूर्ण था और इसकी **प्रतियोगात्मक धार आर्डरों** के क्रियान्वयन तथा साइकिल की सुपुर्दगी में तेज़ी से काम कर रही थी तथा उसके रंगों में भी यह अनुभव किया गया कि ग्राहकों को प्राप्त करने के अतिरिक्त इसे पुराने ग्राहकों को अधिकार में रखने तथा उनसे अधिकतम आय प्राप्त करने के लिए उसे बहुत ही आक्रामक तरीकों का प्रयोग करने की आवश्यकता थी।

कंपनी ने ग्राहकों की दो भिन्न-भिन्न मांगों को पहचाना- प्रत्येक तथा प्रत्यक्ष ग्राहक, प्रत्येक भाग के ग्राहकों से अलग-अलग तरीकों से व्यवहार किया गया। प्रत्यक्ष ग्राहकों जैसे– एशियन पेंट में यह प्रयास किया गया कि प्रौद्योगिकी समता की प्राप्ति की जाए ताकि सुदर्शन के निकल जाने के अंदर पूर्णता प्राप्त कर सकें। और एजेंट के लिए इंटरनेट की शुरुआत एक नए माध्यम के रूप में की गई। तीन माह के अंदर कंपनी ने एजेंटों को प्रशिक्षित किया और इस बात पर जोर दिया कि वे आर्डर केवल इंटरनेट पर ही लें। इस काम को करने में जब कभी भी कोई समस्या एजेंटों के सामने आई तो कंपनी ने एजेंटों द्वारा सुझाए गए उपायों को प्रयोग में लिया। परिणाम यह हुआ कि इंटरनेट द्वारा लिए गए आर्डरों में दुगुने की वृद्धि हुई और लेन-देन से संबंधित प्रश्नों के समाधन करने में लगभग आधे से अधिक समय की बचत हुई। आर्डर को क्रियान्वित करने के समय में भी कमी आई और विक्रय अधिकारी लगभग दो घंटे प्रतिदिन समय बचाकर मुख्य कार्यालय पर काम कर सकने और प्रतिदिन एक घंटे प्रत्येक रिपोर्ट पर काम कर सके। एजेंट रात-दिन कभी भी आर्डर भेज सकते हैं और इस परिवर्तन के फलस्वरूप सप्ताह में किसी भी दिन वे आर्डर भेज सकते हैं।

स्रोत: इंडियन मैनेजमेंट

के विक्रय को प्रोत्साहित कर सकते हैं। तीसरे, मांग के समय वे उत्पादों की पूर्ति के लिए उत्पादों को सूचित करते हैं। चौथे, वे वितरण प्रणाली में होने वाले जोखिम को उठाते हैं। पांचवा, वे वस्तुओं के संग्रहण एवं उन्हें ग्राहकों तक पहुंचाने में सहायता करते हैं। छठा, वे वस्तुओं के स्वामित्व के हस्तांतरण तथा समझौता आदि के निष्पादन में भी सहायक होते हैं।

माध्यम स्तर

उत्पादक तथा अंतिम उपभोक्ता विपणन शृंखला के दो स्रोत हैं दोनों के बीच मध्यस्थों के कार्य की व्यवस्था संभावित नहीं है। कितने मध्यस्थ इन दोनों स्रोतों के बीच कार्य करते हैं, के द्वारा माध्यम की लंबाई अथवा स्तर की विचारधारा उत्पन्न होती है।

(i) शून्य स्तर का माध्यम: यह एक ऐसी दशा है कि इसके अंतर्गत उत्पादक और ग्राहक के बीच किसी भी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती है उत्पादक प्रत्यक्ष रूप से ग्राहकों को सामान बेचता है। पोस्ट आफिस द्वारा विक्रय इंटरनेट, द्वारा विक्रय अथवा घर-घर जाकर माल बेचना प्रत्यक्ष विक्रय के उदाहरण हैं। बाटा अपने स्टोर्स द्वारा स्वयं ग्राहकों को जूते बेचती है, यूरेका फोर्बस अपने विक्रय शक्तियों द्वारा पानी को सुरक्षित करने के यंत्र को स्वयं बेचते हैं, एशियन स्काई शॉप अपने उत्पादों को टेलीविजन की मदद से बेचते हैं जिसमें किसी प्रकार के मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं होती है।

(ii) एक स्तरीय माध्यम: इसके अंतर्गत एक मध्यस्थ को उत्पादक एवं ग्राहक के बीच प्रयोग किया जाता है इस कार्य के लिए प्राय: फुटकर व्यापारियों का ही प्रयोग होता है। यह तरीका विशिष्ट उत्पादों के लिए प्रयोग किया जाता है; जैसे– महंगी घड़ियां या यंत्र जहां उत्पादक अपने उत्पादों को फुटकर व्यापारियों द्वारा बेचते हैं।

(iii) द्विस्तरीय माध्यम: यह तरीका अधिकतर प्रयोग किया जाता है। इसके अंतर्गत फुटकर व्यापारियों के साथ थोक व्यापारियों की भी सेवाएं ली जाती हैं। उत्पादक स्वयं थोक व्यापारियों से संपर्क करते हैं और उन्हें थोक में माल बेचते हैं जो उस सामान को बहुत से फुटकर व्यापारियों को कम मात्रा में बेचते हैं। यह तरीका विस्तृत रूप से सुविधाजनक वस्तुओं; जैसे– साबुन, चाय, सिगरेट आदि में प्रयोग किया जाता है।

(iv) तीन स्तरीय माध्यम: इस तरीके में एक सीढ़ी द्विस्तरीय माध्यम में और जोड़ दी जाती है जिसे एजेंट कहते हैं। इस तरीके का प्रयोग तब किया जाता है जब उत्पादक सीधे थोक व्यापारियों के पास नहीं पहुंच पाता। इस प्रकार एजेंट उत्पादक और थोक व्यापारी के बीच एक नाव का काम करता है। उदाहरण के लिए, जब एक बड़े बाज़ार में सीमित उत्पाद को पहुंचाना होता है तो प्रत्येक बड़े क्षेत्र में एक एजेंट की नियुक्ति की जाती है जो थोक व्यापारियों से संपर्क करता है।

माध्यम चुनाव के घटक

माध्यम का चुनाव विभिन्न घटकों पर निर्भर करता है। एक फर्म छोटे या बड़े आकार का चुनाव कर इसका निर्धारण, बाज़ार, उत्पाद और कंपनी से संबंधित प्रतिफल पर निर्भर करता है।

(i) बाज़ार संबंधी घटक: माध्यम का चुनाव बाज़ार के बहुत से घटकों के ऊपर निर्भर करता है प्रथम, बाज़ार का नाम अर्थात् बाज़ार उत्पाद के लिए औद्योगिक है अथवा ग्राहकों के लिए है। औद्योगिक बाज़ार में प्रत्यक्ष माध्यम को चुना जाता है जब कि ग्राहकों के बाज़ार में अप्रत्यक्ष माध्यम का चुनाव प्रायः किया जाता है। दूसरे, बाज़ार का रूप अर्थात् ग्राहकों की संख्या माध्यम को प्रभावित करती है। अधिक मात्रा में ग्राहकों के होने से अधिक माध्यम की आवश्यकता होगी जबकि बाज़ार में कम ग्राहक होने से माध्यम अथवा प्रत्यक्ष माध्यम का प्रयोग किया जाता है। तीसरे, भौगोलिक केंद्रीकरण है। जब क्रेता एक सीमित भौगोलिक क्षेत्र में रहता है जैसे औद्योगिक ग्राहक को ऐसी स्थिति में प्रत्यक्ष विक्रय किया जा सकता है अथवा फर्म इस काम को कम से कम मध्यस्थों की सहायता से कर सकती है। भौगोलिक दृष्टि से विखरे हुए ग्राहकों के लिए अधिक मध्यस्थों की जरूरत होती है। चौथे, खरीदे हुए माल की मात्रा भी माध्यम को प्रभावित करती है अगर आर्डर का आकार बड़ा है तो प्रत्यक्ष अथवा सीमित माध्यम काम को अच्छी तरह कर सकते हैं। ग्राहकों की वस्तुओं में आर्डर की मात्रा कम होती है इसलिए प्रत्यक्ष बिक्री सही विकल्प नहीं हो सकता।

(ii) उत्पाद संबंधी धारक: उत्पाद की प्रकृति एवं आकार का भी प्रभाव माध्यम के स्वरूप पर पड़ता है। सबसे पहले उत्पाद की प्रति इकाई कीमत उदाहरण के लिए, ज्वेलरी अथवा औद्योगिक यंत्रों की प्रति इकाई कीमत अधिक होती है। जब वितरण करने वाला सामान महंगा होता है तो छोटे माध्यम का प्रयोग किया जाता है जबकि कम मूल्य वाले अथवा सस्ते उत्पादों के लिए बड़े माध्यम का प्रयोग किया जाता है। दूसरे, उत्पाद की जटिलताएं भी माध्यम के चुनाव पर असर डालती हैं। परिभाषा अनुसार जटिल उत्पाद विक्रय के लिए विशिष्ट सलाह एवं परामर्श की आवश्यकता होती है इसलिए प्रत्यक्ष अथवा छोटा माध्यम अधिक उपयुक्त होता है। तीसरे, उत्पाद की प्रकृति प्रभावित है अथवा प्रचलित है। प्रचलित उत्पाद के लिए क्रेता और विक्रेता में आपस में विचार-विमर्श आवश्यक है। क्रेता और विक्रेता को मिलना आवश्यक है ताकि उत्पाद से संबंधित मापों को बना सके। ऐसी दशाओं में प्रत्यक्ष विक्रय ही अच्छा विकल्प है। जबकि प्रभावित वस्तुओं के बिना हानि के मध्यस्थों

की सहायता से बेचा जा सकता है। अंत में, अगर उत्पाद नाम होने वाला है तो छोटा माध्यम अच्छा होगा वनिस्पत माध्यम के बड़े मध्यस्थों की लंबी शृंखला मालों की सुपुर्दगी में देरी कर सकती है और ग्राहक के सेवा स्तर को भी क्षति पहुंचा सकती है।

(iii) कंपनी संबंधी घटक: कंपनी की विशेषताएं भी माध्यम के चुनाव को प्रभावित करती हैं। प्रत्येक कंपनी अपने वितरण कार्य को नियंत्रित रखना चाहती है परंतु क्या ऐसा वास्तव में हो सकता है। माध्यम के चुनाव में दो घटक प्रभाव डालते हैं। प्रथम, जो फर्म बाज़ार में अच्छी पकड़ रखते हैं और जिनकी वित्तीय स्थिति काफी अच्छी होती है वे अपने माध्यम को स्वयं बना सकते हैं। जबकि वित्तीय कमजोर फर्मों को अपनी सेवाओं के लिए बाज़ार में पाए जाने वाले मध्यस्थों का प्रयोग करना पड़ता है। दूसरे, अपने उत्पाद अथवा सेवाओं पर फर्म किस मात्रा तक नियंत्रण चाहती है? ऐसी फर्में जो नियंत्रण को मजबूत रखना चाहती हैं उन्हें अपने माध्यम को स्वयं विकसित करना होगा। इलेक्ट्रॉनिक सामानों के क्षेत्र में फर्म अपने सामानों का वितरण परंपरागत माध्यम द्वारा करना चाहती है परंतु कंपनी कुछ फर्म जो ग्राहकों को विक्रय बिंदु पर दी जाने वाली सेवाओं को नियंत्रित करना चाहती हैं वे कंपनी की तरह स्वयं के निर्गम स्थान का प्रयोग करना चाहेगी।

भौतिक वितरण

माध्यम का निर्णय एक नियोजन की तरह है जिसके अंतर्गत यह देखा जाता है कि किस प्रकार वस्तुएं ग्राहकों के पास पहुंचे अथवा वे कौन-सा रास्ता अपनाए। नियोजन के अंतर्गत यह देखा जाता है कि वस्तुएं वास्तव में आती जाती रहें तथा ग्राहकों को सही समय पर उचित मात्रा में और उचित समय पर वस्तुएं मिलती रहें। भौतिक वितरण विपणन मिश्रण के स्थान तत्त्व के संबंध में एक कठिन कार्य है विपणक को वस्तुओं के भौतिक चाल के संबंधों में निर्णय इस प्रकार लेना चाहिए कि वितरण के उद्देश्यों की प्राप्ति अच्छे तरीके से हो सके।

जब हम बाज़ार जाते हैं तो हमारा उद्देश्य क्या होता है? हम हमेशा यह चाहते हैं कि जो भी वस्तु हमें चाहिए वे सभी चीजें पर्याप्त मात्रा में एवं सरल स्थान पर प्राप्त हो सकें। पीछे क्या होता है? इससे हमें कोई मतलब नहीं होता है अगर सामान उपलब्ध नहीं होता है तो हम दूसरे प्रतियोगियों के ब्रैंड को खरीदना चाहेंगे। इच्छित सेवा स्तर प्राप्त उत्पादन करें उन्हें इकट्ठा करे और उन्हें इस प्रकार भेजे कि वे क्रेताओं के स्तर की सेवाओं को पूरा कर सके। प्राय: भौतिक वितरण ग्राहकों से छिपा रहता है जब चीजें उचित रूप से मिलती रहती हैं तो कोई भी यह नहीं सोचता है कि पीछे क्या हो रहा है। जैसे जब कोई सामान की कमी अथवा उसकी अनुपलब्धता होती है तो भौतिक वितरण की तरफ लोगों का ध्यान जाता है।

भौतिक वितरण के अंतर्गत सामानों का उत्पादन स्थान से उपभोग स्थान पर लाना सम्मिलित होता है। भौतिक वितरण के पीछे मुख्य विचार यह है कि सामानों को उचित स्थान और उचित समय पर उपलब्ध कराकर स्थान एवं समय की उपयोगिता को सृजन किया जाए। कभी-कभी भौतिक वितरण का प्रयोग तार्किक प्रबंध द्वारा भी किया जाता है। तार्किक मूल्य सैन्य विरचन से प्राप्त किया जाता है। सैनिक दृष्टि में लाजिस्टिक मैनेजमेंट का तात्पर्य ऐसे सबंध से है जिसके अंतर्गत यंत्रों तथा अन्य संसाधनों को प्राप्त करना, उनका रख-रखाव करना तथा उन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने की प्रक्रिया शामिल होती है। इसी तरह व्यापारिक क्षेत्र में लाजिस्टिक का तात्पर्य है कि उत्पादक के पास से उपभोक्ता के पास वस्तुएं एवं सेवाओं को भेजने संबंधी कार्य

प्रणाली से है। भौतिक वितरण में वस्तुओं की सूची, उनके संग्रहण, गोदाम, यातायात तथा आर्डर को क्रियान्वित करने संबंधी निर्णय लिए जाते हैं।

लाजिस्टिक में लागत एवं सेवा संबंधी छूट

भौतिक वितरण संबंधी निर्णयों के पीछे जो मार्ग दर्शक सिद्धांत हैं उनके द्वारा एक निश्चित सीमा तक ग्राहक के स्तर की सेवाएं प्राप्त की जा सके। ग्राहक सेवा का तात्पर्य है समय से विश्वास योग्य वस्तुओं की उपलब्धता। बाज़ार में सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है। अगर कोई फर्म ग्राहकों को सेवा प्रदान करने में पीछे हो जाती है तो दूसरी फ़र्में आ जाती हैं और ग्राहकों को अपने कब्जे में कर लेती हैं। ग्राहकों को अच्छी सेवाएं देने के साथ विपणन के अन्य लक्ष्य जैसे विक्रय तथा बाज़ार के हिस्से को भी आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, अगर कोक उपलब्ध नहीं है तो पेप्सी अपनी उपलब्धता के कारण कोक के बाज़ार का हिस्सा ले सकती है। कभी-कभी विश्वास योग्य वस्तुओं की पूर्ति करके ग्राहकों का शीघ्र प्रत्युत्तर प्राप्त करने, आर्डर की त्रुटि रहित क्रियान्वयन एवं त्रुटि रहित सुपुर्दगी संबंधी सेवाएं देकर फर्में प्रतियोगितात्मक श्रेष्ठता को प्राप्त कर लेती हैं इसलिए कभी-कभी ऐसा सोच भौतिक वितरण निर्णयों में मार्गदर्शक का काम करती हैं।

ग्राहकों के उच्च स्तरीय सेवाओं का लक्ष्य बिना मूल्य के प्राप्त नहीं होता है। उच्च स्तरीय सेवाएं लागत बढ़ाती हैं इसका परिणाम यह होता है कि उपभोक्ताओं के लिए वस्तुएं महंगी हो जाती हैं। ऊंची लागत का खतरा यह है कि ग्राहक को जिस स्तर की सेवाएं उपलब्ध हैं उनके लिए ऊंची लागत देना नहीं चाहता। इसलिए यह आवश्यक है कि लागत तथा ग्राहकों की सुविधा के बीच छूट का उचित विश्लेषण किया जाए। कम लागत अथवा ऊंची लागत का आंख मूंद कर पालन करना अच्छा तरीका नहीं होगा। भौतिक वितरण के लिए आदर्श यह है कि कम लागत पर अधिक सेवा स्तर प्राप्त करना।

भौतिक वितरण में निर्णय

सामानों के भौतिक वितरण में चार प्रकार की मुख्य क्रियाएं सम्मिलित हैं। ये कार्य भौतिक वितरण प्रबंध के चार निर्णय संबंधी क्षेत्र हैं।

(i) यातायात: सामानों के भौतिक वितरण के लिए यह आवश्यक है कि यातायात की सुविधा हो। यातायात में सामानों के आवागमन पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। इससे वस्तुओं को गन्तव्य स्थान पर भेजकर उनके मूल्यों में वृद्धि होती है उदाहरण के लिए, सेब हिमाचल प्रदेश और कश्मीर के गांवों से शहरों में भेजे जाते हैं जहां उनके मूल्यों में इतनी वृद्धि होती है जितनी जहां वे पैदा होते हैं। यातायात में लागत होती है इसलिए यह बात निश्चित रूप से सोच लेनी चाहिए कि मूल्य वृद्धि यातायात लागत से अधिक हो।

विपणक को तरह-तरह के यातायात के साधन उपलब्ध हैं। इनके अंतर्गत रेल, जल, हवाई पाइपलाइंस तथा ट्रक आदि आते हैं। प्रत्येक यातायात के साधन के लाभ और दोष अलग-अलग हैं इसलिए यातायात के साधनों के चुनाव को निर्धारित करते समय यह देखना चाहिए कि वे साधन गति, विश्वसनीयता, योग्यता, उपलब्धता और लागत के हिसाब से ठीक हो। उदाहरण के लिए नष्ट होने वाले पदार्थों के लिए तेज चलने वाले यातायात के साधन को प्राथमिकता दी जाती है... पेट्रोल अथवा गैस जैसे उत्पादों के लिए पाइपलाइन का साधन अधिक उपयुक्त होगा। औद्योगिक यंत्रों अथवा कोयला अथवा कच्चे लोहा जैसे कच्चे मालों के लिए पानी का यातायात सुविधा जनक होता है।

(ii) संपत्तिसूची: वितरण के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए यह आवश्यक है कि स्टॉक में वस्तुओं को कितना रखा गया। इसका स्टॉक रखना इसलिए

भी आवश्यक है कि ऐसा करने से वस्तु की मांग होने पर उन्हें उपलब्ध कराया जा सकता है। इससे स्टॉक न होने की स्थिति से बचत मिल जाती है। विपणन के व्यक्ति सेल्समैन सदा इस बात की कोशिश करता है कि स्टॉक रहे ताकि ग्राहकों को मांग पर उन्हें दिया जा सके और उन्हें प्रतियोगियों की वस्तुओं के प्रयोग करने से रोका जा सके। लेकिन संपति सूची रखने में भी लागत की आवश्यकता होती है। इसके अंतर्गत स्टॉक में लगी हुई पूंजी, संप्रत्ति सूची के रख-रखाव के खर्चे जैसे गोदाम और विपरीत मूल्य के उतार-चढ़ाव से होने वाले खतरे सम्मिलित होते हैं। इसलिए ग्राहकों की सेवा इस बात पर जोर देती है संपत्ति सूची रहनी चाहिए जब कि लागत की दृष्टि से यह सूची कम से कम होनी चाहिए। इन विपरीत परिस्थितियों में संपत्ति सूची को रखने के लगन तथा उसकी लागत को ध्यान में रखकर निर्णय लेना चाहिए और तब अधिकतम स्तर का निर्धारण करना चाहिए।

(iii) गोदाम: कारखानों में उत्पादन लगातार होता रहता है और कभी-कभी जितना उत्पादन किया जाता है वह सब तुरंत बेचा नहीं जा सकता। इसलिए प्रत्येक कारखाने के लिए यह आवश्यक है कि अपने द्वारा बनाए गए मालों को इकट्ठा करके रखे जब तक कि उन्हें बेचा न जा सके। उदाहरण के लिए, ऊनी कपड़ों को बनाने वाली कंपनियों को जाड़ा आने तक अपने उत्पाद को रखना पड़ता है उसी तरह कृषि उत्पादन विक्रय के लिए एक क्रम का अनुसरण करती है। जब मांग का चक्र पूर्ति के चक्र से मेल नहीं खाता है तो गोदाम की आवश्यकता का अनुभव होता है इसलिए विपणक को गोदाम के लिए निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। क्या कंपनी को अपना खुद का गोदाम रखना चाहिए या किराए का गोदाम रखना चाहिए। गोदामों को कहां पर होना चाहिए कारखाने के पास या बाज़ार के पास। फर्म को कुछ अथवा अधिक गोदाम रखने चाहिए। कुछ गोदाम का मतलब है कम मात्रा में स्टॉक रखना और अधिक गोदाम का मतलब अधिक मात्रा को रखना। अधिक गोदाम होने से माल की सुपुर्दगी ग्राहकों तक तेजी से होती है तथा ग्राहकों की सेवा का अवसर प्राप्त होता है परंतु यह तरीका मंहगा है।

(iv) आर्डर का क्रियान्वयन: ग्राहकों के आर्डर को किस प्रकार पूरा किया जाए इसका निर्णय भी वितरण सेवा का एक प्रधान अंग है। ग्राहकों के आर्डर का किस प्रकार क्रियान्वयन किया जाए इससे सेवा के स्तर का बोध होता है। आर्डर क्रम के अंतर्गत, सेल्समैन के पास आर्डर होना, उसके द्वारा आर्डर को कंपनी में भेजना, कंपनी के पास आर्डर का लेखा रखना, ग्राहकों के **स्तररव** का परीक्षण, संपत्ति सूची, उत्पादन का कार्यक्रम, आर्डर तथा वीजक का शिपमेंट करना तथा आर्डर के भुगतान को प्राप्त करना। ये सब क्रियाएं आती हैं। इससे ग्राहकों को उतनी ही अधिक असुविधा होती है। इसकी उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है जहां वह बाज़ार में कार्य करते हैं। इसलिए कंपनी अब सूचना एवं तकनीकी विधियों का प्रयोग कर रही है ताकि आर्डर का क्रियान्वयन तेजी से हो सके तथा ग्राहकों की सेवाएं भी बढ़ सकें।

प्रोत्साहन

एक बार जब उत्पाद को उत्पादित किया जा चुका, उचित मूल्य निर्धारण किया जा चुका और वितरण हो गया तो दूसरे चरण में विपणन को उत्पाद के बारे में संभावित ग्राहकों को सूचना देना चाहिए तथा उन्हें उत्पाद को क्रय करने के लिए एकीकरण करना चाहिए, हजारों उत्पाद हैं जो हमारी आवश्यकताओं की संतुष्टि करते हैं परंतु खरीदने का निर्णय लेते समय उन्हें

ध्यान में नहीं रखते। ऐसा मुख्य रूप से तभी होता है जब प्रोत्साहन संबंधी कार्य प्रयोग में नहीं लाए जाते। हमें अपने चारों तरफ सूचना के वातावरण को देखना चाहिए - जहां हमें विज्ञापन के बहुत संदेश देखने को मिलते हैं - बहुत से बेचने वाले लोग हमारे पास आते हैं जो अपने उत्पादन के बारे में काफी बातें करते हैं तथा बहुत से स्कीम, जैसे एक खरीदो एक मुफ्त पाओ, स्पेशल पैक, विशेष रुपए की छूट आदि बातें हैं जिनका हमारे पर सीधा प्रभाव होता है और हमारी खरीद को बढ़ाते हैं - इन सब प्रयासों को प्रोत्साहन कहते हैं।

विपणन मिश्र के प्रोत्साहन तत्त्व का अर्थ उन तत्त्वों से है जिन्हें ग्राहकों तथा वितरण के माध्यम में भाग लेने वाले तत्त्वों के बीच संप्रेषित किया जाता है ताकि विक्रय लक्ष्य प्राप्त किया जा सके - प्रोत्साहन प्रयासों के द्वारा यह कोशिश की जाती है कि संभावित ग्राहकों को इस बात की सूचना दी जा सके ताकि उचित उत्पाद ठीक समय और ठीक मूल्य पर उपलब्ध है। प्रोत्साहन का मुख्य बिंदु संप्रेषण है। प्रोत्साहन संबंधी संप्रेषण का मुख्य उद्देश्य यह होता है कि वास्तविक अथवा संभावित ग्राहकों को उत्पाद के गुणों के बारे में सूचित और प्रेरित किया जाए ताकि उनका लगातार सहारा मिलता रहे अथवा ग्राहक उसको प्रयोग करे अगर उत्पाद नया है।

विपणन प्रोत्साहन संबंधी बहुत से यंत्रों का मिश्रण चुनता है ताकि वह संप्रेषण के वांछित प्रभाव को प्रारंभ कर सके। इसे संप्रेषण मिश्र का विकास कहते हैं। संप्रेषण के निम्न यंत्र हैं जिसमें से किसी एक का चुनाव किया जा सकता है :-

(i) विज्ञापन: विज्ञापन हमारे चारों तरफ है, प्रोत्साहन मिश्र में यह बहुत ही प्रत्यक्ष संप्रेषण यंत्र हैं। विज्ञापन एक अव्यक्तिगत संप्रेषण है जिसका भुगतान एक पहचाने हुए समर्थक द्वारा किया जाता है इसका लक्ष्य होता है विचारों को प्रोत्साहन देना जैसे (धूम्रपान न करना), उत्पाद (बी. पी. एल. टेलीविजन) अथवा सेवाओं को प्रोत्साहन देना जैसे (डालफिन मोबाइल)

(ii) विक्रय प्रोत्साहन: इसके अंतर्गत अल्प काल की क्रिया में अथवा प्रलोभन आते हैं जिनका उद्देश्य होता है कि विक्रय को उत्पादित करें विक्रय प्रोत्साहन के अंतर्गत वे क्रियाएं सम्मिलित होती हैं, जिन्हें बार-बार नहीं करनी पड़ती जैसे कूपन सैंपुल, विशेष छूट आदि इनसे क्रय करने लिए प्रोत्साहन मिलता है।

(iii) व्यक्तिगत विक्रय: इसके अंतर्गत विक्रय करने वाले व्यक्ति तथा संभावित ग्राहक के साथ आमने-सामने बात होती है। उदाहरण के लिए, जब यूरेका फोर्बश का बेचने वाला व्यक्ति अपने उत्पाद का प्रदर्शन करता है तो वह सूचना अपने उत्पाद के बारे में देता है, प्रश्नों का उत्तर देता है और ऑर्डर लेता है, शामिल होता है। क्रिया में व्यक्तिगत विक्रय में आती हैं।

(iv) प्रचार: यह अव्यक्ति यह संप्रेषण का अदत्त रूप है यह विज्ञापन के ही बराबर है परंतु विज्ञापन में भुगतान होता है परंतु प्रचार में नहीं। प्रचार तभी होता है जब मीडिया खबर के रूप में किसी घटना को लेता है और सूचना बिना मूल्य के प्रचार माध्यम से लोगों तक पंहुचा, दी जाती है।

विज्ञापन

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि वस्तुओं अथवा सेवाओं को एक पहचानते हुए समर्थक द्वारा प्रोत्साहन देता है यह एक अव्यक्तिगत प्रोत्साहन है जिसमें एक आदर्श संदेश बड़े मामले में सुनने वालों के पास भेजा जाता है, उदाहरण के लिए, पेप्सी अथवा कोक के विज्ञापन में आदर्श संदेश होता है जिसे देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले श्रोताओं के पास पहुंचाया जाता है। विज्ञापन माध्यम द्वारा संभावित ग्राहकों को सीधे लुभाकर उत्पाद को ऊपर उठाता है

इसलिए यह कहा जाता है कि इसके अंतर्गत "ऊपर उठाने की क्षमता" अथवा " फुल इफेक्ट" का निर्धारण बाज़ार में होता है। विज्ञापन के निम्न मुख्य गुण हैं :-

(i) पहुंच: विज्ञापन लंबे बाज़ार तक पहुंच सकती है एक संप्रेषण यंत्र के रूप में बहुत से लोगों तक पहुंच सकता है और लाभान्वित हो सकता है। उदाहरण के लिए दूरदर्शन पर दिया गया संदेश पैक के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के पास पहुंचाता है उसी तरह अंग्रेजी पढ़ने वाले जन समुदाय में अंग्रेजी अखबार जैसे हिंदुस्तान टाइम्स अथवा टाइम्स ऑफ इंडिया में विज्ञापन देकर भारी संख्या में अंग्रेजी पढ़ने वालों के पास पहुंचाया जा सकता है।

(ii) चुनाव: विज्ञापन बहुत तरह के माध्यमों द्वारा संभव है जैसे "विडियो ऑडियो" अथवा "आडियो विजुअल" प्रत्येक श्रेणी में विज्ञापन देने वालों के लिए बहुत से चुनाव उपलब्ध हैं। उदाहरण के लिए, अगर कोई चिह्न मीडिया का प्रयोग करना चाहता है तो वह अखबार अथवा मैगजीन का प्रयोग कर सकता है इसके अतिरिक्त प्रत्येक माध्यम के प्रकार में, अच्छे चुनाव भी जिताए जा सकते हैं। इससे विज्ञापन करने वाला अपने संदेश को किसी विशिष्ट ग्राहक समूह पर केंद्रित कर सकता है और इस प्रकार संप्रेषण प्रक्रिया में होने वाले हानि को कम से कम कर सकता है।

(iii) वैधानिकता : जब उत्पादन अथवा सेवाएं विज्ञापन द्वारा प्रोत्साहित की जाती हैं तो संदेश श्रोताओं के पास सार्वजनिक रूप से भेजा जाता है एक सार्वजनिक रूप से विज्ञापित उत्पाद संभावित ग्राहकों की निगाह में वैधानिक होता है जैसे कि कोई वस्तु प्रमाणित है इससे उत्पादन का मूल्य खरीदने वाली जनता के निगाह में बढ़ जाता है। हम सब लोग उन उत्पादों के साथ आरंभ महसूस करते हैं जो अच्छी तरह विज्ञापित हो जाए उन उत्पादों को जो बाज़ार के ज्ञान क्षेत्र में ही नहीं आते।

(iv) स्पष्टता: विज्ञापन ऐसे बहुत से अवसर प्रदान करता है जिसे संदेशों को ड्राइंग, रंग उदाहरण अथवा, तस्वीर, गाना आदि की सहायता से नाटक का रूप दिया जा सकता है इससे विज्ञापन करने वालों को संप्रेषण की बढ़ी हुई प्रमाणिकता प्रारंभ होती है।

(v) मितव्ययिता: कुछ विज्ञापन ऐसे हैं जिन से संदेश अधिक लोगों के पास भेजा जा सकता है - इनका प्रयोग कम खर्च का होता है अर्थात् एक संभावित ग्राहक के पास पहुंचने की लागत दूसरी तरफ के संप्रेषण के रूपों की तुलना में कम होता है। उदाहरण के लिए, टेलीविजन चैनल पर मुख्य समय में 10 सेकंड का विज्ञापन का खर्च 10 लाख तक हो सकता है परंतु प्रतिमाह इसकी लागत कम होगी क्योंकि टेलीविजन पर काफी लोग इसे देख सकेंगे। यह तरीका प्रमाणित संदेशों के अधिक लोगों के पास भेजने में लाभप्रद होती है।

विज्ञापन में एक संप्रेषण यंत्र के रूप में निम्न कमियां पाई जाती हैं :

सबसे पहले, यह एक अव्यक्तिगत संप्रेषण है अर्थात संप्रेषण भेजने वाले तथा पाने वाले को मीडिया अप्रत्यक्ष रूप से जोड़ती है जो कि संप्रेषण में अव्यक्तिपन लाती है सुनने वाले बात को सुनने वाले तथा उसका उत्तर देने के लिए उतना तात्पर्य नहीं रहते।

दूसरे, विज्ञापन कम प्रभावी होता है जब संप्रेषण के अंतराल बातचीत की जाती है। इसकी जरूरत उस समय पड़ती है जब प्रोत्साहित किया जाने वाला उत्पाद कठिन होता है जिसके लिए दोनों तरफ संप्रेषण की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिए, जटिल मशीनों या यंत्रों से खरीदने वाला अपनी सब शंकाओं का उत्तर चाहता है जो शंकाएं उन मशीनों के काम करने अथवा लगाने में उत्पन्न होती हैं।

विज्ञापन मीडिया की सहायता से कार्य करता है विज्ञापन का संदेश किसी मीडिया द्वारा संभावित

ग्राहकों के पास पहुंचाया जाता है। उदाहरण के लिए, टेलीविजन रेडियो, बैनर, मैगजीन और अखबार जैसे मीडिया विज्ञापन के संदेशों को इस प्रकार प्रदर्शित करते हैं जो हमारे प्रतिदिन के जीवन में कार्य करता है। वास्तव में विज्ञापन के संदेश का हमारे ऊपर प्रभाव पड़ेगा या नहीं इसका निर्धारण मीडिया के ऊपर निर्भर करता है। इस प्रकार उचित मीडिया का चुनाव संप्रेषण को प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक है। जब मीडिया का चुनाव गलत होता है तो विज्ञापन चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो उससे संदेश श्रोताओं तक पहुंचने में असफल रहता है। इसलिए विज्ञापन करने वाले को मीडिया का चुनाव बहुत ही जागरूकता से करना चाहिए ताकि वांछित पहुंच तीव्रता और प्रभाव को प्राप्त किया जा सके।

माध्यम का चुनाव

मीडिया के चुनाव का निर्णय तीन तरीकों द्वारा मार्ग दर्शित होता है। पहला मीडिया की पहुंच इसका तात्पर्य यह है कि मीडिया कितने संभावित ग्राहकों तक पहुंच सकती है। उदाहरण के लिए, टी.वी. अखबार की तुलना में अधिक प्रभाव रखती है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि अखबार की तुलना में लोग टेलीविजन ज्यादा देखते हैं।

दूसरा तरीका है तीव्रता। इसका मतलब यह है कि कितने बार एक ग्राहक निश्चित समय में एक संदेश को पढ़ता है या सुनता है। अंत में परिणाम प्रदर्शन का प्रभाव कितना हो रहा है। कुछ मीड़िया प्रभाव के मामले में दूसरों की तुलना में अच्छे होते हैं। उदाहरण के लिए, कंप्यूटर से संबंधित उत्पादन यदि किसी कंप्यूटर या सूचना प्रौद्योगी की विशेष मैगजीन में दिया जाए तो काफी प्रभावी होता है। लिहाज़ा इसलिए यह विज्ञापन पारिवारिक अथवा मनोरंजन की मैगजीन में दिया जाए इसलिए बेचने वाले को उचित मीडिया प्रकार और विशिष्ट वाहन करना चाहिए।

एक विशेष मीडिया का चुनाव करते समय निम्न बहुत-सी बातों को ध्यान में रखना चाहिए :-

(i) सिलेक्टीविटी: इसका मतलब विज्ञापन को श्रोताओं तक पहुंचने की क्षमता से है। लक्ष्य योग्य बाज़ार जिसके लिए उत्पाद बना है सबसे ज्यादा ध्यान देने योग्य बात है। उदाहरण के लिए, लक्ष्य योग्य बाज़ार में गांव के लोग हैं जो कि अनपढ़ हैं जो रेडियो तथा टी.वी. ज्यादा बेहतर होगी अखबार तथा मैगजीनों से।

(ii) फैलाव: इसका अर्थ श्रोताओं की संख्या से है जो एक माध्यम द्वारा पहुंचे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, अगर एक छोटी दुकान विज्ञापन करना चाहती है तो जहां बहुत ही कम घरों में टी.वी. है लेकिन सभी लोग अखबार खरीदते हैं तो यह बेहतर होगा कि विज्ञापन वहां के छोटे अखबार में दिया जाए न कि टी.वी. पर। इससे पहुंच में वृद्धि होगी।

(iii) लचीलापन: इसका अर्थ विज्ञापन में उस तीव्रता से है जिससे उसे बनाया जा सके तथा बदला अथवा खत्म किया जा सके। उदाहरण के लिए, टी. वी. के विज्ञापन को बदलना कठिन है और उसके लिए बहुत अधिक मेहनत की जरूरत है। लेकिन अगर एक विज्ञापन है, कम मूल्य बिक्री की सात दिनों के लिए तथा माल पांच दिनों में खत्म हो जाता है तो विज्ञान को बदलना पड़ेगा। यह आसान होगा इसे पोस्टर होर्डिंग तथा अखबार द्वारा किया जा सकता है जबकि इसमें भी रुपए खर्च होंगे।

(iv) मूल्य: यह सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। इसका अर्थ उसे खर्च से है जो एक समय या जगह को खरीदने के लिए आवश्यक है। इसका फायदा विज्ञापन कितने लोगों तक पहुंची अथवा बिक्री कितनी बड़ी से लगाया जा सकता है।

(v) सांप्रदायिक माहौल : इसका अर्थ संदेशों तथा मनोरंजन की वस्तुओं से है जो एक विज्ञापन को खोले रहती है। उदाहरण के लिए, कारखाने के सामान

उन मैगजीनों में नहीं विज्ञापित किए जाते जिन्हें ज्यादा स्त्रियां पढ़ती हैं। इसी प्रकार विज्ञापन की कद्र बढ़ जाएगी अगर उसे उस समय रखी जाए जब प्रसिद्ध टी. वी. नाटक दिखाए जाते हैं।

(vi) स्थिरता: इसका अर्थ मीडिया की स्थिरता से है कुछ मीडिया दूसरों से अधिक स्थिर होते हैं। पोस्टर तथा होर्डिगों को कुछ समय बाद हटाना पड़ता है तथा लोग उसके बारे में भूल जाते हैं। लेकिन मैगजीन तथा जर्नल सालों साल तक चलते हैं तथा व्यक्ति उन्हें बाद में भी देखता है।

मीडिया का निर्णय करना

निम्नलिखित भिन्न मीडिया से चुन सकते हैं।

(i) अखबार: अखबार एक सबसे संपूर्ण मीडिया है। विज्ञापन करने वाले के पास अखबार ज्यादा पहुंच कर फायदा देता है। राष्ट्रीय स्तर के डेली जैसे– हिंदुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया लाखों की पहुंच का फायदा उठाते हैं। अधिक प्रचलन के कारण औसत मूल्य हर विज्ञापन के हिसाब से अखबार में कम होता है। अखबार नाम से ही सच्चाई बताने वाला है। इसी कारण संदेश ज्यादा मानने वालों तक अधिक पहुंचाता है। अखबार संदेशों के तरीके तथा समयबद्धता में लचीलापन लाता है। अखबार का विज्ञापन दूसरी ओर छोटी जिंदगी से मार खाता है तथा कम प्रभाव डाल पाता है। उत्पादन की किस्म की अखबारों में खराब पाई जाती है।

(ii) मैंगजीन: विज्ञापन करने वालों के पास मैगजीन भी छपे–छपाए विज्ञापन का एक प्रकार से मैगजीन एक साये हुए लोगों तक पहुंच पाती है। इसका जीवन लंबा होता है तथा उत्पादन की किस्म भी अच्छी होती है। कई मैंगजीन के संदेश अधिक प्रभावी होते हैं तथा उनके नाम के कारण मैंगजीन के विज्ञापन बार–बार आने का लाभ उठाते हैं। जैसे कि वे पढ़ने वाले के हिसाब में पढ़े जाते हैं। श्रोता उसमें अधिक समय खर्च कर सकते हैं क्योंकि उन्हें मीडिया पर नियंत्रण होता है। दूसरी तरफ, मैंगजीनों में कम लचीलापन होता है। वह अधिक समय के लिए होते हैं तथा इसी कारण वह विज्ञापन में भी कम लचीले होते हैं क्योंकि वह सिर्फ देखने योग्य मीडिया होते हैं।

(iii) टेलीविजन: पिछले दो दशकों में टेलीविजन ने महत्त्वपूर्ण बढ़ोत्तरी दर्ज की है। इसका सबसे बड़ा

विश्व कप और मीडिया

विज्ञापन करने वाले बड़े-बड़े दिखाते हैं कि उन्होंने क्या पाया 350 करोड़ रुपए मैक्स या दूरदर्शन पर लगाकर। इसके लिए दो महत्त्वपूर्ण कारण है देखने वालों को खींचने के लिए ; पहला भारतीय खिलाड़ी मैचों में अच्छा खेले, ताकि देखने वालों में जागरूकता भरी रहे तथा वह देखने वालों को सेट से चिपकाए रखें और दूसरा केबल चलाने वाले दूरदर्शन तथा मैक्स का प्रसारण सबसे अच्छे से करे जो कि सभी टी.वी. सेटों द्वारा देखा जा सके तथा देखने वाले में विज्ञापन के लिए जोश भर सके।

"एक विज्ञापन करने वाला, सबसे अंत में अपने उत्पादन की बिक्री में वृद्धि के लिए जागरूक होता है", वह कहता है "और उसके उत्पादन के सबसे अधिक बिकने के चांस उस समय होते हैं जब वह सोचे गए श्रोताओं तक पहुंच सके। एक साधन भले ही महान वाणिज्यिक बना ले, परंतु टी. वी. के चैनल को अवश्य संदेश उपभोक्ताओं तक पहुंचाना चाहिए यह सामान के बिकने के भविष्य का फैसला करता है"। पेय चैनल है जबकि दूरदर्शन एक हवा में मुफ्त चैनल है जो कि उसकी उत्सुकता को बढ़ाती है। "दिन के अंत में श्रोता तेदूंलकर को छक्का मारते हुए देखना चाहते हैं। उन्होंने कहा "देखने वाले प्रस्तुति के सौंदर्य का ज्यादा ध्यान नहीं रखते हैं।

स्रोत : बिजनेस इंडिया

फायदा ये हैं कि यह देखने के साथ-साथ सुनने योग्य होते हैं जिनमें कि देखने, सुनने तथा लेते हुए संदेश होते हैं। इस तरह वह बड़े ड्रामें को झेल सकती हैं। जहां तक पहुंच का सवाल है टी. वी. के पास अधिक पहुंच होती है। टेलीविजन द्वारा दिए गए विज्ञापन काफी शक्तिशाली होते हैं तथा उनका प्रभाव ग्राहकों पर अच्छा पड़ता है क्योंकि टी. वी. विज्ञापन हमारे हाथों तथा कानों को लुभाते हैं। कुछ मुख्य दोष टेलीविजन मीडिया के ये हैं। इनकी लागत बहुत होती है केंद्र में उनकी पकड़ कम होती है तथा संदेशों को थोड़े समय के लिए दिखाया जाता है तथा मैसेज कंजेशन एंड क्लटर।

(iv) रेडियो: रेडियो विज्ञापन पिछली आधी सदी में बहुत प्रसिद्ध थे क्योंकि उनके पास अत्यधिक पहुंच तथा कम लागत होती है। रेडियो विज्ञापन के द्वारा संदेश दूर-दराज की जगहों तक भी पहुंच जाते हैं। कम लागत के आधार पर लचीलापन भी बनाए रखा जा सकता है। रेडियो की कुछ मुख्य कमियां हैं- यह केवल सुनने योग्य हैं, इसके पास कम खिचाव की क्षमता होती है तथा आवाज, खराबी, छोटे संदेशों के जीवन तथा कम असंरक्षण।

(v) बाहरी विज्ञापन: यह आजकल के समय का सबसे अधिक प्रभावशाली मीडिया है। फर्म अपने बैनर, होर्डिंग तथा बिल बोर्ड खुली जगहों पर लगाती है ताकि संदेश उपयुक्त ग्राहकों तक पहुंच सके। होर्डिंग को ज्यादातर लंबी सड़कों पर ट्रैफिक के चौराहों पर देखा जा सकता है। कुछ बाहरी होर्डिंग इतनी ज्यादा सावधानी पूर्वक विद्युत की मदद से बनाई जाती है कि वह आंखों द्वारा बहुत जल्दी पकड़ ली जाती है एवं जागरूकता बढ़ाती है तथा संदेशों को भी पहुंचाने में सहायता करती है। सबसे अधिक आऊट-डोर मीडिया इस्तेमाल करने वालों में पेय जल कंपनियां हैं जो कि नए-नए बैनर तथा होर्डिंग की सहायता से उपभोक्ताओं के दिमाग में रहते हैं। आउट-डोर मीडिया के द्वारा दोहरे प्रदर्शन का तनाव, उच्चस्तर की पकड़ की क्षमता संदेश के नगरीकरण, उच्च पारदर्शिता तथा कम लागत प्रमुख होते हैं। फिर भी यह तरीका कुछ कमियों से क्षतिग्रस्त .... हुआ है जैसे सीमित श्रोतागण (सीमित ध्यानाकर्षण, अव्यवस्थित) तथा सीमित भावना।

(vi) इंटरनेट: इंटरनेट आधुनिकीकरण विज्ञापन का तरीका है जो कि अस्तित्व में आया है। इंटरनेट का विज्ञापन उच्च स्तरीय श्रोताओं के पास जाता है इसके अंतर्गत सीमित संदेश भेजा जा सकता है। चूंकि इस माध्यम में एक दूसरे से बात की जा सकती है। इसके अंतर्गत ग्राहक बन सकते हैं तथा संदेशों को अधिक क्षमतापूर्वक भेजा जा सकता है। लागत में हिसाब से यह खर्चीला विकल्प नहीं है। इसके अंतर्गत संदेशों के नगरीकरण की संभावना अधिक रहती है टेलीविजन की तरह इसमें ग्राहक मीडिया प्रदर्शन पर नियंत्रण रख सकते हैं इंटरनेट का सबसे बड़ा दोष इसकी सीमित पहुंच है। नया माध्यम होने के कारण इसे प्रयोग करने वाले कम हैं।

विज्ञापन की आलोचना

विज्ञापन की काफी आलोचना हुई है जो स्वभाव में शोर-शराबे के ही समान है। यह लाभप्रद होगा कि आलोचना के प्रकार को अध्ययन किया जाए।

(i) विज्ञापन का प्रभाव मूल्यों, भौतिकवादिता तथा जीवन शैली पर: विज्ञापन की मुख्य आलोचना यह है कि इससे असंतोष उत्पाद होता है। इससे भौतिकवादिता में वृद्धि होती है अगर विज्ञापन न हो तो भौतिक चीजों के बारे में जानकारी कम होगी और इस प्रकार अधिक संतुष्टि होगी। प्रतिदिन नए-नए उत्पादों का उत्पादन किया जाता है और विक्रय के लिए दिया जाता है। पुराने उत्पादों को अलग कर दिया जाता है अगर प्रयोग में नहीं आता और नए उत्पाद को क्रय किया

जाता है। प्रत्येक आदमी अधिक से अधिक चाहता है कुछ विज्ञापन नए जीवन शैली में आ गए हैं जिन्हें समाज की स्वीकृति नहीं मिली है। उदाहरण के लिए, विज्ञापन में शराब पीते हुए लोगों को दिखाया जाता है तथा सामाजिक मामला जैसे दहेज प्रथा को विज्ञापन द्वारा कभी-कभी गलत तरीके से दिखाया जाता है।

कुछ उत्पादन होते हैं और अधिक उपयोगी होते हैं लोगों को ऐसे उत्पाद के बारे में सूचना देनी होती है। विज्ञापन द्वारा इसे पूरा किया जाता है।

आजकल बाज़ार में कीड़े मारने की बहुत-सी दवाइयां बेची जा रही हैं पहले इनकी आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि उस समय मच्छर और काकरोच अधिक नहीं थे लेकिन कीड़े इन दवाइयों से मुक्ति पा गए हैं और दवाइयां अब प्रभावी नहीं रह गई हैं। इसलिए नए उत्पादों का पता लगाना जरूरी हो गया है और विज्ञापन ग्राहकों को उसके बारे में सूचना देता है। अंतिम चुनाव ग्राहक ही है। एक कहावत है कि आवश्यकता आविष्कार की जननी है। अगर समय-समय पर होने वाला असंतोष न हो तो कोई चमत्कार नहीं हो सकता नए उत्पादों का विकास कभी भी नहीं हो सकता। एक व्यक्ति जिसकी सूचना कम है और जो सोच में भी असमर्थ है वह पूर्ण रूप से संतुष्ट भी नहीं हो सकता इसलिए यह कहा जाता है कि विज्ञापन से असंतोष बढ़ता है और भौतिकतावाद में भी वृद्धि होती है।

(ii) विज्ञापन घटिया और नकली माल को विक्रय को प्रोत्साहित करती है: सभी प्रकार के उत्पाद बाज़ार में विक्रय हेतु बनाए जाते हैं। प्रतिस्पर्धा का तात्पर्य है कि विभिन्न प्रकार के उत्पाद बाज़ार में बेचने के लिए आएंगे। आलोचकों का कहना है कि विज्ञापन अच्छे और खराब उत्पादों में अंतर नहीं करता है और लोगों को खराब माल भी खरीदने के लिए प्रेरित करता है। विज्ञापन की सहायता से लगभग कोई भी चीज बाज़ार में बेची जा सकती है।

एक पदार्थ अच्छा या खराब है यह एक आदमी के आर्थिक स्तर तथा चुनाव पर निर्भर करता है। प्रत्येक आदमी अच्छे तथा उच्च स्तरीय माल को खरीदने में सक्षम नहीं हो सकता अगर समाज के किसी भाग को सस्ते माल की आवश्यकता है तो उत्पादक उसे बनाएगा और विज्ञापन के लिए बहुत से तरह के कपड़े धोने के साबुन उपलब्ध हैं और ग्राहक अपनी आवश्यकतानुसार उन्हें खरीद सकता है जो उत्पाद कम मूल्य का है यह आवश्यक नहीं की उसके गुण अच्छे हों परंतु कुछ लोग हैं जिन्हें मनाने की आवश्यकता होती है।

इन आलोचनाओं के अतिरिक्त कुछ वास्तविक आलोचना भी है। उत्पादक कुछ वस्तुओं के दोहरे उत्पाद को बनाती हैं अथवा किसी के बारे झूठे अधिकार का प्रदर्शन करते हैं और उत्पाद की उपयोगिता को बताते हैं और ग्राहकों को इन दोहरे अथवा नकली माल को खरीदने के लिए प्रयास करते हैं। अनजान ग्राहक इससे प्रभावित हो जाते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि जो विज्ञापन टी. वी. में या अखबार में आया है वह उचित ही होगा।

(iii) विज्ञापन से उलझन बढ़ती है, सहायता नहीं मिलती : आजकल इतने अधिक विज्ञापन हैं जिनका प्रदर्शन लोगों को किया जाता है उदाहरण के लिए, टी.वी. में 10 विज्ञापनों में से 5 विज्ञापन डिटरजेंट अथवा टूथ-पेस्ट के लिए होते हैं। प्रत्येक उत्पाद अपने को दूसरे की तुलना में अच्छा कहता है। इसे कैसे अलग किया जाए? आलोचकों का कहना है कि ग्राहक उलझ जाते हैं और निर्णय लेने में कठिनाई होती है।

परंतु क्या यह वास्तव में ऐसा है? हम यह समझते हैं कि हम सब एक बुद्धजीवी व्यक्ति हैं और अपने दिमाग का प्रयोग हम चुनाव करने में पूर्ण रूप से सक्षम हैं अगर हम कपड़ा खरीदने जाते हैं तो हम वही कपड़ा खरीदेंगे। जो सबसे अच्छा लगेगा उसी

तरह अन्य उत्पादों की खरीद भी बहुत से तत्वों पर आधारित रहती है; जैसे– मूल्य शैली, नाम आदि।

(iv) कुछ विज्ञापन बुरे स्वाद के होते हैं: कुछ विज्ञापन ऐसे हैं जिन्हें सतर्कतापूर्वक और दूसरों के स्वाद को ध्यान में रखकर नहीं बनाया जाता। कभी-कभी जिस तरीके से विज्ञापन में बोला जाता है वह सभी को नहीं पसंद आता विज्ञापन में औरतों को नाचते हुए अथवा ऐसे आदमी के पीछे दौड़ते हुए दिखाया जाता है जो अच्छे सूट पहने हो अथवा एक विशेष प्रकार के परफ्यूम को प्रयोग करता हो ये सभी चीजें अच्छे स्वादकर नहीं है। कुछ विज्ञापन संबंध को बिगाड़ देते हैं जैसे नौकर–मालिक, अथवा सास–बहू और स्वभाव में कभी खतरनाक होते हैं।

इस प्रकार के विज्ञापन निश्चित रूप से जरूरी नहीं है परंतु व्यक्ति अच्छे स्वाद और बुरे स्वाद में अंतर रखता है। यह व्यक्तिगत विचारों की धारणा है। स्वाद का माप रंग समय के हिसाब से बदलता है। कल माप स्वीकार्य था, यह आवश्यक नहीं कि आज भी वह ठीक ही होगा अथवा आजकल ठीक है वह कल ठीक होगा कि नहीं।

(v) विज्ञापन की लागत उच्च मूल्य के रूप में ग्राहकों को देनी पड़ती है: सबसे महत्त्वपूर्ण आलोचना यह है विज्ञापन के सभी लागत–उत्पादन एवं विज्ञापन–को मिलाकर विक्रय मूल्य में सम्मिलित कर लिया जाता है यह सत्य भी है कोई भी उत्पादक विज्ञापन के खर्चे को अपनी जेब से नहीं देना चाहता।

लेकिन इसका एक न्यायोचित विचार भी है कि विज्ञापन लागत को विक्रय मूल्य में जोड़ दिया जाए। विज्ञापन से मांग बढ़ने पर बाज़ार की क्षमता में वृद्धि होती है- क्योंकि मांग बढ़ती है तो विक्रय में भी वृद्धि होगी और उत्पादक अधिक मात्रा में माल का उत्पादन कर सकेंगे और इस प्रकार अधिक उत्पादन कम खर्चे पर करके उसका लाभ उठा सकते हैं। इससे लागत में कमी आती है और मूल्य में भी कमी आती है। अधिक उत्पादन कम खर्चे पर करके तभी संभव है जब विज्ञापन द्वारा मांग में वृद्धि हो उत्पाद की लोकप्रियता से प्रतिस्पर्धा में भी वृद्धि होती है और मूल्य और भी नीचे आ सकता है परंतु इसके लिए यह पूर्व शर्त है कि उत्पादक लाभ के हिस्से को ग्राहकों को पहुंचाए इसलिए यदि विज्ञापन को

वर्ल्ड कप तथा विज्ञापन

विज्ञापन के प्रचार प्रारंभ हो गए और केंद्रबिंदु कप है। ठंडे पेय बनाने वाली पेप्सी कंपनी ने अपने उत्पाद को नीले रंग में पेश किया है ताकि यह रंग भारतीय टीम के खिलाड़ियों के रंग से मेल खाते टीशर्ट, टोपी, खाना आदि का संबंध वर्ल्ड कप से होगा। कौन जानता है कि रसगुल्ला क्रिकेट के बाल की तरह दिखाई देगा? परंतु ये सब एक छोटा-सा परिवर्तन है जबकि यह देखा जाए कि इस टूर्नामेंट में करोड़ों डॉलर खर्च होंगे।

उद्योगों को देखने वाले ऐसा सोचते हैं कि वर्ल्ड कप में विज्ञापन पर लगभग 300–350 करोड़ रुपए होगा जिसमें से दूरदर्शन लगभग 100 करोड़ रुपए प्राप्त करेगा इसके अतिरिक्त औद्योगिक जगत लगभग 50 से 75 करोड़ रुपए खर्च करेगा यह खर्चा उत्पादों के प्रोत्साहन, प्रतियोगिता तथा इस अवसर पर नए उत्पादों को लाने में होगा। 29 जनवरी को पेप्सी ने मुम्बई में नीला पेप्सी की शुरुआत की। यह बाजार में अप्रैल तक उपलब्ध रहेगी।

पेप्सी कंपनी ने वर्ल्ड कप को उतनी गंभीरता से क्यों लिया। इसका मुख्य कारण यह है कि यह अपनी उपस्थिति अलग रूप से प्रतिस्पर्धाओं से अलग स्थापित करना चाहती है पेप्सी कंपनी के जरिए यह पता चला अगर वे इसका समर्थन क्रय नहीं करते तो हमारे प्रतिद्वंद्वी इसे ले जाते यहां तक बहुत बड़ा खेल है जिसमें पूरी दुनिया सम्मिलित है और माध्यम का एक अच्छा तरीका भी है विज्ञापन की एजेंसीज ने स्वच्छतापूर्वक सहयोग दिया।

स्रोत : बिजनेस इंडिया

सतर्कतापूर्वक प्रयोग किया जाए तो इसकी उपयोगिता बढ़ सकती है।

विक्रय प्रोत्साहन

विक्रय प्रोत्साहन का तात्पर्य अल्प समय के लिए प्रयोग की जाने वाली प्रलोभन से है अथवा अन्य प्रोत्साहन संबंधी क्रियाओं से है जिनसे क्रय करने तथा रुझान में प्रेरणा मिलती है। विक्रय प्रोत्साहन का मुख्य गुण यह है कि इसके द्वारा लक्षित श्रोताओं का प्रतिवेद मज़बूती से शीघ्रता से प्राप्त होता है। उनके अंदर एक प्रकार के 'तुरंत' की भावना का विकास होता है। ऐसा इसलिए होता है कि इन्हें लगातार प्रयोग नहीं करते और प्राय: नगरीय विधि से आधार को आकर्षित बनाते हैं; उदाहरण के लिए, जब पेप्सी ने अपने बड़े और आधे लीटर बोतल पर प्रोत्साहन 33 प्रतिशत अधिक करके ग्राहकों को दिया तो क्रेताओं ने तुरंत प्रतिवेदन करने का लाभ प्राप्त कर सके विक्रय प्रोत्साहन कार्यों में तीव्रता लाता हो।

विज्ञापन से जागरूकता का निर्माण होता है और ग्राहकों को उत्पाद के पक्ष में सोचने की प्रेरणा देता है विज्ञापन व्यवहार निर्माण का एक यंत्र है। यह ग्राहकों को बैड की तरफ भेजता है परंतु विक्रय प्रोत्साहन वास्तव में ग्राहकों को क्रय संबंधी निर्णय के लिए उत्साहित करता है वे संभावित ग्राहकों के रुझान का काम करते ताकि वो कार्य कर सकें। प्रोत्साहन कार्यक्रम से बहुत से उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकती है; एक फर्म अपने विक्रय की मात्रा को ग्राहकों द्वारा अधिक खरीद कराकर बढ़ा सकती है अन्यथा वे कम-कम करेंगे। विक्रय प्रोत्साहन उत्पाद के प्रारंभिक समय में अधिक लाभप्रद होते हैं। विशिष्ट प्रोत्साहन तरीकों द्वारा ग्राहकों को प्रभावी तौर पर प्रेरित किया जा सकता है कि वे उत्पाद का प्रयोग करें। उदाहरण के लिए, एक विशेष ट्रायलपैक अपना शुरुआती ऑफर वित्तीय लगन के जो लोग उत्पाद को प्रयोग नहीं करते उन्हें भी खरीदने के प्रेरित किया जा सकता है विक्रय प्रोत्साहन के अंतर्गत ग्राहकों को बार-बार क्रय करने का अवसर मिलता है विक्रय संवर्धन का प्रयोग इसलिए भी किया जाता है कि मध्यस्थों का सहयोग मिले और फुटकर दूकानों पर चाहा हुआ डिस्पर में लग सके। फर्म प्राय: क्रय संबंधी चीजों को

विक्रय प्रोत्साहन के उद्देश्य

विक्रय की मात्रा में वृद्धि: ऑफर के आकर्षण एवं चमक ग्राहकों को अधिक क्रय करने के लिए प्रेरित करता है जो ऐसा न होने पर क्रय नहीं करेंगे।

जांच में वृद्धि: ग्राहक जिन्हें उत्पाद के लिए प्रेरित किए जाते हैं। ऐसा करने के लिए परीक्षा कूपन दिए जाते हैं।

दोहरे क्रय में वृद्धि: कुछ प्रोत्साहन ऐसे हैं जो भविष्य से संवर्धित हैं और दुबारा क्रम पर लागू होते हैं। उदाहरण के लिए, दूसरे क्रय पर छूट अथवा निश्चित मात्रा में रैपर एकत्र करना और रिफंड मिलना।

जागरूकता का निर्माण: कभी-कभी कंपनियां विशेष प्रोत्साहन देती हैं जैसे प्रोत्साहन को साथ-साथ देना। जब दो कंपनियां आपस में मिल जाती हैं अथवा विशिष्ट समूह से गठबंधन कर लेती हैं जैसे चैरिटी आदि जिससे ब्रैंड के नाम की जागरूकता प्रभावित होती है।

गोल्फ में स्थान तथा डिस्पले प्राप्त करना: विशिष्ट प्रोत्साहन तरीकों की शुरुआत करके फर्म चाहे हुए स्थान अथवा गोल्फ पर अपने वस्तुओं का प्रदर्शन कर सकती हैं और विक्रय में वृद्धि हो सकती है।

प्रतिस्पर्धा को बंद करना: प्रोत्साहन का प्रयोग कभी-कभी प्रतिस्पर्धा को समाप्त करने के लिए भी किया जाता है। ऐसा करते समय ग्राहकों का ध्यान प्रोत्साहन की तरफ खींची जाती है। उदाहरण के लिए, बड़े स्तर पर प्रतियोगिता कराना अथवा खेल कराना।

डिस्पर में करती हैं, खिड़कियों पर विशेष रूप से डिस्पले किया जाता है तथा सजावट के अन्य मदों का प्रयोग फुटकर दुकानदारों के अन्दर उत्साह पैदा करने के लिए किया जाता है।

विक्रय प्रोत्साहन मध्यस्थों, ग्राहकों फर्म के स्वयं के विक्रय ताकत पर केंद्रित किया जा सकता है साधारण रूप से ग्राहकों के प्रोत्साहन के अंतर्गत सैंपुल, कैलेंडर, क्रय करने के स्तर पर प्रदर्शन, प्रतियोगिता, व्यापारिक प्रदर्शन मुक्त के आधार पर आते हैं। मध्यस्थों पर प्रोत्साहन का केंद्रबिंदु मूल्य, प्रोत्साहन के छूट, विक्रय प्रतियोगिता, *भेंट तथा विशेष मीटिंग व्यापारिक प्रदर्शन, विक्रय में* सहायता आदि विक्रय प्रोत्साहन में अंत में फर्म के विक्रय शक्ति पर ध्यान केंद्रित करना होता है। इस श्रेणी में जिन तरीकों का प्रयोग किया जाता है उसके प्रतियोगिता, प्रदर्शन, विक्रय सहायता, प्रशिक्षण संबंधी समान तथा बोनस आदि शामिल होते हैं।

विवरणकों द्वारा सामान्य रूप से प्रयोग की जाने वाली कुछ प्रोत्साहन क्रियाएं ये निम्न हैं :

(i) रिबेट : मूल्य संबंधी प्रोत्साहन के अंतर्गत मूल्यों में थोड़ी-सी फेर-बदल शामिल है। इस फेर-बदल से उत्पाद आकर्षक हो जाते हैं और खरीदार उसे तुरंत खरीद लेते हैं कभी-कभी उत्पादकों को एक निश्चित समय के लिए भौतिक मूल्य से कम मूल्य पर उपलब्ध कराया जाता है। ऐसा साधारण तौर पर अधिक साख को समाप्त करने के लिए किया जाता है अथवा प्रतियोगियों के प्रयास को समाप्त करने के लिए। उदाहरण के लिए, कुछ समय पहले कोक और पेप्सी दोनों ने अपने 500 मिली बोतल पर विशेष प्रकार के मूल्य का आफर दिया- कुल ही में बजाज ने अपनी बाक्सर मोटरसाइकिल को लगभग 2000 रु. कम पर बेचने की योजना बनाई।

(ii) छूट : छूट मूल्य प्रोत्साहन के ही तरीके का है जिसमें निश्चित मूल्यों में से कुछ प्रतिशत की कमी कर दी जाती है। जब छूट ग्राहकों को दी जाती है तो इसका उद्देश्य यही होता है कि उन्हें क्रय करने के लिए अथवा अधिक क्रय के प्रेरित किया जाए- उदाहरण के लिए, ऐलेन सौली लुई फिलिप्स तथा वैन हयूसन जैसे ब्रैंड नाम की कंपनियां अपने उत्पादों को 40 प्रतिशत दूर पर बेचती हैं। इस प्रकार का आधार एक निश्चित समय के ही लिए होता है। जबकि मौसम में परिवर्तन होता है बहुत से फुटकर गारमेंट के व्यापारी जैसे स्नोह्वाइट तथा शॉपर्स स्टाप अपने उत्पादों को बहुत ही अच्छी छूट पर बेचते है। *ऐसा मौसम समाप्त होने के बाद एक निश्चित समय* के लिए किया जाता है।

(iii) रिफंड अथवा छूट : इन तरीकों में विक्रेता मूल्य का एक भाग वापस करने को तैयार होता बशर्ते क्रय का प्रमाण प्रस्तुत किया जाए। उदाहरण के लिए, एक दंतमंजन बनाने वाले फर्म पांच रुपए वापस करने का वादा कर सकती है यदि उसका खाली कवर वापिस भेज दिया जाए।

(iv) प्रिमियम अथवा भेंट : उपभोक्ताओं की श्रेणी में तेजी से चलने वाली वस्तुओं पर यह प्रोत्साहन प्रायः लागू किया जाता है ग्राहक को उत्पाद के साथ एक भेंट दिया जाता है जैसे चाय के पैक के साथ एक चम्मच मुफ्त अथवा एक छोटा खिलौना बच्चों को साबुन के साथ भेंट उत्पाद को क्रेता की निगाह में आकर्षक बनाते हैं और उन्हें ब्रैंड बदलने के लिए प्रेरित करते हैं प्रिमियम एक पैकेज में अथवा पैकेज के साथ हो सकता है "पैकेज में" भेट का ऊर्जा है टुथपेस्ट के साथ उसी पैकेज में एक ब्रुश मुक्त और "एक भडा मुफ्त ऑफर" नेस्केफ के क्रय पर है।

(iv) क्वालिटी डील्स : कभी-कभी विक्रेता ऐसे पैकेज को बनाता है जिससे क्रेता को उत्पाद भी अधिक मात्रा कम मूल्य पर अथवा मुफ्त में मिलती

है। इस तरह की डील "तीन खरीदों एक मुफ्त पाओ" के रूप में उपलब्ध होती है। यह प्रोत्साहन निरमा और लक्स साबुन में है अथवा तथा 50 gm अधिक फेना या 555 डिटरजेंट बार पर है।

(v) सैंपलिंग: सैंपलिंग का तात्पर्य है उत्पाद को मुफ्त में नमूने के रूप में ग्राहकों को देना– कभी-कभी विक्रेता नमूने के लिए बहुत ही कम दाम लेता है। ये सब इसलिए किया जाता है कि ग्राहक उत्पाद की परीक्षा करें और इसके बारे में जाने– उदाहरण के लिए, हिंदुस्तान लीवर ने "सर्फ एक्सेल" जब किया तो इसके नमूने बहुत ही बड़े स्तर पर बांटा गया।

(vi) प्रतियोगिता: ग्राहकों की प्रतियोगिता विक्रय प्रोत्साहन का दूसरा तरीका है। इसके अंतर्गत ग्राहकों को एक प्रतियोगिता में भाग लेना होता है जिसमें क्षमता तथा भाग्य का खेल होता है और जीतने वाले को कुछ इनाम दिया जाता है। उदाहरण के लिए, गोल्डन हार्वेस्ट, प्रिमियम ब्रेड बनाने वाले, साधारण तौर पर बच्चों के लिए ड्राइंग की प्रतियोगिता रखते हैं अन्य दूसरे तरीकों में विजेता का नाम "लंबी ड्रम" से निकाला जाता है।

(vii) पोस्ट ऑफिस अथवा मेल में मुफ्त प्रीमियम: इस प्रकार के प्रोत्साहन में ग्राहकों को तुरंत क्रय पर लाभ प्राप्त नहीं होता है। बल्कि ग्राहकों को विक्रेताओं से संपर्क करना होता है। इस संपर्क में उन्हें, उदाहरण के लिए, एक रैपर या क्रम का कुछ प्रमाण अथवा बहुत-खरीद ताकि उन्हें खरीद का लाभ प्राप्त हो सकें। उदाहरण के लिए, एक कंपनी जो चाकलेट बनाती है, बच्चों से कहती है कि विशेष रूप से चिह्नित रैपर भेजा जाए ताकि भेंट मिल सके।

(viii) पैकेज प्रिमियम: इस प्रकार के विक्रय प्रोत्साहन में बेचने वाला उत्पाद के पैकेट में कुछ भेट रख देता है। भेट से उत्पाद खरीदने की इच्छा में वृद्धि होती है। इस प्रकार का एक स्कीम टायलेट साबुन बनाने वाले ने शुरू की थी जिसमें "टायलेट केक" के अंदर एक सोने का "पेंडेंट" रखा जाता था।

(ix) कंटेनर प्रीमियम: इस श्रेणी के विक्रय प्रवर्तन उन विवरणकों के लिए लोकप्रिय है दूध के पदार्थ जैमद, डिटरजेंट तथा साबुन बेचते हैं। इन स्कीमों में विपणक उत्पाद को पैक करने के लिए विशेष कंटेनर का प्रयोग उन्हें पैक करने के लिए करता है ताकि ग्राहक उनका उपयोग बाद में कर सकें। उदाहरण के लिए, साक्षर बनाने वाली कंपनी ने अपने उत्पाद को एक विशेष जार में पैक किया जिनका प्रयोग गृहणियों रसोई में कोई सामान रखने के लिए प्रयोग कर सकती हैं।

व्यापारिक प्रोत्साहन

विक्रय प्रोत्साहन व्यापार के साझेदारों पर भी केंद्रित होता है। ये प्रोत्साहन माध्यम के सदस्यों जैसे वितरक, थोक व्यापारी, फुटकर व्यापारी पर केन्द्रित होता है जो उत्पााद को अंतिम उपभोक्ता तक ले जाने में काफी मुख्य भाग निभाते हैं। व्यापारिक प्रोत्साहन का मुख्य उद्देश्य है कि माध्यम में 'पुश' का निर्धारण करें ताकि उत्पाद तेजी से और चाही हुई मात्रा में आगे बढ़े। व्यापारिक प्रोत्साहन में उद्देश्य यह होता है कि व्यापार के साझेदारों जैसे थोक एवं फुटकर व्यापारी अपने व्यापार में एक ब्रांड के साथ चलें। ब्रांड को उत्साहित करें, इसे उचित विज्ञापन दें और अंत में ग्राहकों को इसे खरीदने के लिए प्रेरित करें।

कई मामलों में उत्पादों की अन्तिम बिक्री में मध्यस्थता की अहम भूमिका निभाते हैं। यह उन उत्पादों के लिए बिल्कुल उपयुक्त है जिनकी कोई ब्रांड नहीं होती। जैसे कि छोटी दुकान उत्पादों की अंतिम बिक्री के बिल्कुल समीप होते हैं, वह ग्राहकों की खरीद में परिवर्तन ला सकते हैं। व्यापारिक प्रोत्साहन उत्पादकों

को बहुत से फायदे एवं लाभ पहुंचाते हैं जिनसे वह कंपनी को उसके उद्देश्य को पाने से सफल बना सके। जैसे कि इस प्रकार के प्रोत्साहन ग्राहक प्रोत्साहन की भांति दिखते एवं स्पष्ट नहीं रहते लेकिन व्यापारिक प्रोत्साहन में ग्राहक प्रोत्साहन से अधिक रुपए खर्च होते है। व्यापारिक प्रोत्साहन आजकल के आधुनिक समय की तेज प्रतिस्पर्धा में और भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण हो गया है। क्योंकि थोक और फुटकर व्यापारी ग्राहकों के नजदीक रहते हैं वे वास्तविक तौर पर एक ब्रांड के कार्य को प्रभावित कर सकते हैं।

बेचने वाला मध्यस्थों के काम को निम्न प्रोत्साहन यंत्रों का प्रयोग कर प्रभावित कर सकता है-

(i) प्रीमियम तथा प्रतियोगिता: प्रोत्साहन यंत्र जैसे प्रतियोगिता तथा प्रीमियम का केंद्र बिंदु फुटकर व्यापारी कर सकता है मूल्य तरीका करीब-करीब बराबर ही रहता है। सेवाएं इसके कि ये क्रियाएं व्यापार में केंद्रित होती हैं ग्राहकों पर नहीं। उदाहरण के लिए, एक चाय कंपनी ने अपने प्रोत्साहन को एक छोटे से फुटकर दुकान से किया जिसमें चाय के कार्टन में भेट रखा गया था। उसी तरह एक उत्पादन को बनाने वाला एक प्रतियोगिता रख सकता है जिसमें फुटकर व्यापारी भाग ले सकते हैं और उन फुटकर व्यापारियों से कहा जा सकता है कि अगर वह एक निश्चित लक्ष्य को प्राप्त करते हैं तो वह प्रतियोगिता में भाग ले सकते हैं और सिंगापुर जाने के लिए एक इनाम जीत सकते हैं।

(ii) विशेष छूट: दूसरे प्रोत्साहनों में एक खास समय होता है जिसमें की विशेष छूट उन खरीदारों पर दी जाती है जो कि उस विशेष समय में खरीदे जाते हैं। इन प्रोत्साहनों के अलग-अलग नामों से जाना जाता है; जैसे- मूल्य माफ योजना, इंताइस माफ योजना आदि। यह सारी योजनाओं की केंद्रबिंदु व्यापार को बढ़ावा देना है जिसमें अधिक उत्पादों को खरीद तथा नए उत्पादों को लाना शामिल है। विशेष छूट फुटकर तथा थोक व्यापारियों की लाभ क्षमता को बढ़ाते हैं। कई बार तो व्यापारी यह छूट ग्राहकों पर डाल देते हैं ताकि वह और उत्पादों की बिक्री कर सकें।

(iii) छूट: छूट एक प्रकार का मुआवजा है जो किसी आदमी अथवा अस्तित्व सेवाएं प्रदान करने के लिए दिया जाता है। उत्पादकों ने छूट बहुत अधिक मात्रा में प्रयोग किया है तथा थोक एवं फुटकर व्यापारियों को दिया जाता है। यह घूट एक समझौते के आधार पर दिया जाता है ताकि क्रेता विक्रेता को किसी न किसी रूप में सहायता कर सके। उदाहरण के लिए, एक फुटकर व्यापारी को किसी चीज के प्रदर्शन के लिए (विक्रेता की वस्तु) छूट दी जाती है। इस छूट का उद्देश्य यह होता है कि फुटकर व्यापारियों को उन विशेष प्रदर्शनों को कराने के लिए मुआवजा मिल जाए जो उत्पादकों को मदद करते हैं। कभी-कभी फुटकर व्यापारियों को विज्ञापन अथवा विपणन की छूट दी जाती है। यह छूट फुटकर व्यापारियों को विज्ञापन अथवा विपणन से संबंधी सेवाएं बेचने वालों को देने के लिए दी जाती है।

(iv) मुफ्त माल: यह एक दूसरे प्रकार का विक्रय प्रोत्साहन योजना है जिसे बेचने वाला व्यापार के लिए करता है। व्यापारियों को कुछ मुफ्त माल दिया जाता है जिसका विचरण उसे ग्राहकों में निश्चित मात्रा में खरीद की जाने वाली वस्तु पर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, गेहूं का आटा विपणक एक बोरा आटा मुफ्त में उन ग्राहकों को देगा जो एक निश्चित समय में निर्धारित की गई मात्रा से ज्यादा आटा खरीदेंगे।

(v) पुस मनी: यह प्रोत्साहन फुटकर व्यापारियों अथवा डीलरों को दिया जाता है जो उत्पादक के उत्पाद को ग्राहकों को धक्का देकर पहुंचाते हैं इसमें नगद इनाम दिया जाता है। ताकि ग्राहक उसे खरीदने के लिए प्रेरित हो। यह उस समय महत्त्वपूर्ण हो जाता

है जब बेचने वाले के सामने अधिक प्रतिस्पर्धा होती है तथा वे उसी प्रकार का समान बेचते हैं।

(vi) नवीनता: नवीनता आधुनिक समय में बहुत ही महत्वपूर्ण प्रोत्साहन यंत्र हो गया है बेचने वाले कभी-कभी अपने व्यापार के साझेदारों को घड़ी, पेन स्टैंड, लेटर पैड आदि देते हैं। इन नवीनताओं में उत्पादों का नाम लिखा होता है जिन्हें प्रोत्साहित करना होता है और जिससे उत्पादक विज्ञापन का लाभ प्राप्त कर सकता है।

व्यक्तिगत विक्रय

साधारण शब्दों में कहा जाता है कि व्यक्तिगत विक्रय का अर्थ है व्यक्ति विक्रय के कार्य को स्वयं करता है। इसके अंतर्गत बेचने वाले और संभावित खरीदने वालों के बीच आमने-सामने बात होती है ताकि माल का विक्रय हो सके। इसके विक्रय के अंतर्गत सूचना देना, सहायता करना ओर ग्राहकों को उत्पाद खरीदने के लिए प्रेरित करना शामिल होता है। उत्पाद खरीदने के लिए उसकी आवश्यकता का प्रदर्शन भी करना होता है।

बेचना इतना व्यापक है कि हर आदमी बोरा खरीद सकता है। उदाहरण के लिए, टीचर अपने ज्ञान को बेचता है, कॉलेज का प्रोफेसर अपनी सेवाओं को बेचता है, धार्मिक संस्थाएं अपने प्रवचनों को बेचती हैं और लाभ न कमाने वाली संस्था अपने विचारों को बेचती हैं। जो लोग बेचने का कार्य करते हैं वे विभिन्न नामों द्वारा जाने जाते हैं; जैसे– बेचने वाले लोग प्रतिनिधि, बेचने वाले सलाहकार बेचने वाले इंजीनियर तथा एजेंट।

व्यक्तिगत विक्रय का अर्थ यह नहीं है कि ग्राहक वहीं वस्तु जो कि बेचने वाले के पास हो चाहे उस चीज की आवश्यकता उसमें हो या न हो। व्यक्तिगत विक्रय की धारणा इस बात पर भी आधारित है कि इससे ग्राहकों को संतोष मिले जैसा कि विपणन में किया जाता है इसमें उत्पादों को ग्राहकों की आवश्यकता अनुसार देखा जाता है परंतु व्यक्तिगत विक्रय ने यह व्यक्तिगत रूप से किया जाता है। बेचने वाला सही उत्पाद को सही ग्राहक के पास बेचना चाहता है इसलिए विक्रय व्यक्ति ग्राहकों की आवश्यकताओं को पहले पता लगाता है सही

विक्रय की स्थितियां

सपुर्दगी करने वाले: डिलेवरी करने वाला व्यक्ति उत्पाद को सुपुर्दगी करता है जैसे– दूध, अखबार अथवा सब्जियां।
ऑर्डर लेने वाला: ऑर्डर लेने वाला केवल ऑर्डर लेता है। यह व्यक्ति फील्ड के अंदर या बाहर कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक आदमी स्टोर काउंटर के पीछे खड़ा होकर ऑर्डर ले सकता है। फील्ड का आदमी बहुत से ग्राहकों से मिलता है तथा ऑर्डर लेता है।
मिशनरी: इस प्रकार के विक्रय की व्यवस्था तब होती है जब उत्पाद के बनाने, प्रोत्साहित करने अथवा ख्याति विक्रय के लिए आवश्यकता होती है। मिशनरी विक्रय के आदमी संभावित ग्राहकों से संबंध करते हैं और उत्पाद के बारे में जानकारी देते हैं। यह साधारण तौर पर दवाइयों के तौर पर किया जाता है जबकि जहां कंपनी के प्रतिनिधित्व डाक्टरों से मिलकर दवाईयों की जानकारी देते हैं और उनसे अनुरोध करते हैं कि उनकी दवाईयों को मरीजों को लिखा जाए।
तकनीकी: कई ब्रोकर को विक्रय की स्थितियों के लिए तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है यह टेकनिकल विक्रय व्यक्ति कहते हैं तथा इनका प्रयोग अधिकतर इंजीनियरिंग के क्षेत्र में होता है।
सृजनात्मक: यह एक चुनौती भरी विक्रय की स्थिति है ऐसी स्थिति में विक्रय व्यक्ति को संभावित ग्राहकों को पहचानना होता है और उनके साथ सृजनात्मक बातचीत करके अंतिम सेल का रूप तैयार किया जाता है।

उत्पाद को पहचानता है। उत्पाद की विशेषताओं तथा गुणों को बताता है और उसे खरीदने में मद्द् करता है। आधुनिक व्यक्तिगत विक्रय की धारणा के अंतर्गत ग्राहक को सहायता दी जाती है ताकि वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ले, इससे ग्राहकों को संतुष्टि प्राप्त होती है व्यक्तिगत विक्रय के निम्न गुण हैं।

(i) व्यक्तिगत बातचीत: यहां पर दूसरे यंत्र जो विक्रेता तथा क्रेता से सीधी बातचीत नहीं करते। वहां पर व्यक्तिगत बातचीत ही महत्त्वपूर्ण रहती है। अर्थात् क्रेता तथा विक्रेता एक-एक करके आपस में बात करते हैं। इस नजदीकी से दोनों पक्ष एक दूसरे के कार्यों को अच्छी तरह निगाह में रखते हैं।

(ii) दो तरफ संप्रेषण : विपणन संप्रेषण स्वागत भाषण का रूप ले लेती है। अर्थात् जो संदेश भेजने वाले से उठता है वह ग्राहकों तक पहुंचाता है। लेकिन व्यक्तिगत विक्रय में संप्रेषण दो तरफ होती है। बेचने वाला बातचीत करता है तथा उसी समय खरीदने वाला भी बातचीत कर सकता है। यह दो तरफ संप्रेषण ही व्यक्तिगत विक्रय को एक बेहतर राय बनाता है उत्पादन संबंधी तथा कठिन उत्पाद बिक्री की संबंधी स्थिति में।

(iii) बेहतर प्रतिवचन : जब बिक्री व्यक्तिगत होती है तब खरीदने वाला बिलकुल अकेला नहीं रह सकता कि उसे क्या संप्रेक्ष किया गया। यह क्रेताओं में एक सोच उत्पन्न कराती है जिससे उन्हें सुनने तथा ध्यान देने में बाध्यता उत्पन्न होती है।

(iv) रिश्ता: जब क्रेता तथा विक्रेता आमने-सामने आते हैं तब व्यक्तिगत रिश्तों को बढ़ावा देने वाली सभी संभावनाएं सामने आती हैं। बिक्री करने वाले ज्यादातर ग्राहकों व्यक्तिगत संबंध तथा मित्रता बनाते हैं।

व्यक्तिगत बिक्री प्रोत्साहन का सबसे असरदायक तरीका है क्योंकि यह एक से एक के बीच बातचीत करता है यह इसलिए भी बेहतर है क्योंकि संप्रेषण प्रमाणित नहीं होता है तथा उसे हर खरीददार के हिसाब से बदला जा सकता है यह लचीलापन काफी लाभदायक है। दूसरी ओर व्यक्तिगत बिक्री संप्रेषण का एक मंहगा विकल्प है। विक्रय करने वाले लोगों को मुआवजे के रूप में वेतन तथा निश्चित कमीशन दिया जाता है। पहुंच के मामले में व्यक्तिगत विक्रय सही विकल्प नहीं है अगर अधिक मात्रा में व्यक्तियों को संप्रेषित करना हो।

विक्रय प्रक्रिया

विक्रय की स्थिति में क्या प्रक्रियाएं शामिल होती हैं? विक्रय की एक आदर्श प्रतिक्रिया में बहुत से तत्त्व शामिल होते हैं। ये तत्त्व इस बात का बोध दिलाते हैं कि विक्रय करने वाले व्यक्ति के लिए इन क्रियाओं को समझना पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है प्रत्येक स्तर पर चुनौती होती है, उसे पहचाना जाए और उनका सामना करने के लिए उचित तरीका अपनाया जाए।

(i) संभावना: सबसे पहले विक्रय करने वाले व्यक्ति को अपने क्षेत्र के संभावित ग्राहकों को पहचानना जरूरी है। उदाहरण के लिए, एक ठंडा करने वाले यंत्र जिसके अंतर्गत अधिक मात्रा में सामने रखा जाता है, के लिए विक्रय व्यक्ति को यह पता लगाना होता है कि इस प्रकार के यंत्र के कौन से संभावित ग्राहक है। ऐसी दशा में संभावित ग्राहकों की सूची वे डायरेक्ट्री से प्राप्त कर सकते हैं।

(ii) योग्यता: इस दशा में संभावित ग्राहक को सक्षम हो जाते हैं अर्थात् संपूर्ण ग्राहकों में से अच्छे ग्राहक पहचान लिए जाते हैं। कुछ नियम ऐसे बना लेने चाहिए। जिससे ग्राहकों की सूची उनके वित्तीय साधनों को ध्यान में रखकर, स्थान विशेष आवश्यकता तथा पिछला रिकार्ड देख कर बनाई जाए।

(iii) पहले पहुंच: सक्षम संभावित ग्राहकों के अनुबंध करने से पहले कुछ मूलभूत सूचनाएं ग्राहकों

की आवश्यकताओं के बारे में इकट्ठा करना आवश्यक है। जैसे ग्राहकों की क्या आवश्यकता है तथा कौन से लोग खरीदारी में लगे हुए हैं। मूलभूत विचार यह है कि ग्राहकों के बारे में अधिक ज्ञान प्राप्त किया जाए। इस प्रकार की सूचनाएं सहायक साधनों द्वारा अथवा व्यक्तिगत भेंट द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं।

(iv) पहुंच: ऐसी दशा में बेचने वाला व्यक्ति खरीदार से मुलाकात करता है वह बेचने वाले व्यक्ति का संभावित ग्राहक से पहला अनुबंध होता है। इस मुलाकात में यह ध्यान देना चाहिए कि आपस में बातचीत कैसी हो रही है। संभावना का वातावरण है अथवा नहीं और बातचीत को पूरा करने के लिए क्या तरीके अपनाए गए हैं।

(v) भेंट तथा प्रदर्शन: भेंट के अंतर्गत ग्राहकों को उत्पाद के बारे में जानकारी दी जाती है जैसे उसे कैसे प्रयोग किया जाए उसके क्या गुण है तथा उससे क्या-क्या लाभ प्राप्त किया जा सकता है। भेंट कुछ सहायक तत्त्वों द्वारा किया जा सकता है। जैसे– चार्ट, स्लाईड, विडियो टेप अथवा उत्पाद का नमूना। उत्पाद का प्रदर्शन तब किया जाता है जब खरीदने वाला उसके कार्य को देखना चाहता है।

(vi) रख-रखाव संबंधी आपत्ति: भेंट के समय अथवा ऑर्डर देने के लिए कहा जाए। ग्राहकों के दिमाग में कुछ संदेह तथा आपत्ति आ सकती है। विक्रय व्यक्ति का यह कार्य होता है कि वह इस तरह की आपत्तियों को समझे और उन्हें पूरा करने के लिए सकारात्मक प्रयास करे। इस प्रयास में उन्हें अधिक सूचना तथा स्पष्टीकरण देना होता है।

(vii) बंद होना: इस स्थिति में बेचने वाला व्यक्ति आर्डर मांगता है। एक बेचने वाले व्यक्ति के द्वारा बंद करने के सिगनल को समझना जरूरी है। यह सिगनल एक प्रश्न के रूप में भौतिक कार्य के रूप में अथवा टिप्पणी के रूप में हो सकते हैं। बेचने वाले व्यक्ति को खरीदने वाले को विशेष प्रलोभन देना चाहिए ताकि वो सेल को समाप्त करे। ये प्रलोभन छूट अथवा मूल्य के रूप में हो सकता है।

(vii) सुझाव देना: एक बार जब उत्पाद बिक जाता है तो दूसरे व्यक्ति को यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि ग्राहक संतुष्ट है इसलिए यह आवश्यक है इस बात का पता चलता रहे कि जो उत्पाद बेचा गया है वह ठीक कार्य कर रहा है या नहीं और आवश्यकता अनुसार खरीदने वाले को जो सहायता मिलनी चाहिए वह मिल रही है या नहीं।

जन संपर्क

विपणन की धारणा के अंतर्गत मुख्य केंद्र बिंदु ग्राहक होता है। इस धारणा के तहत यह विचार उत्पन्न होता है कि विचार ग्राहकों द्वारा ही किया जाए और विपणन की संपूर्ण प्रक्रिया ग्राहकों की संतुष्टि है लेकिन ग्राहक ही केवल वह जनसमूह नहीं है जिससे व्यापार का संबंध होता है। व्यापार का संबंध बहुत से लोगों से होता है जैसे सप्लायर्स, अंशधारी मध्यस्थ, काम करने वाले समूह तथा सरकार। ये सब समूह व्यापार के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि वह उनके ऊपर निर्भर होते हैं तथा इनके अंदर यह क्षमता होती है कि वह फर्म की योग्यता को उद्देश्य प्राप्त करने के लिए प्रभावित कर सके। उदाहरण के लिए, अगर फर्म को प्रतिस्पर्धा के वातावरण में जीवित रखना है तो उसे मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ती है। उसी तरह फर्म को संभावित अंशधारी से भी संबंध बनाकर रखना पड़ता है जो कि अपनी पूंजी व्यापार में लगाना चाहते हैं। उपभोक्ता कार्य करने वाले समूहों को भी मिलाकर रखना पड़ता है क्योंकि वह इनके विक्रय पर प्रत्यक्ष रूप से लगा सकते हैं अथवा कानून के द्वारा माल को बेचने से रुकवा सकते हैं।

व्यापार के ठीक से चलने के लिए जनता का सहयोग आवश्यक है इसलिए फर्म आजकल जन संपर्क के अभ्यास में लगी हुई है। जन संपर्क का मुख्य उद्देश्य यह है कि फर्म जनता के साथ अच्छा संबंध रखें और कोशिश करें कि वह संबंध बना रहे। इस धारणा के पीछे विपणन का विचार है। इसमें यह प्रयास किया जाता है कि विभिन्न जन समूहों को संतुष्ट रखा जाए ताकि व्यापार के कार्यों में किसी प्रकार की बाधा न आए। सब संबंध अच्छे नहीं होते हैं तो मध्यस्थ सहायता नहीं देते हैं और फर्म के लिए बाज़ार से वित्तीय आवश्यकता पूरी करना कठिन हो जाता है।

फर्म जन संपर्क की आवश्यकताओं को फर्म के अंदर ही एक अलग विभाग बनाकर कर सकती है अथवा किसी बाहरी जनसंपर्क एजेंसी की भी स्थापना की जा सकती है। जनसंपर्क की देख-रेख की प्रतिक्रिया के अंतर्गत जनता के विचार का जानना जरूरी है ताकि फर्म की गुडविल बनी रहे। यह विचार जनता से लगातार बातचीत करके जानी जा सकती है। उदाहरण के लिए, हाल ही में मैक्डोनल्ड एक वाद-विवाद में फंस गई थी यह भैस के मांस का प्रयोग कर उत्पादन को एक विशिष्ट स्वाद के लिए करते थे और उस उत्पाद को शाकाहारी करके बेचते थे। ऐसी स्थिति में कंपनी ने समाज में बहुत से लोगों की अलोचनाओं को सुना जैसे उपभोक्ता पैसा लगाने वाले सरकार आदि। इसका नतीजा यह होता है कि जन संपर्क अभ्यास अच्छा किया जाए ताकि कंपनी की छवि के ऊपर कोई आंच न आ सके तथा उसे नियंत्रण में रखा जा सके।

जन संपर्क उपकरण

जन छवि को बचाने के लिए, जन संपर्क .... बहुत सी विधि तथा उपकरण का प्रयोग करके जनता के विचारों को प्रभावित करते हैं ये निम्न हैं :-

(i) समाचार : समाचार जनता के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण सूचना है। कभी-कभी जन संपर्क विभाग ऐसी चीजों का निर्माण करते हैं जिन्हें समाचार के रूप में प्रदर्शित करना लाभप्रद होता है। इस तरह की सूचनाएं, व्यावसायिक कहानियां अथवा घटनाओं के रूप में आती है और उन व्यवसायों की छवि को जनता की निगाह में बढ़ाती है। उदाहरण के लिए, यह समाचार दियां जा सकता है कि एक कंपनी ''विमेन्स डे पर औरतों को क्या अवसर प्रदान करती हैं।

(ii) भाषण : व्यावसायिक संगठनों के नेताओं के द्वारा दिए गए भाषणों को जनता के दृष्टि में जिसमें अंशधारी, बैंकर तथा चुने हुए ग्राहक समूह तथा कर्मचारी आते हैं, के विचारों से प्रभावित कर सकती है। जन संपर्क पेशेवर ऐसे अवसरों को बनाते हैं जहां पर मैनेजर और व्यवसाय के लीडर एक साथ मिलकर भाषण देते हैं और जनता के विचारों को प्रभावित करते हैं।

(iii) घटनाएं : घटनाएं बहुत बड़ी छवि बनाने का एक तरीका है। कंपनियां प्राय: न्यूज कान्फ्रैंस करती हैं, प्रेसों का भ्रमण करती हैं, बहुउद्देश्य माध्यमों द्वारा प्रदर्शन, ओपनिंग सेरिमनीज तथा फिल्मी हस्तियों से संबंधित घटनाओं का प्रदर्शन करके छवि बढ़ाने की कोशिश करती है।

(iv) लिखा हुआ सामान: बहुत से लिखे हुए सामान तैयार किए जाते हैं जिन्हें उचित जनसमूहों को भेजा जाता है ताकि उनके विचारों को प्रभावित किया जा सके। लिखे हुए सामानों के अंतर्गत वार्षिक रिर्पोट, विशिष्ट, प्रपत्र, बाउचर, लेख और समाचार शामिल होते हैं।

(v) जनता सेवा संबंधी कार्य: कभी-कभी व्यापारिक संस्थाएं खुद को जन सहायक कार्यो से जोड़ लेते हैं वे मिलजुल कर किसी कल्याणकारी कार्य को करते हैं ताकि छवि अनुकुल बनी रहे। उदाहरण के लिए, एक कंपनी अपने को पार्क और शहर के बगीचों को ठीक रखने के लिए जोड़ सकती है ताकि उसकी छवि ''ग्रीन मार्केटर'' के रूप हो सके।

सारांश

बाज़ार

यह ध्यान देने योग्य बात है कि बाज़ार शब्द का केंद्रबिंदु स्थान नहीं है बल्कि यह क्रेताओं एवं विक्रेताओं के मिलने की जगह है। चूंकि औपचारिक तरीके से क्रेता विक्रेता से एक भौतिक स्थान पर मिलते हैं, बाज़ार भाव एक स्थान की तरफ संकेत करता है परंतु ऐसा सही नहीं है। क्रेता और विक्रेता अब बिना मिले व्यापारिक संबंधों को टेलीफोन, डाक द्वारा अथवा इंटरनेट द्वारा बना सकते हैं।

ग्राहक

विपणन के बिना ग्राहक या क्रेता के संभव नहीं है। ग्राहक उन लोगों अथवा संस्थाओं को तब संकेत करते हैं जो अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की संतुष्टि की तलाश करते हैं। अपनी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की संतुष्टि के लिए वे बाज़ार में उत्पादों अथवा सेवाओं को खरीदने जाते हैं।

विपणक या विक्रेता

अगर ग्राहक संतुष्टि का चाहने वाला है तो विपणक उस संतुष्टि को प्रदान करने वाला है। साधारण भाषा में उत्पादों अथवा सेवाओं को प्रदान करने वाला विक्रेता कहलाता है। विक्रेता अथवा विपणक ग्राहकों को भिन्न-भिन्न प्रकार की वस्तुएं प्रदान करता है।

विपणन

विपणन विनिमय को कार्यरूप लेने के लिए निम्न मुख्य तत्त्व हैं : (i) कम से कम दो पक्षों की उपस्थिति-क्रेता तथा विक्रेता अथवा ग्राहक और विपणक अथवा देने वाला एवं लेने वाला। (ii) दोनों पक्षों के पास चीजें होनी चाहिए जो दोनों के लिए मूल्यवान हों। (iii) दोनों पक्ष ऑफर को स्वीकार करने अथवा अस्वीकार करने के लिए स्वतंत्र हो। (iv) दोनों पक्ष एक दूसरे से व्यवहार करने को इच्छुक हों। (v) दोनों पक्ष संप्रेषण एवं सुपुर्दगी के सक्षम हों। प्रबंध की दृष्टि से विपणन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत विपणक अपनी वस्तुओं अथवा सेवाओं को ग्राहकों की इच्छाओं के अनुरूप बनाता है ताकि उन्हें लाभ प्राप्ति के लिए संतुष्ट कर सके।

व्यापारिक धारणा

विपणन की क्रियाएं बहुत से दर्शनों द्वारा मार्गदर्शित होती हैं; जैसे– उत्पादन धारणा, उत्पाद धारणा, विक्रय धारणा तथा विपणक धारणा।

उत्पादन धारणा

कुछ लोगों की यह धारणा है कि संभावित विनिमय तभी संभव हो सकता है जब उत्पाद अधिक खर्चीले न हों और बहुतायत में उपलब्ध हों।

उत्पाद धारणा

उत्पाद धारणा यह बताती है कि व्यापारिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि ऐसे उत्पादों को बनाया जाए जो उच्च गुण वाले हों।

विक्रय धारणा

कुछ फर्म अपने प्रयासों को विक्रय धारणा के अनुसार प्रयोग करती हैं। उसके अंतर्गत यह देखा गया है कि अगर कोई ग्राहक अकेला है तब या तो वह कुछ नहीं खरीदेगा अथवा फर्म के उत्पाद को अधिक नहीं खरीदेगा।

विपणन धारणा

विपणन धारणा के निम्न मुख्य स्तंभ हैं : (i) बाज़ार अथवा ग्राहकों की पहचान जिन्हें विपणन के प्रयासों के लक्ष्य के रूप में चुना जाता है। (ii) लक्ष्य बाज़ार में ग्राहकों की आवश्यकताओं एवं इच्छाओं को समझना। (iii) लक्ष्य बाज़ार की आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए उत्पादों अथवा सेवाओं का विकास करना। (iv) लक्ष्य बाज़ार की आवश्यकताओं को प्रतियोगियों की तुलना में अच्छी तरह संतुष्ट करना। (v) उपर्युक्त सभी काम लाभ के लिए करना।

सामाजिक विपणन धारणा

आवश्यकताओं की संतुष्टि की प्रक्रिया में विपणन धारणा के अंतर्गत सामाजिक उद्देश्य भी सम्मिलित होते हैं अर्थात् फर्मों को विपणन कार्य इस प्रकार करना चाहिए कि सामाजिक सुरक्षा में वृद्धि हो।

विपणन प्रबंध

विपणन प्रबंध विपणन को जीवन का सामूहिक रास्ता बताता है तथा व्यावसायिक संगठनों एवं क्रियाओं के दर्शन को बताता है। इसका प्रयोग इसलिए किया जाता है कि इससे ग्राहकों को विभिन्न उपयोग की समस्याओं को सुलझाने में फर्म के उद्देश्यो के अनुकूल मदद मिलती है।

विपणन एवं विक्रय

साधारण भाषा में विपणन एवं विक्रय को लोग एक ही रूप में समझते हैं। विक्रय और विपणन अपने उद्देश्यों में अंतर रखते हैं तथा उनकी प्राप्ति के माध्यमं में भी अंतर होते हैं। अगर कोई यह जानना चाहता है कि कोई भी बाज़ार में विक्रेता या विपणक है तो उसके उद्देश्य तथा उसे प्राप्त करने के तरीकों को जानना आवश्यक होगा।

विपणन के कार्य

विपणन के अंतर्गत फर्म अपने लाभ के उद्देश्य की प्राप्ति ग्राहकों के साथ संभावित विनिमय के यथार्थीकरण द्वारा करती हैं।

(i) *विपणन शोध:* विपणन शोध का तात्पर्य है शोध प्रक्रियाओं का प्रयोग विपणन समस्याओं को दूर करने से है। प्रथम तथा सबसे आगे विपणक को ग्राहकों की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पहचानना होगा।

(ii) *उत्पाद नियोजन:* प्रत्येक फर्म कुछ न कुछ चीज बाज़ार में देती है। एक फर्म ग्राहक को उत्पाद अथवा सेवाएं उनकी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए प्रदान करती हैं परंतु महत्त्वपूर्ण मुद्दा यह है कि वे बाज़ार में क्या वस्तुएं दे।

(iii) *खरीदना और इकट्ठा करना:* फर्मों के देखने का एक तरीका यह है कि ये चीजों को नया रूप देने की एक प्रणाली है। यह वातावरण से निवेश को प्राप्त करती है और उन्हें क्रियान्वित करती और उन्हें फिर से अंतिम उत्पाद के रूप में वातावरण में भेज देती है।

(iv) *पैकेजिंग:* भौतिक उत्पाद जिसे प्राय: हम क्रय करते हैं एक बंधे हुए रूप में आते हैं। साबुन कागज के डिब्बों अथवा प्लास्टिक रेपर में आते हैं, विस्कुट कार्टन अथवा सादे कागज की पैकिंग में आते हैं, रेफ्रीजरेटर अथवा टी.वी. लकड़ी एवं बड़े कार्टन में, महंगे इत्र और शरबत शीशे के बॉक्स तथा रंगबिरंगी बोतलों में आते हैं।

(v) *स्टोरेज तथा गोदाम:* एक बार जब माल का उत्पादन हो जाता है तो उनका उपयोग एक साथ नहीं किया जाता। उपभोग तथा उत्पादन में निश्चित रूप से समय का अंतर होता है। इसलिए विपणक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे ऐसे प्रयासों का प्रयोग करे जिससे उत्पादों को होने वाले खतरों से बचाया जा सके।

(vi) *यातायात:* यह एक यथार्थ सत्य है कि मालों का उपयोग निश्चित रूप से वहीं नहीं किया जाता जहां वे उत्पादित किए जाते हैं। मालों का उत्पादन कारखानों में होता है परंतु उनका उपभोग बाज़ारों में किया जाता है जो उत्पादन के स्थान से बहुत ही दूर पाए जाते हैं इसलिए यातायात विपणक का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

(vii) *प्रोत्साहन एवं विक्रय:* एक बार जब माल का उत्पादन हो जाता है तो विपणक उसे संभावित ग्राहकों के पास खरीदने के लिए पहुंचाता है। इससे दो मुख्य क्रियाएं करने की आवश्यकता होती है। ये कार्य प्रोत्साहन एवं विक्रय हैं। प्रोत्साहन के अंतर्गत वे सभी क्रियाएं आती हैं जिनके द्वारा उत्पाद के भविष्य के बारे में सूचनाएं दी जाती हैं जैसे उसकी गुणवत्ता उपलब्धता तथा मूल्य आदि।

विपणन मिश्र

विपणन मिश्र का तात्पर्य उन अर्थों, यंत्रों अथवा बदलने योग्य तत्वों से है जिसे विपणक आपस में मिलाता है ताकि एक विशेष बाजार में उन पर बातचीत कर सके। कोटलर ने विपणन मिश्र को परिभाषित करते हुए कहा है कि "यह विपणन यंत्रों का एक समूह है जिसे फर्म लक्ष्य बाज़ार में विपणन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग करते हैं।" मैकार्थी ने विपणन मिश्र के तत्त्व पुन: चार भागों में विभाजित किया है जो चार के नाम से जाने जाते हैं। ये चार प्रेगुक्ट, मूल्य, स्थान और प्रगति हैं। ये विक्रेता के यंत्र हैं जिन्हें एकत्र करके एक ऑफर तैयार किया जाता है।

उत्पाद

उत्पाद का तात्पर्य है कि बेचने वाला क्या बेचता है और खरीदने वाला क्या खरीदता है। उत्पाद को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। "कोई भी ऐसी चीज उत्पाद की श्रेणी में आती है जिसे लोगों की आवश्यकता या इच्छा की संतुष्टि के लिए बाज़ार में लाया जाए" इसे ध्यान प्रगति, प्रयोग और उपयोग के लिए बाज़ार में लाया जाता है। एक विपणक उत्पाद स्तरों के धारणा का पालन किसी ऑफर को विकसित करने के लिए कर सकता है। स्तर विभिन्न मूल्य की तहों की तव संकेत करते हैं जिन्हें उत्पाद में जोड़ा जा सकता है ताकि अधिक संतुष्टि प्रदान की जा सके तथा प्रतिस्पर्धियों से आगे भी हो सके। पहली सतह पर मूल्य लाभ रहता है। दूसरे उत्पाद का स्तर आशा किया हुआ उत्पाद होता है। उत्पाद के तीसरे स्तर को वृद्धि किया हुआ उत्पाद स्तर कहा जाता है।

उत्पाद मिश्र

जब कोई फर्म तरह-तरह के उत्पादों को बाज़ार में धीरे-धीरे लाती है तो उसके द्वारा दी जाने वाली उत्पाद काफी हो जाती है अर्थात् फर्म एक बहुमिश्रित उत्पाद की कंपनी हो जाती है। एक विशेष विपणक जिन सभी उत्पादों को बाज़ार में लाता है। उसे उत्पाद मिश्र श्रम अथवा उत्पाद का वर्गीकरण कहते हैं। उत्पाद की प्रवृत्ति एवं विशेषता, जो मिश्रण में रहती है, को उत्पाद की लंबाई, चौड़ाई, गहराई और एकरूपता के रूप में जाना जाता है।

ब्रैंडिंग

ऐसी प्रक्रिया जो उत्पाद का अलग पहचान बनाती है उसे बैंडिंग कहते हैं- और इस प्रक्रिया का परिभाषा ब्रैंड के सृजन से है। आजकल ब्रैंडिंग के पक्ष में काफी झुकाव है। ''ब्रैंडिंग को इस प्रकार परिभाषित कर सकते है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे नाम शर्त, चिह्न, एक ही डिजाइन अथवा मिश्रित डिजाइन के रूप में जाना जाता है जिससे एक उत्पाद की पहचान बनती है। अब ब्रैडिंग का प्रयोग केवल विक्रेता अथवा बनाने वाले के लिए ही नहीं प्रयोग किया जाता बल्कि इसे प्रतियोगियों से अलग रखने में प्रयोग किया जाता है। एक ब्रांड द्वारा हमें क्रेता की अपेक्षाओं का ज्ञान होता है और उनके लगातार संतुष्टि की शर्तों का बोध होता है।

ब्रैंड नाम की व्यूह रचना

ब्रैडिंग की निम्न व्यूह रचना है : व्यक्तिगत ब्रैंडिंग, संयुक्त पारिश्रमिक ब्रैडिंग, पृथक् पारिवारिक ब्रैंड नाम, कंपनी नाम जिसके साथ व्यक्तिगत नाम जुड़ा हो।

ट्रेड मार्क या व्यापार चिह्न

व्यापार चिह्न का तात्पर्य ऐसे व्यापार के चिह्न से है जिसे एक पहचाना हुआ अस्तित्व करता है। यह प्राय: एक निशान, मार्क, चिह्न शब्द अथवा शब्दों द्वारा जाना जाता है। एक व्यापार के चिह्न को प्रयोग के लिए अलग-अलग और आकर्षक होना चाहिए। इसे कहने में सरलता होनी चाहिए, इसे छोटा एवं सीधा होना चाहिए ताकि इसे आसानी से याद रखा जा सके।

पैकेजिंग

बहुत ही मूल स्तर पर पैकेजिंग को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है। ''यह एक प्रकार की क्रियाओं का समूह है जो उत्पाद के लिए एक उचित कंटेनर के डिजाइन तथा उत्पादन से संबंध रखना हो कंटेनर, जिसमें उत्पाद को भेजा जाता है को पैकेज कहते हैं। पैकेजिंग के निम्न मुख्य कार्य हैं : सुरक्षा, पहचान, सुविधा, प्रोत्साहन, नवीनीकरण।

लैबलिंग

उत्पाद के पैकेट पर लेबल लगाया जाता है ताकि उनकी पहचान हो सके तथा ग्राहकों को कुछ सूचना मिल सके। उत्पाद के लैबल साधारण टैग फार्म में आ सकते हैं जैसा कि स्थानीय उत्पाद जैसे दालें, चावल अथवा नमकीन फुटकर व्यापारियों द्वारा पैक किए जाते हैं। कभी-कभी उत्पादों पर बड़ा लेबल लगाया जाता है जिससे अधिक सूचनाओं को दिखाया जाता है। लेबल बहुत से कार्य करते हैं। एक लैबल उत्पाद अथवा ब्रैंड को पहचानता है एक लेबिल अपने मूल स्तर पर उन सूचनाओं का संग्रह है जिसे ग्राहकों को पहुचाना होता है।

मूल्य

विपणन विनिमय में मूल्य एक राशि है जिसे एक क्रेता विक्रेता को सेवाओं के प्रदान करने के बदले में देता है यह विपणन मिश्र का एक तत्त्व है जिसे विक्रेता अन्य बदलने योग्य चीजों में मिलाते हैं ताकि ग्राहकों के साथ ससित लेन-देन प्राप्त हो सके।

यह किसी उत्पाद अथवा सेवा की कीमत मौद्रिक रूप में है। यह मौद्रिक रूप में किया गया बलिदान है जिसे एक क्रेता किसी वस्तु को खरीदने पर करता है। इस संबंध में जिन तत्त्वों पर ध्यान देना चाहिए वे हैं कंपनी के उद्देश्य, प्रतिस्पर्धा तथा ग्राहकों की मांग।

उद्देश्य

मूल्यों का उद्देश्य कंपनी के उद्देश्यों पर आधारित होना चाहिए। स्पष्टता के अभाव में मूल्यों में अस्थिरता आने का डर रहता है।

लागत

लागत के आधार पर मूल्यों के निर्धारण का निर्णय किया जाता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि मूल्य सभी लागत की वसूली कर सकें तथा किए हुए प्रयास एवं के लिए उचित लाभ प्रदान कर सकें।

प्रतिस्पर्धा

फर्म को किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा का समाप्त नहीं करना पड़ता है तो उसे मूल्य निर्धारण में पूर्ण स्वतंत्रता होती है। अर्थात् ऐसी परिस्थिति में मूल्य बनाने वाली हो जाती है।

ग्राहक की मांग

अंत में ग्राहकों की मांग को ध्यान में रखना चाहिए। मूल्यों में लचीलापन इसका महत्त्वपूर्ण अंग है। यह उत्पाद के मूल्यों में होने वाले परिवर्तन कर मांग के प्रति उत्तरदायित्व का बोध कराता है।

मूल्य निर्धारण की व्यूह रचना

मुख्य रूप से दो प्रकार की मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया होती है। मूल्यों को निचोड़ना तथा मूल्यों के तह तक जाना मूल्यों के निचोड़ने का तात्पर्य प्रारंभ में अधिक मूल्य निर्धारित करना ताकि मांग की 'क्रीम' को निचोड़ा जा सके। मूल्यों के तह तक जाने का तात्पर्य है प्रारंभ में कम मूल्य निर्धारित करना ताकि बाज़ार का जितना संभव हो उतना भाग कब्जे में किया जा सके। बाज़ार के तह में जाने वाला आक्रामक तरीके से उत्पाद को बाज़ार में कम मूल्य पर लाता है और बाज़ार के अधिक भाग पर कब्जा कर लेता है ताकि बाज़ार के छोटे से हिस्से पर प्रतिद्वंदवी कब्जा कर सकें।

स्थान

स्थान विपणन मिश्रण के संबंध में उन सभी दिशाओं के समूहों को बताता है जिन्हें लिया जाता है ताकि उत्पाद को ग्राहकों के कम करने के लिए एवं क्रमभोग करने के लिए उपलब्ध करवाया जा सके। अगर उत्पाद को ग्राहकों को सही स्थान, सही मात्रा तथा सही समय पर उपलब्ध नहीं करवाया जाए तो वे उसे खरीदने के योग्य नहीं रहे हैं।

वितरण श्रेणी

श्रेणियां काफी कार्यों को करती हैं। प्रथम, वे वितरण संबंधी सूचनाओं का साधन है। सूचनाओं को एकत्र करते हैं दूसरी श्रेणी में समझाने वाले तरीकों का काम होता है। तीसरी श्रेणी में वे उत्पादक के पास जिन वस्तुओं की

मांग होती है उनका आर्डर भेजते हैं। चौथे, वे वितरण कार्य में होने वाले जोखिम को उठाते हैं। पांचवें, वे सामानों के इकट्ठा करने तथा उन्हें ग्राहकों तक जाने में सहायक होते हैं। छठे, वे समझौते को पूरा करने में महत्त्वपूर्ण योगदान देते हैं और उत्पादों के स्वामित्व के हस्तांतरण में सहायक होते हैं।

श्रेणी स्तर

जीटो स्तर एक स्तरीय श्रेणी दो स्तरीय तथा तीन स्तरीय श्रेणी।

श्रेणी के चुनाव को निर्धारित करने वाले तत्व

(i) बाज़ार संबंधी तत्त्व: बाज़ार का स्वामित्व अर्थात बाज़ार औद्योगिक उत्पाद के लिए है अथवा ग्राहकों के उत्पाद को मिला है।

(ii) उत्पाद संबंधी तत्त्व: श्रेणी के प्रकार को उत्पाद की प्रकृति एवं प्रकार को प्रभावित करते हैं। प्रथम प्रति इकाई उत्पाद की कीमत उदाहरण के लिए सोने के आभूषण अथवा औद्योगिक यंत्रों की प्रति इकाई कीमत अधिक होती है।

(iii) कंपनी संबंधी तत्त्व: श्रेणी के चुनाव में कंपनी की विशेषताएं भी प्रभावित करती हैं। प्रत्येक कंपनी अपने वितरण कार्य को निर्वचित रखना चाहती हैं परंतु वे ऐसा कर सकती हैं?

भौतिक वितरण

विपणन मिश्र के स्थान तत्व में भौतिक वितरण कठिन है। विपणनक को वस्तुओं के भौतिक चाल के संबंध में इस प्रकार निर्णय लेना चाहिए ताकि वितरण के उद्देश्यों की प्राप्ति अधिक सक्षम तरीके से हो सके।
भौतिक वितरण में वस्तुओं के उत्पादन स्थान से उपयोग स्थान तक उनके भौतिक रख-रखाव एवं चाल की प्रक्रिया सम्मिलित रहती है। भौतिक वितरण का मुख्य विचार यह है कि वस्तुओं को सही स्थान पर और सही समय पर उपलब्ध करवाना समय एवं स्थान का उपयोगिता का सृजन होना।

भौतिक वितरण में निर्णय

सामानों के भौतिक वितरण में निम्न चार क्रियाएं सम्मिलित रहती हैं :

(i) यातायात: यातायात का संबंध सामानों की चाल से है इसमें वस्तुओं को गंतव्य स्थान पर भेजने से मूल्यों में वृद्धि होती है।

(ii) सामान सूची: वितरण उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक है कि किन वस्तुओं का कितना स्टाक रखा जाए सामग्री सूची को रखना आवश्यक है क्योंकि इनसे उत्पादों की उपलब्धता मांग आने पर सुनिश्चित की जाती है।

(iii) गोदाम: कारखानों में उत्पादन लगातार होता रहता है और प्राय: जो भी उत्पादन किया जाता है वह तुरंत नहीं बेचा जा सकता। इस कारण प्रत्येक कंपनी को अपने अंतिम उत्पाद को इकट्ठा करना तब तक आवश्यक होता है। जब तक वे बाज़ार में बेच नहीं दिए जाते।

(iv) आर्डर की प्रक्रिया: वितरण सेवा का दूसरा निर्णय यह है कि किस तरीके को प्रयोग करके ग्राहकों के आर्डर की प्रक्रिया पूरी की जा सकती है। ग्राहकों के आर्डर पर किस तरह कार्य किया जाता है, इस सेवा स्तर का निर्णय होता है।

प्रोत्साहन

एक बार जब उत्पाद का उत्पादन हो जाता है, ठीक मूल्य निर्धारित कर दिया जाता है, और वितरण हो जाता है तो दूसरा काम एक निर्धारक को करना होता है कि वह संभावित ग्राहकों को उत्पाद के बारे में सूचित करे और उन्हें इसे खरीदने के लिए समझाएं। विपणन मिश्र के प्रोत्साहन तत्त्व उन क्रियाओं से संबंध रखते हैं जिन्हें ग्राहकों एवं वितरण श्रेणी भाग लेने वाले तत्त्वों के बीच संप्रेषित किया जाता है ताकि विक्रय लक्ष्य प्राप्त हो सके। प्रोत्साहन संबंधी संप्रेषण का उद्देश्य यह है कि वास्तविक एवं संभावित ग्राहकों की वस्तुओं के गुणों के संबंध में सूचना दिया जाए ताकि उन्हें इनका लगातार आश्रय मिलता रहे अथवा ग्राहक इसे स्वयं प्रयोग करें जब उत्पाद नया हो। संप्रेषण के निम्न बहुत से यंत्र है। जिनमें से कोई भी चुनाव किया जा सकता है : (i) विज्ञापन (ii) विक्रय प्रोत्साहन (iii) व्यक्तिगत विक्रय (iv) प्रचार। उत्पाद को उछाला जाता है। इसके लिए विज्ञापन के अंतर्गत प्रत्यक्ष रूप से संभावित ग्राहकों को अनुरोध माध्यम से किया जाता है। इस कारण इससे बाजार में पुलकेश्वर का निर्माण होता है। विज्ञापन के निम्न मुख्य गुण हैं : पहुंच, चुनाव, वैधानिकता, स्पष्टता तथा मितव्ययता।

माध्यम का चुनाव

माध्यम के चुनाव में तीन बातें महत्त्वपूर्ण हैं : पहला माध्यम की पहुंच, दूसरी तीव्रता और अंतिम एक प्रदर्शन का गुणात्मक मूल्य। माध्यम के निम्न प्रकार हैं जिनमें से किसी एक का चुनाव किया जा सकता है :

(i) *अखबार:* विज्ञापन करने वालों के लिए अखबार एक महत्त्वपूर्ण छपाई माध्यम का है इसका लाभ यह है कि इसके द्वारा बहुत से लोगों से संपर्क किया जा सकता है अथवा इसकी पहुंच काफी अधिक है।

(ii) *मैगजीन:* मैगजीन एक विशिष्ट समुदाय द्वारा पढ़ी जाती है इसमे दिए गए विज्ञापन लंबी अवधि के लिए होते हैं, विज्ञान का गुर अच्छा होता है। और कुछ मैगजीन कंपनी प्रसिद्धि के कारण विज्ञापन के संदेश में वृद्धि कर देती है।

(iii) *टेलीविजन:* सबसे मुख्य लाभ टेलीविजन का यह है कि यह देखने और सुनने वाला दोनों है और इसमें दृष्टि, आवाज और गति का मिश्रण रहता है।

(iv) *रेडियो:* रेडियो में विज्ञापन से संदेश दूर-दराज तक पहुंच सकते हैं।

(v) *आउटडोर:* कम संगठित ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए खुले स्थान पर बैनर होर्डिंग बिल बोर्ड आदि रखती है।

(vi) *इंटरनेट:* इसके द्वारा विज्ञापन उच्च स्तरीय लोगों के पास ही पहुंच सकता है। इसके अंदर कम स्थान का प्रयोग किया जाता है।

विक्रय प्रोत्साहन

विक्रय प्रोत्साहन अल्प मात्रा में प्रयोग किए जाने वाले प्रायोजन अथवा अन्य प्रोत्साहन संबंधी क्रियाओं से है जिसके द्वारा रूचि, क्रय अथवा प्रयोग में प्रेरणा मिलती है। विक्रय प्रोत्साहन का विशिष्ट गुण यह है कि ऐसा करने से वे लक्षित दर्शकगण का मजबूत तथा शीघ्र प्रत्युत्तर प्राप्त हो जाता है। वे एक तरह से अविलंबित अथवा आवश्यकता की भावना दर्शाती है ताकि प्रत्युत्तर प्राप्त हो सके। विपणक द्वारा प्रयोग में आने वाले कुछ विक्रय प्रोत्साहन तरीके निम्न हैं :

(i) *छूट अथवा रिबेट:* मूल्य प्रोत्साहन के अंतर्गत उत्पाद के मूल्यों में थोड़ी बहुत परिवर्तन करना पड़ता है ताकि खरीदने वालों के लिए उत्पाद आकर्षित हो सके और वे उन्हें जरूरत के आधार पर क्रय कर सकें।

(ii) *डिस्काउंट:* यह भी एक प्रकार की मूल्य प्रोत्साहन का तरीका है जिसके अंतर्गत लिस्ट मूल्य अथवा निर्धारित मूल्य में कुछ कमी कर दी जाती है।

(iii) *रिफंड:* इस स्थिति में विक्रेता खरीद पर प्रमाण पाकर कुछ मूल्य वापस कर देता है।
(iv) *उपहार अथवा प्रिमियम:* इसके अंतर्गत ग्राहकों को एक उपहार उत्पाद के साथ दिया जाता है जैसे एक चम्मच चाय के पैकेट के साथ अथवा एक छोटा खिलौना इच्चों के साबुन के साथ।
(v) *मात्रा संबंधी डील:* कभी-कभी विक्रेता कोई विशेष पैकेज बनाते हैं जिसके द्वारा क्रेता को अतिरिक्त मात्र कम मूल्य पर अथवा बिना मूल्य के मिलता है।
(vi) *सैंपलिंग:* इसके अंतर्गत ग्राहकों को उत्पाद मुफ्त में दिए जाते हैं।
(vii) *प्रतियोगिता:* उपभोक्ताओं की प्रतियोगिता विषय प्रोत्साहन के लिए साधारण रूप से की जाती है।
(viii) *डाक द्वारा मुक्त प्रिमियम:* कभी ग्राहकों को यह कहा जाता है कि वे विपणक से संपर्क स्थापित करके क्रय का प्रमाण देकर उठा सकते हैं, उदाहरण के लिए, एक रैपर अथवा अधिक रैपरों को भेजना आदि।
(ix) *पैकेज प्रिमियम:* कभी कभी विपणक पैकेज में भेंट का भाग रख देते हैं।
(x) *कंटेनर प्रीमियम :* विक्रेता कभी-कभी विशेष प्रकार के कंटेनर में वस्तुओं को पैक कर भेजता है ताकि इन विशेष कंटेनरों को उपभोक्ताओं का प्रयोग कर सकें।

व्यापार प्रोत्साहन

ये प्रोत्साहन के तरीके माध्यम के उन सदस्यों जैसे वितरक, थोक एवं फुटकर व्यापारी पर केंद्रित होते हैं जो विक्रेता के उत्पाद को अंतिम ग्राहक तक पहुंचाने में महत्त्वपूर्ण भाग रखते हैं। व्यापार प्रोत्साहन का उद्देश्य माध्यम में 'पुग' को बनाना है ताकि उत्पाद तेजी से और चाहे हुए मात्रा में पा सकें। विपणक बहुत से प्रोत्साहन के यंत्रों का प्रयोग कर सकते हैं। जिससे मध्यस्थों की उपलब्धता प्रभावित हो सकें। जैसे प्रिमियम तथा प्रतियोगिता विशेष छूट, छूट, मुफ्त मात्रा।

व्यक्तिगत विक्रय

इसके अंतर्गत विक्रेता तथा संभावित क्रेता के बीच आमने-सामने बात होती है ताकि विक्रय किया जा सके। विक्रय का कार्य उतना व्यापक है कि सभी लोग कुछ न कुछ बेच लेते हैं। व्यक्तिगत विक्रय की मुख्य विशेषताएं निम्न हैं : (i) व्यक्तिगत बातचीत (ii) दो तरफा संप्रेषण (iii) अच्छा प्रत्युत्तर (iv) संबंध।

विक्रय प्रक्रिया

विक्रय की स्थिति में क्या प्रक्रिया होती है? एक आदर्श भूत विक्रय प्रक्रिया में बहुत से तत्त्व सम्मिलित होते हैं। उदाहरण के लिए, दूरदर्शिता, विशेषता, पूर्व पहुंच, प्रदर्शन तथा दिखावा, रख-रखाव के उद्देश्य, समाप्ति एवं फिर से देखना।

जन संपर्क

व्यवसाय के ठीक से चलने के लिए जन सहयोग नितांत आवश्यक है। इस प्रकार फर्म एक अभ्यास कर रही हैं जिसे जन-संपर्क कहा जाता है जन-संपर्क का ध्येय है कि जानता के साथ सफल संबंध बनाना और उसे बनाए रखना इस धारणा के पीछे जो विचार है वह विपणन की ही तरह है। यहां उद्देश्य यह है कि विभिन्न जन समूहों को संतुष्ट रखना ताकि व्यवसाय के काम में किसी तरह की बाधा न आ सके।

जन संपर्क यंत्र

संगठन के रूप को जनता की दृष्टि में ठीक रखने के लिए जन संपर्क पेशेवर विभिन्न तरीकों एवं यंत्रों का प्रयोग करते हैं ताकि जनता की विचारधारा को प्रकाशित कर सकें। इसके अंतर्गत समाचार भाषण, घटनाएं लिखी हुई सामग्री तथा जन सहायक क्रियाएं आती हैं।

लघु स्तरीय प्रश्न

1. विपणन प्रबंध को आधुनिक रूप में परिभाषित कीजिए।
2. विपणन मिश्रण से आप क्या समझते हैं?
3. विपणन एवं विक्रय में अंतर बताइए।
4. विपणन शोध क्या है?
5. विपणन में मूल्य संबंधी निर्णय क्यों महत्त्वपूर्ण है।
6. विपणन की प्रक्रिया बाज़ार में व्यवस्था के लिए स्थान कैसे बनाती है?
7. विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों को बताइए।
8. व्यक्तिगत विक्रय के लक्षण का वर्णन कीजिए।
9. पैकेजिंग के कार्य का वर्णन कीजिए।
10. ब्रांडिंग के विभिन्न व्यूह रचनाएं कौन-सी है?

उच्चस्तरीय प्रश्न

1. विपणन प्रक्रिया में किए जाने वाले विभिन्न कार्यों की व्यवस्था कीजिए।
2. विपणन प्रबंध को परिभाषित कीजिए- विपणन प्रबंध के मुख्य उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
3. विपणन मिश्र क्या है? इसके विभिन्न तत्त्वों का विवरण दीजिए।
4. विज्ञापन को परिभाषित कीजिए। इसके महत्त्वपूर्ण लक्षण बताइए।
5. विभिन्न प्रकार के विक्रय प्रोत्साहन विधियों का वर्णन कीजिए। जिसे एक व्यावसायिक समूह अपने उत्पादों की बिक्री के लिए प्रयोग कर सकता है।
6. एक विशेष माध्यम के चुनाव में आप किन बातों को ध्यान में रखेंगे।
7. मूल्य का निर्धारण करते समय किन महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को ध्यान में रखना चाहिए।
8. विज्ञापन के विभिन्न माध्यमों का वर्णन कीजिए।
9. क्या आलोचकों का विज्ञापन के प्रति आपत्ति करना न्यायसंगत है? विवेचन कीजिए।
10. जन संपर्क में सुधार लाने के लिए कौन-सी विधि अथवा उपकरण का प्रयोग किया जाता है?

उपभोक्ता संरक्षण

4
अध्याय

अधिगम उद्देश्य

इस अध्याय के अध्ययन के पश्चात् आप :

- उपभोक्ता संरक्षण के औचित्य को समझा सकेंगे;
- उपभोक्ता संरक्षण के महत्व का वर्णन कर सकेंगे;
- उपभोक्ता के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों पर विचार कर सकेंगे;
- उपभोक्ता संरक्षण के माध्यमों की जांच कर सकेंगे; तथा
- उपभोक्ता संगठनों की भूमिका की प्रशंसा कर सकेंगे।

1987 में रेपसीड ऑयल में पकाए खाने को खाने के पश्चात् 1600 से अधिक लोग गंभीर रूप से बीमार पड़ गए तथा 18 की मृत्यु हो गई। इस तेल का विक्रय कोलकाता में बहाला क्षेत्र की राशन की दुकान ने किया था। इनमें से 592 लोगों को अंत में राज्य सरकार ने मिलावटी तेल से पीड़ित के रूप में पंजीकृत कर लिया। इन लोगों ने ऐसी बीमारी की शिकायत की जिससे निश्चित रूप से उन्हें शारीरिक एवं मानसिक रूप से प्रभावित किया। उन्हें आय की हानि, शारीरिक विकलांगता आदि के रूप में परिणामों को भुगतना पड़ा।

इस त्रासदी के लिए ट्रायर इनक्रोसी फॉसफेट (TCP) नाम का जहर उत्तरदायी था। इसे प्लास्टिक उद्योग में, सांचे में ढालने योग्य बनाने के लिए उपयोग में लाया जाता है। TCP को तेल में मिश्रित किया गया जिससे कि वह सरसों के तेल की सुगंधी देने लगे। कोलकाता में घटित इस प्रकार की यह दूसरी दुर्घटना थी। 1973 में दम दम के एक उपनगर में ठीक इसी प्रकार के मिलावट के घोटाले की घटना हुई थी।

वर्तमान मामले में कंज्यूमर यूनिटी एंड ट्रस्ट सोसाइटी (CUTS) ने राष्ट्रीय आयोग के समक्ष उपभोक्ता संरक्षण कानून के अंतर्गत Class Action याचिका दायर की। यह याचिका पश्चिम बंगाल खाद्य एवं वितरण विभाग एवं स्वास्थ्य विभाग तथा कोलकाता नगर निगम के विरुद्ध दायर की गई।

इस कांड में एक बात सामने आई कि इतने गंभीर मामले में भी अफसरशाही किस प्रकार से हेरा-फेरी करती है। कोलकाता नगर निगम के स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी को PFA कानून के अंतर्गत नोटिस दिया गया। निगम ने अपने शपथ पत्र में कहा कि इसने इसका निरीक्षण इसलिए नहीं किया क्योंकि राशन की दुकान खाद्य एवं वितरण विभाग के अधिकार क्षेत्र में आती है। कुल पंजीकृत 592 में से 250 के लगभग जीवन भर के लिए अपंग हो गए और राशन की दुकान के मालिकों को केवल आजीवन कारावास मिला। भारत में उपभोक्ता के शोषण एवं उपभोक्ता संरक्षण तथा इनसे जुड़ी एजेंसियों की यह स्थिति है।

पिछले पृष्ठ पर भारत में वस्तु एवं सेवाओं के उपभोक्ताओं के शोषण की स्थिति का वर्णन है। क्या हमें इन्हें जारी रहने देना चाहिए? क्या कोई समाधान है जो इन गलत प्रथाओं पर रोक लगाई जा सकें? भारतीय उपभोक्ता को संरक्षण की क्या आवश्यकता है ? इस अध्याय में इनमें से कुछ प्रश्नों का उत्तर मिलेगा। यह अध्याय उपभोक्ता संरक्षण के विवेक एवं महत्त्व से प्रारंभ होता है। इसके पश्चात् उपभोक्ता के अधिकारों एवं दायित्वों को समझाया गया है। इस अध्याय में उपभोक्ता संरक्षण के तरीकों का वर्णन किया गया है विशेष रूप से उपभोक्ता संगठनों (NGOs) की भूमिका को समझाया गया है।

उपभोक्ता संरक्षण का औचित्य

आर्थिक नियोजन का उद्‌देश्य जहां तक संभव हो, संसाधनों का इस प्रकार से बंटवारा करना है कि उपभोक्ता की आवश्यकताओं की अधिक से अधिक संतुष्टि हो, क्योंकि उपभोक्ता की प्रभुसत्ता को माना जाता है। इसके साथ-साथ इस विचार के समर्थन में, नैतिकता एवं राजनैतिक शक्ति भी है कि उपभोक्ताओं को यह निर्णय लेने का अधिकार है कि वे साधनों का अपने लाभ के लिएं किस प्रकार से बंटवारा करें।

जब हम उपभोक्ता के अधिकारों की बात करते हैं तो इसमें साधारण तथा सभी प्रकार के अधिकार सम्मिलित किए जाते हैं; जैसे– मानवीय अधिकार, सामाजिक अधिकार, राजनैतिक अधिकार, एवं लोगों के आम आर्थिक अधिकार। समाज के गरीब से गरीब एवं अमीर सभी लोग उपभोक्ता हैं। इनमें से सबसे अधिक गरीबों को ही सुरक्षा की आवश्यकता है और दुर्भाग्य से उन्हें ही वंचित रखा जाता है, जिसमें उनकी आधारभूत आवश्यकताएं भी सम्मिलित हैं।

देश में विकास की प्रक्रिया के साथ उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के कारण उपभोक्ता ने समाज एवं शासन में अपने बढ़ते हुए महत्त्व को पहचान लिया है। लेकिन पिछले समय में आर्थिक शक्ति के केंद्रित हो जाने से उपभोक्ता के हितों पर अनेक प्रकार का विपरीत प्रभाव पड़ा है। इसके संदर्भ में प्रसिद्‌ध राजनायिक एवं अर्थशास्त्री, जॉन केनेथ गिलब्रैथ की प्रसिद्‌ध उक्ति सटीक है : "उपभोक्ता राजा नहीं होता है बल्कि अर्थव्यवस्था के बादशाह तो बड़े-बड़े निगम होते हैं।" जो कुछ घटित होता है वह उपभोक्ताओं की इच्छा के अनुकूल नहीं होता है बल्कि बड़े-बड़े शक्तिशाली निगमों की इच्छानुकूल होता है।

एक तर्क यह दिया जाता है कि उत्पाद का निर्धारण, वितरण, विज्ञापन एवं मूल्य निर्धारण उत्पादक के हाथ में है लेकिन इसे खरीदने न खरीदने का मूलभूत अधिकार तो उपभोक्ता का है। इसीलिए उत्पाद को उपभोक्ता द्‌वारा न पसंद करने का जोखिम उत्पादक को उठाना होता है। कानून की बात भी कही जाती है जिसके अनुसार वस्तु की अनुकूलता, उपयोगिता एवं मूल्य भुगतान का ध्यान रखने का दायित्त्व उपभोक्ता का है। यह तर्क भले तो लगते हैं लेकिन आधुनिक बाज़ार की परिस्थितियों में इनका कोई स्थान नहीं है।

यद्‌यपि उपभोक्ताओं को किसी वस्तु को नहीं खरीदने का अधिकार है लेकिन वह इस अधिकार का अपने हित में प्रयोग करने में असमर्थ रहते हैं। इसका मुख्य कारण, सूचना की कमी, अधिक उलझनभरी सूचना और कभी-कभी तो एक या एक से अधिक प्रतियोगी उत्पादकों से मिली गलत सूचना होती है। उत्पादों की बड़ी संख्या बांड, नकली माल तथा सर्वसाधारण सूचना माध्यमों; जैसे– टी.वी., रेडियो, फिल्म, समाचारपत्र, बिलबोर्ड, पोस्टर आदि के द्‌वारा उपभोक्ता पर बढ़ते हुए प्रभाव ने परिस्थितियों को और अधिक जटिल बना दिया है।

व्यावसायिक क्रियाएं जो उपभोक्ता के हितों की अनदेखी करती हैं वास्तव में वे हैं जो मूलतः

उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता से जुड़ी हैं। अधिकतम लाभ एवं विकास के उद्देश्यों को पाने का प्रयत्न वहां किया जाता है, जहां उपभोक्ताओं को न केवल अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है, बल्कि उन्हें वस्तुएं भी कम गुणवत्ता वाली मिलती हैं। कम मापना एवं तौलना, मिलावटी एवं नकली वस्तुओं को बेचने के अतिरिक्त बड़े पैमाने पर इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से, भारी विज्ञापन से प्रभावित उपभोक्ता खर्च कर रहे हैं, जबकि इसका पूरा मूल्य उन्हें प्राप्त नहीं होता है। इसके साथ-साथ उपभोक्ता बाज़ार में प्रचलित विभिन्न प्रकार की हेरा-फेरी एवं छल-कपट की लपेट में भी सरलता से आ जाते हैं। इसके कारण भी उनको संरक्षण की आवश्यकता है।

भारत जैसे विकासशील देशों में जहां बेराजगारी एवं गरीबी बहुत अधिक है तथा शिक्षा बहुत कम है, जनता की अनेक समस्याएं हैं जिनमें से अधिकांश उपभोक्ता संबंधी हैं। उदाहरण के लिए यह उपभोक्ता का अधिकार है कि उसे सही प्रकार की वस्तु, सही गुणवत्ता वाली, सही समय एवं मूल्य पर प्राप्त हो। लेकिन वास्तविकता यह है कि 21वीं सदी में भी भारत का उपभोक्ता एक निरीह प्राणी है जिसे सबसे अधिक परेशान किया जाता है। साधारणतया यह मान लिया जाता है कि उसे यदि जिंदा रहना है तो वह किसी न किसी तरह वस्तुओं का क्रय करेगा ही। वास्तव में वस्तुओं में मिलावट, घटिया गुणवत्ता, कम माप तोल, उपभोक्ता को प्रदत्त सेवा एवं शिष्टाचार में कमी, भ्रमित करने वाला एवं झूठा प्रचार, व्यवसाय संचालन के मूल आदर्शों की अवहेलना है। भारत में उपभोक्ता के शोषण की ओर इंगित करते हुए कुछ उदाहरण बॉक्स में दिए गए हैं।

भारत में उपभोक्ताओं की इस दुर्गति का मुख्य कारण है। यहां उपभोक्ता संगठित नहीं है जो एक सशक्त आंदोलन का रूप धारण कर सके और न ही इनकी कोई प्रभावशाली एवं चाक चौबंद एजेंसी है, जो इनकी शिकायतों को दूर करा सके। जब हम उपभोक्ता संरक्षण की बात करें तो इसके संबंध में हमें तीन बातों को ध्यान में रखना चाहिए। (i) उपभोक्ता की शारीरिक सुरक्षा (ii) उपभोक्ता की आर्थिक सुरक्षा एवं (iii) जनहित की सुरक्षा। प्रथम पहलु में ऐसी वस्तुओं से बचाव सम्मिलित है जो असुरक्षित हैं अथवा शरीर एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं दूसरे पक्ष में भ्रामक एवं व्यापार के तरीकों से बचाव के उपाय एवं उसकी शिकायतों को दूर कराने वाले पर्याप्त तरीके सम्मिलित हैं। तीसरे पक्ष में एकाधिकार की स्थिति

हम किस तरह जी रहे हैं

रेल यात्री ऊंचे किराए का भुगतान करता है जबकि डिब्बे गंदे होते हैं। हम टेलीफोन का बिल देते हैं जबकि वह काम ही नहीं करता । हम ऐसी इमारतों में काम करते हैं जो सुरक्षित नहीं हैं। हम ऐसी सड़कों पर गाड़ी चलाते हैं जो खतरनाक हैं। पैदल चलने के लिए फुट-पाथ नहीं हैं। डाक समय पर नहीं पहुंचती हैं। हम जो खाना खाते हैं उसमें मिलावट होती है। हम जो पानी पीते हैं वह प्रदूषित होता है। और जिसमें हम सांस लेते हैं वह वायु जहरीली होती है। शायद हम नहीं जानते कि खेसारी दाल से लकवा मार जाता है। खाने में कृत्रिम रंग जिगर को हानि पहुंचाता है। बेकरी की रोटी 72 घंटे के पश्चात् खराब हो जाती है। पश्चिमी देशों में जिन दवाओं पर रोक है उन्हें हमारे यहां बेचा जाता है। अधिक मात्रा में ग्लूकोज का सेवन हानिकारक है। खिलौना बच्चे के हाथ में हथियार का काम करता है। मिट्टी के तेल से जलने वाले स्टोव दोषपूर्ण होते हैं। LPG सिलैंडर को सदा सीधा रखना पड़ता है और बिजली चालित उपकरण ISI मानक के अनुसार नहीं होते हैं। विज्ञापन हमें मूर्ख बनाते हैं। पानी साफ करने वाले उपकरण बैक्टीरिया मुक्त पानी नहीं दे सकते।

भारत में उपभोक्ता शोषण के उदाहरण
(न्यायिक फैसलों एवं समाचार-पत्रों की रिपोर्ट पर आधारित)

- भारतीय रेलवे (रेल सेवाओं पर जिसका एकाधिकार है) सुपरफास्ट गाड़ियों में सफर पर अतिरिक्त भाड़ा ले रही थी। वास्तविकता यह है कि ये गाड़ियां किसी साधारण मेल गाड़ी या एक्सप्रेस गाड़ी से किसी भी प्रकार से भिन्न नहीं है।
- एक प्रसिद्ध सूर्यमुखी के तेल के निर्माता ने राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों में पूरे पृष्ठ का विज्ञापन दिया, जिसमें दावा किया गया था कि यह तेल विटामिन, खनिज एवं प्रोटीन से भरपूर है। जब इस तेल की जांच की गई तो यह बड़े-बड़े वायदे झूठे निकले।
- कई कपड़े के निर्माता अपने कपड़ों पर 'पोली कॉटन' छाप देते हैं। पोली शब्द का प्रयोग अधिकांशत: पोली नोसिक के लिए किया जाता है पोलिएस्टर के लिए नहीं, और पोलीनोसिक, पोलिएस्टर की तुलना में अधिक सस्ता होता है।
- तैयार नूडल्स को 100 ग्राम के पैकेट में बेचना चाहिए जबकि अनेक निर्माता 80 ग्राम के पैकेट में बेच रहे हैं।
- एक स्त्री एक अस्पताल में अपैंडिक्स को हटवाने के लिए गई। सर्जन ने उसका गॉल ब्लैडर (पित्ताशय) निकाल दिया और स्त्री की मृत्यु हो गई।
- SBI की दिल्ली शाखा ने अपने एक खातेदार द्वारा जमा चैक की राशि वसूल की लेकिन साढ़े सात वर्ष तक उसके खाते में यह राशि जमा ही नहीं की।
- 42 लोगों की बारात के लिए दक्षिण रेलवे की एक रेल गाड़ी में आरक्षण कराया गया। जब वे गाड़ी में सवार हुए तो उन्हें बड़ी निराशा हुई क्योंकि वही टिकट अन्य लोगों को जारी किए जा चुके थे।
- खाना पकाने के तेल के एक निर्माता ने इनामी योजना में भाग लेने वालों को 24 रुपए मूल्य के सुंदर उपहार देने का वायदा किया। लेकिन यह उपहार 2 रु. वाले 12 कूपन थे। जो भी कूपन धारक तेल का एक पैक खरीदेगा उसे दो रुपए की छूट मिलेगी और वह भी एक निर्धारित समय के भीतर। बिक्री बढ़ाने का यह एक अद्भुत तरीका था।

अथवा प्रतिबंधित व्यवहार तरीकों के दुरुपयोग को रोकने के उपाय सम्मिलित हैं।

उपभोक्ता संरक्षण का महत्त्व

निम्नलिखित पैरा में इस विचारधारा का समर्थन किया गया है कि उपभोक्ता को हर कीमत पर शोषण से संरक्षण मिलना चाहिए। यह व्यवसाय एवं ग्राहक दोनों के हित में है कि व्यवसाय का संचालन सभी के लिए किया जाना चाहिए न कि उन कुछ चुनिंदा लोगों के लिए, जिनका इसमें हित है। निम्न विचार भारत में उपभोक्ता संरक्षण के महत्त्व को बताते हैं :

(i) व्यवसाय मानव कल्याण का माध्यम है: व्यवसाय ग्राहकों की सेवा करता है इसलिए यह साधन है, साध्य नहीं है। भली-भांति सेवा करना उपभोक्ता एवं व्यवसायी दोनों के ही हित में होगा। उपभोक्ता के हितों की अनदेखी करना व्यवसाय का निश्चित रूप से अंत है।

(ii) सामाजिक न्याय एवं विकास: संविधान की प्रस्तावना में भारत को एक समाजवादी धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक गणतंत्र घोषित किया है। विकास के साथ सामाजिक न्याय हमारी आर्थिक दर्शन की आधारशिला है। उपभोक्ता का शोषण हमारे संविधान में दिए गए राज्य नीति के निर्देशित सिद्धांतों के विपरीत है।

(iii) एक उद्देश्य बनाम अनेक उद्देश्य: व्यवसाय विभिन्न हिताधिकारियों के लिए कार्य करता है। इसीलिए यह सभी के हितों को ध्यान में रखता है जिनमें उपभोक्ता भी सम्मिलित है। व्यवसाय एक सामाजिक संस्था भी है और आर्थिक भी। अत: लाभ अर्जित करना इसका एक मात्र उद्देश्य नहीं हो सकता समाज का एक अंग होने के नाते व्यवसाय समाज की अनदेखी नहीं कर सकता और समाज में उपभोक्ता भी सम्मिलित है।

(iv) हिताधिकारियों का दृष्टिकोण: किसी भी व्यवसाय का जीवित रहना एवं उसकी सफलता उसमें हित रखने वालों के प्रयत्नों पर निर्भर करती है। ये हैं स्वामी, उपभोक्ता कर्मचारी, जनसाधारण एवं सरकार। व्यवसाय बना रहे एवं इसका विकास हो। यह तभी संभव है जब यह इसमें हित रखने वालों के हित में काम करे और विशेष रूप से उपभोक्ता के हित में कार्य करे।

(v) शक्ति स्रोत: व्यवसाय का समाज एवं सरकार पर अत्यधिक प्रभाव होता है तथा यह शक्तिशाली होता है। यह जीवन शैली, खान-पान एवं कपड़े पहनने की आदतों में परिवर्तन लाता है एवं उनका निर्माण करता है। इसलिए ऐसे प्रमाप निर्धारण का दायित्व व्यवसाय का है जो समाज को हानि न पहुंचाए एवं कुछ ही लोगों के हितों को न देखे।

(vi) स्वयं का हित: उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के पश्चात् गुणवत्ता वाली वस्तुओं का उत्पादन तथा एक अच्छे निगमित नागरिक की साख बनाए रखना व्यावसायिक इकाई के हित में है। जब तक कंपनियां उपभोक्ता मूलक नहीं बनेंगी, बहुराष्ट्रीय कंपनियां इन्हें मात देती रहेंगी। सरकार ने भी उपभोक्ताओं को संरक्षण देने वाले कानून बनाए हैं। जो व्यवसायी इन कानूनों का उल्लंघन करता है वे सदा के लिए अपनी ख्याति एवं ग्राहकों को खो देता है।

(vii) ग्राहक ही व्यवसाय का लक्ष्य: व्यवसाय का मूल उद्देश्य ग्राहक बनाना एवं उन्हें बनाए रखना है। ग्राहक तभी संतुष्ट होगा जबकि उसे सही मात्रा में सही गुणवत्ता वाली वस्तुएं सही मूल्य पर उपलब्ध होंगी। और यदि ग्राहक संतुष्ट नहीं होगा तो व्यवसाय अधिक समय नहीं चल सकता। ग्राहक व्यवसाय की नींव है तथा इसे स्थायित्व प्रदान करता है।

(viii) नैतिक दायित्व: अनेक सफल व्यवसायों के संस्थापकों के नैतिक मूल्य उनकी सफलता की आधारशिला है, संकट के समय में वे इन मूल्यों को मानते हैं एवं इन्हें नियमित करते हैं तथा व्यवसाय की दुनिया में यश प्राप्त करते हैं। बिना नैतिक मूल्यों के व्यवसाय मात्र एक आपराधिक क्रिया है। कोई भी सभ्य समाज आगे आने वाले समय में इस प्रकार के व्यवसाय को अधिक समय तक सहन नहीं करेगा।

(ix) जन समर्थन: व्यवसाय शून्य में नहीं चलता है। वित्तीय संस्थान एवं बैंक इनको वित्त प्रदान करते हैं। सरकार विभिन्न प्रकार की सहायता देती है एवं प्रलोभन देती है। कर्मचारी भी संगठनात्मक सुविधाएं प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं। उपभोक्ता जो कुछ प्राप्त करता है उसका भुगतान करने के लिए तैयार रहता है। इस वातावरण में, व्यवसाय में जिन लोगों के हित जुड़े हैं उनके शोषण का कोई औचित्य नहीं है।

(x) विश्वास का सिद्धांत : गांधी जी के अनुसार जो कुछ भी समाज किसी को देता है जिसमें व्यवसायी भी सम्मिलित हैं, उनका उपयोग गरीब एवं दलित के लाभ के लिए होना चाहिए। व्यवसायी ही समस्त व्यवसाय का स्वामी नहीं होता। वे तो समाज द्वारा प्रदत्त संसाधनों के न्यासी मात्र होते हैं। समाज व्यवसायियों से यह अपेक्षा रखता है कि इन संसाधनों का प्रभावपूर्ण उपयोग व्यवसाय में हित रखने वालों के लिए किया जाए। इनमें उपभोक्ता भी सम्मिलित हैं।

मिलावट एक राष्ट्रीय समस्या

22 अगस्त 1991 को नई दिल्ली में आयोजित केंद्रीय उपभोक्ता संरक्षण परिषद् (CCPC) की दसवीं सभा में तत्कालीन प्रधानमंत्री ने निःसप्त भाव से कहा : यदि कोई यह बताने वाला नहीं है कि मिलावट क्या है और क्या नहीं है बुरा क्या है और क्या नहीं हैं। तो कोई भी सरकारी ताकत यह नहीं कर सकती। मैं मिलावट से संबंधित कानूनों को कुछ न कुछ जानता हूँ। मुझे अपने राज्य (आंध्र प्रदेश) में इनका उपयोग करने का अवसर मिला। इतने कानूनों के होने पर तथा ईमानदार अधिकारियों के होने पर भी एक भी व्यक्ति को सजा नहीं हुई क्योंकि न्यायालय पूछता है कि आप कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि किसी चीज की मिलावट की गई है। हो सकता है कि इसका कोई अन्य कारण रहा हो। शंका पैदा की गई तथा हर मुकदमें में शंका का लाभ मुजरिम को मिला।

यदि हम उपभोक्ता को बादशाह ही देखना चाहते हैं तो उन्हें इस स्थिति में लाने के लिए व्यवसाय की भूमिका को नहीं भूलना चाहिए। उपभोक्ता केवल यह चाहते हैं कि उनकी सेवा की आड़ में उनका शोषण नहीं किया जाना चाहिए। उन्हें पूरा सम्मान एवं प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए।

उपभोक्ता के अधिकार

यह सुनिश्चित करने के लिए कि उपभोक्ता के अधिकार को सही रूप में संरक्षण प्रदान किया जाए तो सभी संबंधित लोगों को उपभोक्ताओं के अधिकारों का ज्ञान होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह पहचान होनी चाहिए कि उपभोक्ता के निम्न अधिकार हैं।

(i) सुरक्षा: निर्विघ्न एक सुरक्षित जीवन के लिए सुरक्षा के अधिकार का महत्त्व है। बिना किसी नियमन व्यवस्था के सुरक्षा के मामले में उपभोक्ता सबसे अधिक हानि उठाता है। सुरक्षा के अधिकार से अभिप्राय है स्वास्थ्य एवं जीवन के लिए घातक उत्पाद, उत्पादन प्रक्रिया एवं सेवाओं से सुरक्षा। इसमें उपभोक्ताओं के दीर्घकालीन हित एवं वर्तमान आवश्यकताओं दोनों को ध्यान में रखा जाता है।

(ii) सूचना: उपभोक्ता का वस्तु एवं सेवाओं की गुणवत्ता, मात्रा, क्षमता, शुद्धता, मानक एवं मूल्य के संबंध में सूचना प्राप्त करने का अधिकार है, जिससे कि वह सही निर्णय ले सके एवं अनुचित व्यवहार से अपना बचाव कर सके। इसके अतिरिक्त उपभोक्ता को ऐसे सार्वजनिक मामलों, जिनको सरकार अथवा उसकी संस्थाएं देखती हैं, के संबंध में सूचना पाने का अधिकार है।

(iii) चयन : चयन के अधिकार से अभिप्राय विभिन्न विकल्पों में से चुनाव करना है। चयन के अधिकार को यह विश्वास दिलाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि विभिन्न वस्तु एवं सेवाओं को जहां तक संभव होगा प्रतियोगी मूल्य पर उपलब्ध कराया जाएगा। क्या प्रतियोगी मूल्य से अभिप्राय उचित मूल्य से है ? यहां संस्थाओं की भूमिका की आवश्यकता होती है (उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों के हितों को ध्यान में रखते हुए)। अर्थात् चयन के अधिकार के उद्देश्य को जनकल्याण राज्य के ढांचे के अंतर्गत पाने का प्रयत्न किया जाय।

(iv) प्रतिनिधित्व : प्रतिनिधित्व (सुनवाई) के अधिकार का अर्थ है उपभोक्ताओं को प्रभावित करने वाले आर्थिक एवं अन्य नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में संपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण ध्यान रखने की दृष्टि से उपभोक्ता के हितों की वकालत का अधिकार। इस अधिकार में सरकार एवं अन्य नीति

निर्धारण करने वाली संस्थाओं में प्रतिनिधित्व सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें वस्तु एवं सेवाओं के उत्पादन अथवा निश्चित करने से पहले उनके विकास के संबंध में सुनवाई का अधिकार सम्मिलित है। दूसरे शब्दों में उपभोक्ता के हितों को सदा ध्यान में रखा जाए। यह सुनिश्चित करने का एक सभ्य समाज का अधिकार एवं उत्तरदायित्व, प्रतिनिधित्व का अधिकार है।

(v) शिकायत निवारण : समस्या के आर्थिक आयाम इस तथ्य से निकलते हैं कि भारत जैसे दबे हुए समाज में कमजोर वर्ग को न्याय नहीं मिलता। इस अधिकार के अंतर्गत बेकार वस्तुओं एवं असंतोषप्रद सेवाओं की आपूर्ति पर क्षति पूर्ति प्राप्त करने का अधिकार तथा आवश्यकता पड़ने पर छोड़ी हुई राशि के दावे के लिए कानूनी सहायता एवं शिकायत, कार्यवाही या प्रतिबंधात्मक व्यापारिक कार्यवाही या उपभोक्ताओं के अनैतिक शोषण के विरुद्ध शिकायत निवारण मांगने का अधिकार एक सम्मानजनक जीवन जीने के लिए न्याय संगत हैं।

(vi) उपभोक्ता शिक्षा: उपभोक्ता शिक्षा के अधिकार का तात्पर्य ऐसा ज्ञान एवं निपुणता प्राप्त करना जिससे कि उपभोक्ता एक ऐसा व्यक्ति बने, जिसे पूरी सूचना हो। एक शिक्षित व्यक्ति के लिए अपने अधिकारों को जान लेना एवं उपभोक्ता के निर्णयों को प्रभावित करने वाले तत्त्वों को प्रभावित करने के लिए कार्यवाही करना सरल होता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि अनपढ़ व्यक्ति अज्ञानी होते हैं। क्योंकि वह पढ़ नहीं सकते हैं इसलिए वह हानि उठाते हैं। उपभोक्ता शिक्षण के संबंध में भारत में अभी तक कोई स्पष्ट नीति नहीं है। केंद्रशासित एवं राज्य सरकारों ने विद्यालयी पाठ्यक्रमों में उपभोक्ता शिक्षा को सम्मिलित करना स्वीकार कर लिया है। NCERT उपभोक्ता शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक विकसित करने पर कार्य कर रही है। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (IGNOU) ने उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित दूरस्थ शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम तैयार किया है।

(vii) मूलभूत आवश्यकताएं: किसी देश के लोगों (उपभोक्ताओं) की मूलभूत आवश्यकताएं जीवित रहने एवं एक सम्मानजनक जीवन निर्वाह की आवश्यकता से उत्पन्न होती है। इनमें पर्याप्त भोजन, शिक्षा, कपड़े, स्वास्थ्य का ध्यान, पीने का पानी एवं सफाई, मकान, शिक्षा, ईंधन एवं परिवहन सम्मिलित हैं। इस प्रकार से मूलभूत आवश्यकताओं की सीमाओं में दो वस्तुएं एवं छ: सेवाएं आती हैं। इन आठ आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना किसी भी इंसान के लिए एक सम्मानजनक जीवन जीना असंभव होता है।

(viii) स्वस्थ वातावरण: इसका तात्पर्य है प्रदूषित वातावरण से सुरक्षा का अधिकार। इससे जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। इसमें वातावरण की गिरावट से सुरक्षा सम्मिलित है। यह आने वाली पीढ़ियों के लिए वातावरण को सुरक्षित रखने एवं उसमें सुधार लाने की आवश्यकता को स्वीकार करता है।

उपभोक्ता के हितों की रक्षार्थ भारत सरकार ने अनेक कदम उठाए हैं तथा ऐसा नहीं है कि इसने उपभोक्ताओं को ऊपर वर्णित अधिकारों के संरक्षण के लिए तंत्र अथवा वातावरण नहीं दिया है। चुनौती तो यह है कि इन उपायों को लागू करने के लिए प्रशासनिक तंत्र को कैसे सुदृढ़ किया जाए। जबकि इनको लागू करने वाले अधिकारियों के लिए प्रलोभन भी हैं, जिससे कि वह संसाधनों के अभाव में बिना प्रभावित हुए अथवा पंगु मानते हुए कर्त्तव्यों का निर्वाह करें।

उपभोक्ताओं के उत्तरदायित्व

यद्यपि उपभोक्ता के हितों को संरक्षण प्रदान करने का प्रयत्न सरकारी एवं गैरसरकारी दोनों संगठनों ने किया है फिर भी उपभोक्ताओं का शोषण तब तक समाप्त नहीं

होगा जब तक कि अपने हितों के रक्षार्थ उपभोक्ता स्वयं आगे नहीं आएगा। सरकारी एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ-साथ उपभोक्ता को भी कुछ दायित्व लेने होंगे। ऐसे कुछ उत्तरदायित्व नीचे दिए गए हैं।

(i) उपभोक्ताओं को अपने-अपने अधिकारों का उपयोग करना चाहिए : ये अधिकार हैं, सुरक्षा का अधिकार, सूचना पाने का अधिकार, चयन का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, शिकायत निवारण मांगने का अधिकार एवं उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार। उपभोक्ता जिन वस्तुओं अथवा सेवाओं का वे बाज़ार से क्रय कर रहे हैं, उनके संबंध में अपने अधिकारों का ज्ञान होना चाहिए।

(ii) सचेत उपभोक्ता: वस्तुओं एवं सेवाओं के क्रय से पहले उपभोक्ता को उनकी गुणवत्ता, मात्रा, उपयोगिता मूल्य इत्यादि के संबंध में पूरी ज़ानकारी प्राप्त करने पर जोर देना चाहिए। इससे श्रेष्ठ खरीददारी सुनिश्चित होगी। उसे पूरी तरह से विक्रेता पर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

(iii) उचित शिकायतों के निवारण हेतु शिकायत दर्ज करानी चाहिए: कई बार व्यापारियों की बेइमानी को उपभोक्ता इसलिए अनेदखी कर देता है कि यह छोटी-सी है। लेकिन इस विचार के कारण व्यावसायिक भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है। दूसरी ओर कुछ उपभोक्ता वस्तु में मामूली कमी होने पर अधिक क्षति पूर्ति के लिए दावा करते हैं। यह भी उचित नहीं है।

(iv) उपभोक्ता को गुणवत्ता के संबंध में जागरूक होना चाहिए: यही मिलावट एवं नकली वस्तुओं की समाप्ति का एक मात्र रास्ता है। क्रय करते समय उपभोक्ता को प्रमाणिक गुणवत्ता प्रमाणीकरण चिह्न जैसे ISI, AGMARK, FPO, WOOL MARK आदि को देख लेना चाहिए।

(v) विज्ञापन बढ़ा-चढ़ाकर बताते हैं: इनसे प्रभावित न हों। उपभोक्ताओं को चाहिए कि वह विज्ञापन में दिए वस्तु के गुणों के वास्तविक उत्पाद से मिलान करें। यदि कोई अंतर है तो इसे विज्ञापन प्रायोजक की जानकारी में लाएं।

(vi) नकद पर्ची परजोर दें: यदि खरीदे गए माल में कोई दोष है और उपभोक्ता शिकायत करना चाहता है तो क्रय के प्रमाण के तौर पर नकद पर्ची का होना आवश्यक है। विक्रेता के लिए पर्ची को देना अनिवार्य है।

उपभोक्ता आंदोलन यदि गंभीर रहे तो उपभोक्ताओं की शोषण से रक्षा की जा सकती है। समाज के जो अधिक शिक्षित लोग उपभोक्ता हैं उनको भी वांछित परिवर्तनों के लिए आवाज उठानी चाहिए तथा लड़ना चाहिए। यदि उपभोक्ता, उपभोक्ता संगठनों अथवा अन्य समूहों में सक्रिय रूप से भाग लेकर इन मामलों को नहीं उठाएंगे, तो उपभोक्ता संरक्षण पाठ्यपुस्तकों तक ही सीमित रह जाएगा।

चौकन्ने रहें अन्यथा नुकसान उठाएंगे

इसे लोग कम ही जानते हैं लेकिन यह एक रोचक तथ्य है कि घरों में प्रयोग में आने वाली प्रेस ISI अथवा BIS मानक के अनुरूप नहीं होती है जबकि ऐसा होना आवश्यक है, तथा यह उपभोक्ता के लिए संभावित खतरा है। बिजली की प्रेस का राज्य सरकार के निरीक्षण में ISI / BIS मानकों के अनुरूप होना आवश्यक है। कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर (CERC) अहमदाबाद की विस्तृत रिपोर्ट के अनुसार सात ISI ब्रांड भी प्रयोग करने में असुरक्षित हैं।

उपभोक्ता संरक्षण के उपाय

भारत में उपभोक्ताओं के साथ उचित व्यवहार की आवश्यकता है। उपभोक्ताओं का शोषण तुरंत बंद होना चाहिए। देश के उपभोक्ताओं को एकजुट हो जाना चाहिए तभी वह व्यावसायिक इकाइयों के खतरों से उबर पाएंगे। भारत में उपभोक्ता आंदोलन अभी अपने शैशवकाल में है। 16% से भी अधिक लोग गरीबी रेखा से भी नीचे जी रहे हैं तथा ग्रामीण जनता अभी उपभोक्तावाद की मुख्य धारा में सम्मिलित नहीं हुई है। सरकार द्वारा प्रदत्त उपभोक्ता संरक्षण से संबंधित सूचना भी उनकी पहुंच से बाहर है। इसीलिए भारत में उपभोक्ता आंदोलन पहुंच से बाहर है। इसको विकसित देशों के संभ्रांत व्यक्तियों के दृष्टिकोण से भिन्न संदर्भ में देखकर विकसित करना चाहिए। इसे तो एक सामाजिक आंदोलन होना चाहिए जिसमें सभी वर्ग के लोगों की भूमिका हो। नीचे के पैरा में भारत में किए जा रहे उपभोक्ता संरक्षण के कुछ उपायों का वर्णन किया गया है।

(i) लोक अदालत : भारत में लोक अदालत की धारणा तेजी से पनप रही है। यहां प्रभावित व्यक्ति अपनी शिकायतों को सीधे लोक अदालत ले जा सकता है। मामलों की सुनवाई तुरंत होती है, और उसके पश्चात् निर्णय ले लिया जाता है। इन अदालतों की प्रक्रिया इस प्रकार की है कि जन साधारण का समय भी बचता है एवं पैसा भी। केंद्रीय सरकार ने देश में विधेयक सहायता योजना को लागू करने के लिए एक कमेटी की स्थापना की है जो संविधान के अंतर्नियम 39ए के अनुरूप है। यह धारा सभी नागरिकों को बिना आर्थिक अथवा अन्य किसी अयोग्यता को ध्यान में रखे न्याय की गारंटी देती है। लोक अदालतें आज शीघ्र एवं प्रभावी आर्थिक शिकायत निवारण प्रणाली बन चुकी हैं। दिल्ली परिवहन निगम (DTC), भारतीय रेलवे, दिल्ली विकास प्राधिकरण (DDA) महानगर टेलीफोन निगम लि. (MTNL) आदि अपने उपभोक्ताओं की समस्याओं के निवारण हेतु समय-समय पर लोक अदालत लगाते हैं।

(ii) सार्वजनिक हितार्थ मुकदमा : इसमें उन समूहों एवं हितों की ओर से कानूनी लड़ाई लड़ी जाती है जिनका कोई प्रतिनिधित्व नहीं है। यह प्रयत्न इस मान्यता पर आधारित है कि कानूनी पद्धति देश की जनता के एक बड़े भाग एवं महत्त्वपूर्ण हित रखने वालों को कानूनी सेवाएं प्रदान नहीं कर पाती हैं। इस समूह एवं हितों में गरीब, पर्यावरणवादी, उपभोक्ता, अल्पसंख्यक एवं दूसरे लोग सम्मिलित हैं। इस प्रकार से कोई भी व्यक्ति अथवा संगठन दोष निवारण कार्यवाही के लिए न्यायालय जा सकता है जिससे कि विभिन्न कानूनों के प्रभावी रूप से क्रियान्वयन, पर्यावरण सुरक्षा अथवा बंधक मजदूर जैसी अन्य सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध अदालत जा सकते हैं।

PIL के संबंध में न्यायपालिका ने कई नवीन कार्य किए हैं। प्रथम एंग्लो सैक्सन की अधिकारिता की अवधारणा को छोड़ दिया है। इस धारणा के अनुसार केवल प्रभावित पक्ष ही क्षतिपूर्ति के लिए न्यायालय जा सकता है। लेकिन PIL के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति उन कमजोर व्यक्ति अथवा समूहों की ओर से न्यायालय जा सकता है जो स्वयं इस स्थिति में नहीं है कि कानून की शरण में जा सके। दूसरे, उच्चतम न्यायालय को मात्र एक पोस्टकार्ड पर लिखकर भेजी शिकायत को याचिका मान लिया जाएगा। यह याचिका अर्थात् जनहित में किसी क्रिया अथवा प्रथा को रोकने के लिए न्यायालय के हस्तक्षेप के लिए है।

(iii) पर्यावरण मित्र उत्पाद : पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने Eco-Mark योजना प्रारंभ की है। इस योजना के अनुसार उत्पादक उन उत्पादों पर ईको-मार्क का लेबल, जिसमें मिट्टी का घड़ा प्रतीक चिह्न है, को चिपका सकते हैं जो उत्पादन प्रक्रिया की निर्धारित

शर्तों को पूरा करती है तथा जिनमें पर्यावरण मित्र कच्चे माल का प्रयोग हुआ है। प्रारंभ में इसमें कुछ उपभोक्ता वस्तुओं को लिया गया है जैसे नहाने का साबुन, कपड़े धोने का पाउडर, रंग रोगन, पैकेजिंग का सामान, खाद्य सामग्री, खाना पकाने वाले तेल आदि। यह योजना उपभोक्ताओं को ध्यान में रखकर बनाई है। लोग ऐसी वस्तु खरीद सकते हैं जो हानिकारक नहीं है या फिर उनका विनिर्माण, इस्तेमाल एवं निपटान पर्यावरण के लिए कम से कम हानिकारक है।

इस योजना का उद्देश्य विनिर्माता एवं आयातकों को प्रलोभन प्रदान करना है जिससे कि वे उत्पादों के पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव को कम करें। यह योजना उपभोक्ताओं को अपनी दिनचर्या में पर्यावरण सचेतन में सहायता प्रदान करती है। इसके लिए यह सूचना प्रदान करती है कि वे क्रय करते समय पर्यावरण संबंधी तत्त्वों को ध्यान में रख सकें। नागरिकों को ऐसे उत्पादों के क्रय के लिए प्रोत्साहित करती है जिनका पर्यावरण संबंधी हानिकारक प्रभाव कम हो और अंत में पर्यावरण की गुणवत्ता में सुधार ला सकें।

(iv) शिकायत निवारण फोरम एवं उपभोक्ता संरक्षण परिषद् : उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत एक न्यायिक तंत्र की स्थापना की है जो उपभोक्ता की शिकायतों एवं विवादों का निपटान करेगी। जिला फोरम, राज्य कमीशन एवं राष्ट्रीय कमीशन की उपभोक्ता की शिकायतों के सरल, शीघ्र एवं बिना किसी खर्चे के निवारण हेतु स्थापना की गई है (इनका विस्तृत वर्णन आगे किया गया है)।

उपभोक्ता के अधिकारों के प्रवर्तन एवं संरक्षण हेतु केंद्रीय एवं राज्य सरकारों ने अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना की है। 2002 संशोधित उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अनुसार राज्य सरकार ने ऐसी परिषदों का जिला स्तर पर गठन किया है।

उपभोक्ता एवं पर्यावरण मित्र उत्पाद

जैसे ही खरीददार दि बॉडी शॉप के दरवाजे से प्रवेश करता है, उसका स्वागत विदेशी सुगंध की लहर करती है। दुकान अत्यधिक व्यवस्थित है। इसकी अल्मारियों में वस्तुएं क्रमवार रखी है जिनमें महत्त्वपूर्ण नाम है शहसूल मडशैंपू, रसबरी रिप्पल बाथिंग बब्बल्स एवं पीपरमैंट फुट लोशन। रंग बिरंगे शैंपू, लोशन, साबुन एवं प्रसाधन के सामान, सभी पर एक ही लेबल लगा है कि जानवरों पर जांच के लिए, यह सब लघु पुस्तिकाओं के गट्ठर हैं जिन पर लिखा है 'प्राकृतिक क्या है' दि बॉडी शॉप ने अधिकांश उत्पादों को फल एवं वनस्पति तेलों से बनाया है। जो प्राकृतिक हैं अथवा जिन्हें शताब्दियों से लोग उपयोग में लाते रहे हैं। प्लास्टिक की शीशी जिस पर काला ढक्कन और हरा लेबल लगा है, को लौटाने पर छूट मिलती है। वे ऐसे प्लास्टिक के जैविक निमनलकरण थैले का प्रयोग करते हैं। इनकी बिक्री से होने वाले लाभ का एक भाग "अमेजन के बरसाती जंगलों को बचाओ" जैसे पर्यावरण अभियान कोष में जमा होता है।

उपभोक्ता, एक शैंपू एवं स्टोर जिसमें इसे बेचा जाता है, से वास्तव में क्या चाहते हैं दी बॉडी शॉप क्या करती है जिससे उपभोक्ता क्रय के लिए अभिप्रेरित होते हैं ? समाज के प्रति उत्तरदायी होना क्या किसी व्यावसायिक संगठन के लिए चिंता का विषय है ?

अनानास से मुह धोना एवं आरचिड का तेल, साफ करने का दूध उन नौजवानों को भाता है जिनमें पर्यावरण के प्रति नई-नई जागरूकता पैदा हुई है। ये वे लोग हैं जो फिर से परहेज करते हैं एवं निपटान योग्य डाइपर्स से घृणा करते हैं। यद्यपि ये लोग बॉडी शॉप की वस्तुओं को नहीं खरीदेंगे यदि यह सुगंधित नहीं है। चाहे इस दुकान की कुछ भी नैतिकता क्यों न हो लेकिन इन लोगों का यह मानना नहीं है कि ये साबुन खरीद रहे हैं, या सुगंधी खरीद रहे हैं अथवा शैंपू खरीद रहे हैं। इनका विश्वास तो यह है कि यह सामाजिक उत्तरदायित्व का पालन करते हुए खरीद रहे हैं। यह नैतिकता का क्रय है। परंतु क्या वह वास्तव में ऐसा कर रहे हैं?

(v) उपभोक्ता संरक्षण पर राष्ट्रीय युवा पुरस्कार : युवाओं एवं उपभोक्ताओं के उपभोक्ता संरक्षण में भाग लेने को प्रोत्साहन देने के लिए केंद्रीय मंत्री परिषद् उपभोक्ता संरक्षण पर दो राष्ट्रीय पुरस्कार घोषित किए हैं। ये हैं उपभोक्ता संरक्षण राष्ट्रीय पुरस्कार एवं उपभोक्ता संरक्षण राष्ट्रीय युवा पुरस्कार। यह पुरस्कार प्रति वर्ष प्रदान किए जाते हैं। मंत्रालय ने राष्ट्रीय महिला पुरस्कार घोषित किया है। इसका उद्देश्य उन महिलाओं को सम्मानित करना है, जिन्होंने उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है।

(vi) प्रचार के तरीके: 15 मार्च को पूरे विश्व में, विश्व उपभोक्ता अधिकार दिवस के रूप में मनाया जाता है। यह दिवस प्रतिवर्ष उचित रीति से मनाया जाता है। 1995 में मुख्य समारोह विज्ञान भवन नई दिल्ली में हुआ। इसके अतिरिक्त डी.ए.वी.पी. की सहायता से मंत्रालय ने भारी मात्रा में बाह्य प्रचार कार्यक्रम चलाया जैसे विज्ञापन पट्ट, बैनर, बसों पर पट्ट आदि।

दूरदर्शन द्वारा प्रति पखवाड़े नियमित रूप से उपभोक्ता संरक्षण पर कार्यक्रम प्रसारित किया जाता है। मंत्रालय 'अपना अधिकार' नाम से साप्ताहिक कार्यक्रम प्रसारित कर रहा है। इसके साथ-साथ 'उपभोक्ता के अधिकार' एवं 'उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986' शीर्षक से दो लघु फिल्म तथा 'मुबारक कदम' एवं 'मिसलीडिंग एडवरटाइजमैंट्स' नाम से दो वीडियो विषयक चलचित्रों का निर्माण किया गया है। पांच लघु विडियो विषयक चलचित्रों का निर्माण किया है। ये हैं : उपभोक्ता अधिक क्रय कैसे करें, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, 'माप तौल, एवं गलत मार्ग दिखाने वाले विज्ञापन।

मंत्रालय उपभोक्ता जागरण' के नाम से एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकाल रहा है। उपभोक्ता आरक्षण के मुख्य लक्षण अधिनियम, 1986, उपभोक्ता के अधिकार, उपभोक्ता आरक्षण अधिनियम और

बैंक ऑमबड्स मैन (शिकायत निवारण) की नियुक्ति

बैंक के ग्राहकों की बैंक सेवाओं में कमी की शिकायतों के शीघ्र एवं बिना किसी खर्च के निवारण हेतु RBI ने हाल ही में बैंक ऑमबड्स मैनन की नियुक्ति की है। बैंकिंग ऑमबड्स मैन बैंक सेवाओं में कमियों से संबंधित शिकायतों की सुनवाई करेगा। ये शिकायतें हैं :

- भुगतान न कराना / चैक, बिल, ड्राफ आदि के भुगतान अथवा वसूली में अमर्यादित देर।
- छोटे मूल्य के नोटों को बिना उचित कारण के अस्वीकार करना।
- ड्राफ्ट जारी नहीं करना।
- बैंक की शाखाओं द्वारा निर्धारित कार्य समय का पालन न करना।
- बैंक द्वारा गारंटी / साख पत्र के वायदों को न निभाना।
- जमा खातों से अनधिकृत अथवा धोखे से राशि निकाल लेने के संबंध में दावा।
- बैंक में खोले गए किसी बचत खाते, चालू खाते अथवा अन्य किसी खाते के संचालन से संबंधित शिकायत।
- भारत के निर्यातकों की शिकायतें यदि वे भारत में ही बैंक कार्यों से संबंधित हैं।
- अप्रवासी भारतीय जिनके भारत में खाते हैं उनकी विदेशों से मुद्रा भेजना, जमा करना एवं अन्य बैंक संबंधी मामलों से संबंधित शिकायतें।

आप, पर विवरणिका एवं मिलावट पर रोकथाम, उपभोक्ता आरक्षण और नाप तौल, उपभोक्ता संस्थाओं की निर्देशिका रिड्रेसल ऐजेंसीज़ की निर्देशिका।

(vii) उपभोक्ता कल्याण कोष : केंद्रीय वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग ने केंद्रीय उत्पाद एवं सीमा शुल्क संशोधन अधिनियम, 1991 पास किया है। इसमें उपभोक्ता कल्याण कोष की स्थापना का प्रावधान है। ऐसा अतिरिक्त उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क, जो विनिर्माताओं अथवा आयातकों को लौटाना नहीं होता है, को इस कोष में जमा कर दिया जाता है। इस कोष में जमा राशि में से उपभोक्ता कल्याण कोष का किस प्रकार से उपयोग किया जाए, इसके लिए दिशानिर्देश देने के लिए गठित कार्य समूह ने कुछ प्राथमिकताएं निर्धारित की हैं जो निम्न हैं :

- उपभोक्ता शिक्षा का प्रसार, एवं उपभोक्ता शिक्षा के लिए जागृति पैदा करने वाले कार्यक्रमों के प्रवर्तन हेतु साहित्य एवं श्रव्य, दृश्य सामग्री का केंद्रीकृत उत्पादन एवं वितरण।
- उपभोक्ता शिक्षा एवं संबंधित मामलों पर राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय स्तर पर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान की सुविधाएं स्थापित करना।
- ग्रामीण समुदाय आधारित जागरूक परियोजनाएं।
- शिकायतों को सुनना, सलाह देना एवं मार्ग दर्शन के तंत्र की स्थापना जैसे, मार्ग दर्शन ब्यूरो।
- उपभोक्ता वस्तुओं की जांच के लिए प्रयोगशालाओं की स्थापना।
- स्थायी रूप से उपभोक्ता शिक्षा गतिविधियों को संगठित करने के लिए जिला एवं ताल्लुका स्तर पर स्थायी रूप से आधारभूत सुविधाओं का निर्माण।

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986

उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 को बनाना उपभोक्ता के हितों के रक्षार्थ एक महत्त्वपूर्ण कदम था। यह अधिनियम उपभोक्ता के सुरक्षा का अधिकार, सूचना प्राप्ति का अधिकार, चयन का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, शिकायत निवारण का अधिकार एवं उपभोक्ता शिक्षा का अधिकार को मान्यता प्रदान करता है। केंद्र एवं राज्य स्तर पर उपभोक्ता संरक्षण परिषद सभी केंद्रशासित क्षेत्रों में कार्य कर रही है। इस अधिनियम के विशिष्ट लक्षण इस प्रकार है :

- यह सभी वस्तु एवं सेवाओं पर लागू होता है जब तक कि केंद्रीय सरकार ने विशेष छूट नहीं दी हो।
- यह सभी क्षेत्रों पर लागू होता है चाहे वह निजी क्षेत्र हों, सार्वजनिक क्षेत्र हों अथवा सहकारिता का क्षेत्र हो।
- इस अधिनियम के प्रावधान प्रकृति से क्षति पूरक हैं। दूसरे शब्दों में यह अधिनियम उपभोक्ताओं को अन्य कानूनों में उपलब्ध निवारण के अतिरिक्त, निवारण प्रदान करता है। तथा उनमें से चुनाव उसकी स्वेच्छा पर निर्भर करता है।
- सुरक्षा, सूचना चयन, प्रतिनिधित्व, शिकायत निवारण एवं उपभोक्ता शिक्षा से संबंधित अधिकारों को उच्च स्थान प्रदान करता है।
- उपभोक्ता को कुछ अनुचित एवं प्रतिबंधनात्मक व्यापार कार्यवाहियों, सेवाओं में कमियों अथवा बुराइयों एवं सेवाओं को रोक लेने पर रोक लगाने तथा बाज़ार से खतरनाक वस्तुओं को हटाने की मांग का अधिकार है।

1993 में पूरे देश में से उपभोक्ता संगठनों के दबाव के कारण सरकार ने 18 जून 1993 को एक

अध्यादेश जारी किया जिसके द्वारा अधिनियम में भारी संशोधन किए गए। इस अध्यादेश का स्थान 27 अगस्त 1993 को एक कानून ने ले लिया। इन संशोधन के विशेष लक्षण नीचे दिए गए हैं :

(i) इस अधिनियम के क्षेत्र को बढ़ा दिया गया। इसमें प्रतिबंधात्मक कार्यवाही से संबंधित शिकायतें, उन लोगों की शिकायतें जो स्वरोजगार के द्वारा जीवन-यापन के लिए वस्तुएं खरीदते हैं। उन वस्तुओं के बारे में शिकायतें जो उपभोक्ता के जीवन एवं सुरक्षा के लिए खतरा हैं तथा जिनके अवयव उपयोग विधि एवं प्रभावों के संबंध में विधि सम्मत सूचना प्रदान नहीं की गई हैं को सम्मिलित किया गया है।

(ii) भवन निर्माण में संबंधित सेवाओं को, सम्मिलित किया गया।

(iii) वर्ग विशेष द्वारा समान हित रखने वाले उपभोक्ताओं की ओर से शिकायत दर्ज कराई जा सकती है।

(iv) राष्ट्रीय आयोग, राज्य आयोग एवं जिला फोरम के गैर-न्यायिक सदस्यों के चुनाव के लिए चुनाव कमेटियों के लिए प्रादधान को समाविष्ट किया गया।

(v) जिला फोरम/राज्य कमीशन/राष्ट्रीय कमीशन के मुद्रा संबंधी अधिकार क्षेत्र को बढ़ा दिया गया है।

(vi) उपभोक्ता विवाद निवारण एजेंसियों को अतिरिक्त अधिकार दे दिए गए।

(vii) निरर्थक अथवा तंग करने की दृष्टि से की गई शिकायतों की स्थिति में शिकायतकर्ता को दंडित करने के लिए प्रावधान किए गए।

(viii) शिकायत दर्ज कराने की सीमा दो वर्ष निर्धारित करने का प्रावधान किया गया।

उपभोक्ता संरक्षण (संशोधित) अधिनियम 2002 के संशोधनों को 15 मार्च 2003 से लागू किया गया। संशोधित कानून के प्रावधानों के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण इस प्रकार हैं :

(i) जिला फोरम/राज्य कमीशन/राष्ट्रीय कमीशन का मुद्रा संबंधी अधिकार क्षेत्र का ओर विस्तार कर दिया गया है।

(ii) राष्ट्रीय कमीशन/राज्य कमीशन के प्रधान को विभिन्न पीठों की स्थापना का अधिकार दे दिया गया है। इन पीठों में एक अथवा एक से अधिक सदस्य हो सकते हैं। इनका उद्देश्य विवादों के निपटान में तेजी लाना है।

(iii) जिले में उपभोक्ताओं के अधिकारों की रक्षा करने एवं प्रवर्तन करने के लिए राज्य सरकार जिला उपभोक्ता संरक्षण परिषदों की स्थापना कर सकती है जिसका चेयरमैन जिला कलैक्टर होगा।

आइए अब कानून के उन प्रावधानों पर विचार करें जो उन उपभोक्ताओं के लिए उपयोगी है जो अधिनियम के अंतर्गत शिकायतों का निपटान चाहते हैं।

(i) उपभोक्ता की परिभाषा से इसका अर्थ है: (क) जो वस्तुओं का क्रय अथवा सेवाओं को मूल्य चुका कर प्राप्त करता है। (ख) उन वस्तु एवं सेवाओं का उपभोक्ता जो उन्हें मूल क्रेता अथवा सेवा प्राप्तकर्ताओं की अनुमति से प्राप्त करता है एवं उपभोग करता है। (ग) वह व्यक्ति जो उन वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग करता है जो स्वरोजगार द्वारा जीवन-यापन के लिए खरीदी गई हैं।

(ii) निम्न के संबंध में उपभोक्ता शिकायत दर्ज करा सकते हैं तथा क्षतिपूर्ति का दावा कर सकते हैं : (क) व्यापारी एवं विनिर्माताओं के धोखा-धड़ी

की क्रियाएं, (ख) टूटा-फूटा माल; (ग) सेवाओं में कमी। इन सेवाओं में बैंक, वित्त, बीमा, परिवहन, बिजली, एवं गैस आपूर्ति, मनोरंजन, भवन निर्माण, चिकित्सा सेवाएं, भोजन एवं रहने की सेवाएं सम्मिलित हैं।

(iii) उपभोक्ताओं की शिकायतों एवं विवादों की सुनवाई के लिए तीन स्तरीय न्यायिक मशीनरी है : (क) जिला फोरम उन शिकायतों की सुनवाई करेगा जिनमें वस्तु एवं सेवाएं तथा क्षतिपूर्ति का दावा 20 लाख रुपए से अधिक नहीं (1987 में यह 1 लाख रुपए था)। (ख) राज्य कमीशन उन मामले को देखेगा जिनमें क्षतिपूर्ति का दावा 20 लाख रुपए से अधिक है लेकिन 1 करोड़ रुपए से अधिक नहीं है (1987 में यह 1 लाख से अधिक लेकिन 10 लाख रुपए तक था)। (ग) राष्ट्रीय कमीशन 1 करोड़ रुपए से अधिक के मामले लेगा जिनमें क्षतिपूर्ति की राशि 1 करोड़ रुपए से अधिक है (पहले यह 10 लाख रुपए थी)।

जिला फोरम के फैसले के विरुद्ध राज्य कमीशन में अपील की जा सकती है और राज्य कमीशन के आदेश के विरुद्ध राष्ट्रीय कमीशन में जाया जा सकता है। राष्ट्रीय कमीशन के फैसले के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की जा सकती है। अपील संबंधित फोरम/कमीशन के आदेश के 30 दिन के अंदर कर देनी चाहिए।

(iv) प्रत्येक शिकायत का निपटान शीघ्र अतिशीघ्र कर देना चाहिए। इसकी समय सीमा 30 दिन है। यदि शिकायत के अनुसार वस्तुओं के विश्लेषण अथवा जांच की आवश्यकता है तो यह अवधि 5 महीना हो सकती है।

(v) शिकायत जिनके द्वारा दर्ज कराई जा सकती है वे हैं : (क) उपभोक्ता (ख) कोई भी मान्यता प्राप्त उपभोक्ता संगठन भले ही शिकायत कर्ता उसका सदस्य न हो। (ग) एक या एक से अधिक उपभोक्ता यदि बड़ी संख्या में उपभोक्ताओं का समान हित हो (घ) केंद्रीय अथवा राज्य सरकार।

(vi) प्रत्येक शिकायत के साथ निर्धारित फीस का भुगतान किया जाएगा। कोई कोर्ट की फीस अथवा अन्य कोई खर्चा नहीं है।

(vii) राज्य कमीशन में अपील करने पर जिला फोरम ने जितनी अवधि में राशि का भुगतान का आदेश दिया है उसका 50% अथवा 25000 रु. जो भी कम हो जमा करानी होगी। राष्ट्रीय कमीशन में अपील करने पर यह राशि आदेशित राशि का 50% अथवा 350000 रु. जो भी कम हो, होगी ।

(viii) उपभोक्ता को शिकायत के बदले जो राहत मिलेगी उसमें निम्न सम्मिलित होंगे (यह तथ्यों एवं राहत की प्रकृति पर निर्भर करेगा) : (क) वस्तु की कमियों को दूर करना, (ख) वस्तु के बदले वस्तु देना, (ग) भुगतान किए गए मूल्य की वापसी, (घ) हानि अथवा चोट की क्षतिपूर्ति का आदेश, (ङ) सेवाओं में कमी को दूर करना, (च) अनुचित एवं प्रतिबंधित व्यापार क्रियाओं पर रोक लगा देना, (छ) खतरनाक वस्तुओं की बिक्री पर रोक लगा देना, (ज) खतरनाक वस्तुओं को बिक्री से हटा लेना, (झ) पक्षों को समुचित लागत का भुगतान करना।

उपभोक्ता संगठनों की भूमिका (गैर सरकारी संगठन NGOs)

ऐसी लगभग 500 उपभोक्ता संगठन हैं जो उपभोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। वे उपभोक्ता शोषण के विभिन्न पहलुओं को देख रहे हैं (गैर

सरकारी संगठन (NGOs) इनमें से कुछ की ही महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं। इनमें से कुछ हैं: कंज्यूमर गाइडैंस सोसायटी ऑफ इंडिया, मुंबई सिटिजंस एक्शन ग्रुप, मुंबई: कंज्यूमर एजुकेशन एंड रिसर्च सेंटर (CERC), अहमदाबाद; कॉमन कॉस, नई दिल्ली; कंज्यूमर यूटीलिटी एंड ट्रस्ट सोसासयटी (CUTS) जयपुर एंड वॉइस, नई दिल्ली। ये ऐसी उपभोक्ता संस्थाएं हैं जो अन्य कार्यों के साथ उपभोक्ताओं के मामलों से संबंधित कार्य कर रही हैं। यह कार्य है :

- विवरणी की पत्रिका एवं लेख निकालना;
- उपभोक्ताओं में जागरूकता में तेजी लाना;
- विभिन्न उत्पादों के संबंध में तथ्य जुटाना एवं उनकी जांच करना;
- विचार गोष्ठी संभाषण, कार्यशाला एवं सम्मेलनों का आयोजन करना, जिनका उद्देश्य उपभोक्ता की समस्याओं पर ध्यान केंद्रित करना एवं उनका समाधान ढूंढ़ना है;

  प्रतिरोध एवं अवरोध के द्वारा उपभोक्ताओं को ऐसी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए उकसाना जो टूटी-फूटी हैं और दूषित गुण वाली हैं;
- कोर्ट में उपभोक्ताओं की ओर से मुकदमा, शिकायत एवं याचिका दायर करना;
- उपभोक्ता की समस्याओं की जांच पड़ताल करना;
- मूल्यों में हेरा-फेरी, मिलावट, कम तोलना आदि के विरोध जताने का आयोजन करना।
- खाद्य सामग्री में मिलावट, दवाइयों एवं प्रसाधन के समान का दुरूपयोग, उपभोक्ता संरक्षण के कानूनों आदि पर फिल्म/केसेट बनाना;
- उपभोक्ता को शिक्षित करना कि वह अपनी सहायता स्वयं कर सकें;
- उपभोक्तावाद के लिए स्त्रियों को शिक्षित करना;
- नकली एवं मिलावटी उत्पादों से अवगत कराने के लिए प्रदर्शनी का आयोजन करना;
- मिलावटी, खतरनाक उत्पादों की बिक्री एवं अन्य कार्यों के मामलों में सरकारी एजेंसियों के साथ सहयोग करना;
- विद्यालयों में उपभोक्ता शिक्षा को प्रारंभ कराना जिससे कि बच्चों में अच्छे बुरे की पहचान प्रारंभिक अवस्था में ही आ जाए;
- सर्वोच्च स्तर पर महासंघ के प्रवर्तन के साथ क्षेत्र एवं राज्यों के अनुसार उपभोक्ता सीमितियों के जाल का प्रवर्तन करना;
- उपभोक्ता के मार्गदर्शन एवं सलाह के लिए स्वयं सेवी शिकायत काउंटर खोलना;
- लोगों को समाज द्वारा अपेक्षित उपभोक्ता मानकों को स्वीकार करने के लिए अभिप्रेरित करना।

उपभोक्ता समन्वय सीमिति

उपभोक्ता समन्वय समिति (भारत की उपभोक्ता संगठनों की शीर्ष संस्था) आंदोलनकारी एवं अन्य लोगों के लिए उपभोक्ता शिक्षा पर अनेकों कार्यक्रम करती रही है इसने अनेक प्रशिक्षण पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया है। जो इनसे संबंधित है : (i) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम (ii) स्वास्थ्य, दवाईयों एवं प्रसाधन सामग्री तथा (iii) सड़क परिवहन एवं रेलवे।

प्रेस की भूमिका

जब से उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम बना है और उससे भी पहले से, समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं उपभोक्ताओं के लिए अनेक प्रकार से कार्य कर रही हैं। लेख एवं स्तंभ आदि प्रकाशित करने के अतिरिक्त समाचार पत्र उन उपभोक्ताओं के बचाव में आगे आए हैं जिनको परेशान किया गया है। उदाहरण के लिए इंडियन एक्सप्रैस पहला अखबार है जिसने उपभोक्ता शिकायत

स्तंभ का प्रारंभ किया। इसमें उपभोक्ताओं की समस्याओं एवं शिकायतों को लेकर उनसे संबंधित अधिकारियों को निवारण हेतु भेजा। कई मामलों में परिणाम को प्रकाशित किया तथा उपभोक्ताओं की शिकायतें दूर हुईं। इंडियन एक्सप्रेस के स्तंभ की सफलता, सर्वप्रियता से दूसरे समाचार पत्र अभिप्रेरित हुए तथा उन्होंने भी इसका अनुकरण किया। आज लगभग हर समाचार पत्र प्रति सप्ताह उपभोक्ता शिकायत स्तंभ प्रकाशित कर रहा है। इसमें क्षेत्रीय भाषाओं के अखबार भी पीछे नहीं हैं।

विश्वविद्यालयों/विद्यालयों की भूमिका

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय ने एक ऐसे बृहत् पाठ्यक्रम को विकसित कर पहल की है जो एक आधारगत ढांचा है और जिसको आधार मानकर अन्य विश्वविद्यालय उपभोक्ता शिक्षा के लिए विषय विकसित कर सकते हैं। आंध्र प्रदेश में वारंगल में एक विश्वविद्यालय पहले से ही एक वर्ष का उपभोक्ता कानून का स्नातकोत्तर शिक्षण कर दे रहा है। महाराष्ट्र खुला विश्वविद्यालय, पूना भी उपभोक्ता शिक्षा में पाठ्यक्रम चला रहा है। केंद्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड ने भी उपभोक्ता शिक्षण अध्यापकों के लिए दिशानिर्देशों का प्रकाशन किया है। इसमें मार्ग दर्शन किया है एवं उदाहरण दिए है कि स्कूल के विद्यार्थियों में जागृति लाने के लिए कैसी क्रियाओं का संचालन किया जाए एवं उन पर चला जाए। स्वयं सेवा उपभोक्ता सगठन कुकरमुत्तों की तरह पैदा हो रहे है। इनमें से अधिकांश के पास साधनों की कमी है। इसीलिए उपभोक्ता आंदोलन में इनका योगदान नगण्य है। बड़े संगठनों में से कुछ का जनाधार नहीं है तथा वे विकेंद्रीकृत एवं जनतांत्रिक ढंग से निर्णय नहीं ले सकते। आज एक शीर्ष उपभोक्ता संगठन की आवश्यकता है जो भारत में स्वयंसेवी उपभोक्ता संगठनों की गतिविधियों में तालमेल बैठा सके।

सारांश

उपभोक्ता संरक्षण का औचित्य

आर्थिक नियोजन का उद्‌देश्य संसाधनों का इस तरह वितरण करना है कि उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं की अधिकतम संतुष्टि हो। इसी से उपभोक्ता की सार्वभौमिकता का विचार उत्पन्न होता है।

उपभोक्ता संरक्षण का महत्त्व

निम्नलिखित विचार भारत में उपभोक्ता संरक्षण के महत्त्व को प्रकट करते हैं : (i) व्यवसाय मानव कल्याण का साधन है। (ii) सामाजिक न्याय के साथ विकास (iii) एक बनाम अनेक उद्‌देश्य (iv) हिताधिकारी दृष्टिकोण (v) शक्ति केंद्र (vi) स्वयं का हित (vii) उपभोक्ता ही व्यवसाय का लक्ष्य है (viii) नैतिक दायित्त्व (ix) जन समर्थन (x) विश्वसनीयता का सिद्धांत।

उपभोक्ता के अधिकार

प्रत्येक व्यक्ति को समझ लेना चाहिए कि उपभोक्ता के निम्न अधिकार है : (i) सुरक्षा (ii) सूचना, (iii) चयन, (iv) प्रतिनिधित्व, (v) शिकायत निवारण, (vi) उपभोक्ता शिक्षण, (vii) प्राथमिक आवश्यकताएं, (viii) स्वस्थ वातावरण।

उपभोक्ता के उत्तरदायित्व

कुछ उत्तरदायित्व इस प्रकार हैं : (i) उपभोक्ता को अपने अधिकारों का प्रयोग करना चाहिए। (ii) सतर्क उपभोक्ता। (iii) वास्तविक शिकायत के निवारण के लिए शिकायत दर्ज कराना। (iv) उपभोक्ता को गुणवत्ता के प्रति संवेदशील होना चाहिए। (v) विज्ञापन कभी-कभी बढ़ा-चढ़ाकर बताता है। (vi) रोकड़ पर्ची पर जोर देना चाहिए।

उपभोक्ता संरक्षण के तरीके

भारत में उपभोक्ता आंदोलन को ऐसे परिप्रेक्ष्य में विकसित करना है जो विकसित देशों की संभ्रांत मार्ग से भिन्न हो। यह एक सामाजिक आंदोलन है। जिसमें समाज के हर क्षेत्र के लोगों की भूमिका होनी चाहिए।

(i) लोक अदालत : जिस पक्ष को कष्ट है वह अपनी शिकायत को लेकर इन अदालतों में जा सकता है। मामले की सुनवाई तुरंत होती है तथा उसके पश्चात् निर्णय ले लिया जाता है।

(ii) जनहित में मुकदमा : जनहित में मुकदमें में वह प्रयत्न समाविष्ट है जिनके द्वारा उन समूहों एवं हितों को कानूनी प्रतिनिधित्व दिया जाता है जिन्हें अभी तक प्रतिनिधित्व नहीं मिला है। यह प्रयत्न इस मान्यता पर आधारित हैं कि कानूनी प्रणाली साधारणत: लोगों के एक बड़े वर्ग को एवं हित रखने वाले एक महत्त्वपूर्ण वर्ग को कानूनी सहायता नहीं देते हैं।

(iii) पर्यावरण मित्र उत्पाद : पर्यावरण एवं वन मंत्रालय ने Eco Mark कार्यक्रम चलाया है। यह कार्यक्रम उपभोक्ता समर्थित है। जिससे कि लोग उन उत्पादों का क्रय करें जो हानिकारक नहीं हैं या फिर उनको विनिर्माण, उपभोग एवं निपटाने का जो पर्यावरण को न्यूनतम हानि पहुंचाता है।

(iv) शिकायत निवारण फोरम एवं उपभोक्ता संरक्षण परिषदे: उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 के अंतर्गत एक न्यायिक मशीनरी की स्थापना की है जो उपभोक्ताओं की शिकायतों एवं विवादों का निपटान करेगी। उपभोक्ताओं की शिकायतों के सरल, शीघ्र एवं बिना किसी खर्च के निवारण हेतु जिला फोरम, राज्य कमीशन एवं राष्ट्रीय कमीशन का गठन किया गया है।

(v) उपभोक्ता संरक्षण पर राष्ट्रीय युवा पुरस्कार : उपभोक्ता संरक्षण में उपभोक्ताओं एवं युवाओं की भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए केंद्रीय सरकार ने दो राष्ट्रीय पुरस्कार घोषित किए हैं जिनके नाम हैं नेशनल एवार्ड ऑन कंज्यूमर्स प्रोटेक्शन एवं नेशनल यूथ एवार्ड ऑन कंज्यूमर प्रोटेक्शन। यह पुरस्कार प्रति वर्ष दिए जाते हैं।

(vi) प्रचार के तरीके : प्रतिवर्ष 15 मार्च को पूरे विश्व में विश्व उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है तथा यह दिवस प्रतिवर्ष सही रूप में अवसर के अनुकूल मनाया जाता है। 1995 में मुख्य समारोह का आयोजन विज्ञान भवन, नई दिल्ली में किया गया।

(vii) उपभोक्ता कल्याण कोष : केंद्रीय वित्त मंत्रालय के राजस्व विभाग ने केंद्रीय उत्पादन शुल्क एवं सीमा शुल्क कानून (संशोधित) अधिनियम 1991 पारित किए जिसमें उपभोक्ता कल्याण कोष की स्थापना के लिए प्रावधान है। अतिरिक्त उत्पादन सीमा शुल्क, जिन्हें विनिर्माता अथवा आयात को लौटाना नहीं है को इस कोष में जमकर दिया जाएगा। तथा इस कोष में से राशि को उपभोक्ताओं के कल्याण प्रवर्तन के लिए उपयोग में लाया जाएगा।

(viii) उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 : उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 को पारित करना उपभोक्ता के हितों की रक्षा की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदमों में से एक था। यह अधिनियम 1 जुलाई 1987 से प्रभाव में आया। यह अधिनियम उपभोक्ता के जिन अधिकारों को मान्यता देता है। वे है : सुरक्षा का अधिकार, सूचना प्राप्ति का अधिकार, चयन का अधिकार, सुनवाई का अधिकार, शिकायत निवारण का अधिकार, उपभोक्ता शिक्षण का अधिकार। केंद्र एवं राज्य स्तर की उपभोक्ता संरक्षण परिषद् सभी राज्यों, केंद्रशासित प्रदेशों में कार्य कर रही हैं।

लगभग 500 उपभोक्ता संगठन भोक्ता संरक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। वह विभिन्न प्रकार के उपभोक्ता शोषण को ले रहे हैं। य ा संगठन अन्य कार्यों के अतिरिक्त उपभोक्ताओं के मामलों से संबंधित कई कार्य कर रहे हैं।

उपभोक्ता समन्वय परिषद्

यह परिषद् (जो भारत में उपभोक्ताओं के विभिन्न संगठनों की शीर्ष संस्था है) सक्रिय कार्यकर्ताओं एवं अन्य लोगों के लिए उपभोक्ता शिक्षा पर अनेक कार्यक्रम चला रही है।

प्रेस की भूमिका

लेख, स्तंभ आदि के प्रकाशन के अतिरिक्त समाचार पत्रों ने पीड़ित उपभोक्ताओं के बचाव का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिए इंडियन एक्सप्रेस पहला समाचार पत्र था जिसने उपभोक्ता शिकायत स्तंभ प्रारंभ किया।

विश्वविद्यालयों/विद्यालयों की भूमिका

IGNOU ने एक बृहत् पाठ्यक्रम तैयार कर शुरुआत कर दी है। यह पाठ्यक्रम दूसरे विश्वविद्यालयों के लिए एक ऐसा आधारगत ढांचा है कि वे उपभोक्ता संरक्षण के लिए एक विषय विकसित कर सकते हैं। CBSE ने उपभोक्ता संरक्षण पर अध्यापकों के लिए नियमावली प्रकाशित की है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. भारत में उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता क्यों है ?
2. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अनुसार उपभोक्ता किसे कहते हैं ?
3. किन परिस्थितियों में जनहित में मुकदमा किया जा सकता है ?
4. उपभोक्ता के उत्तरदायित्व बताएं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. उपभोक्ता के अधिकारों का वर्णन करें।
2. लोक अदालत एवं प्रचार उपभोक्ता की रक्षा में किस रूप में सहायक होते हैं ?
3. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम के अंतर्गत उपभोक्ता को क्या निदान उपलब्ध है ?
4. क्षेत्र में कार्यरत उपभोक्ता संगठनों की भूमिका का वर्णन कीजिए।
5. उपभोक्ता संरक्षण कानून के मुख्य लक्षण कौन-से हैं ?

9. Guide and help in drawing conclusions and suggesting measures as solutions.	Govt.	51	65.5	27	34.5
	Pri.	130	72.2	50	27.8
	Uni.	45	90	5	10
10. Check and correct the report.	Govt.	53	67.7	25	32.3
	Pri.	132	73.3	48	26.7
	Uni.	43	86	7	14
11. Direct the work of printing, typing and binding of the dissertation.	Govt.	48	61.2	30	38.8
	Pri.	99	55	81	45
	Uni.	40	80	10	20
12. Develop tools for evaluating Dissertations.	Govt.	51	65.5	27	34.5
	Pri.	132	73.3	48	26.7
	Uni.	39	78	11	22

It is clear from the above table that all the items except Nos. 8 and 11 under the Area of Guidance in Research are regarded by all the three categories of teacher educators from Government, Private and University Teachers' Colleges as a part of their duty and their percentages are significant at .01 level. Item No.8 concerns providing guidance and help in the collection of data, processing and analysis of the data and interpretation etc. of the data. The percentages of teacher educators from Government Colleges who regard this item as their duty is not significant at .01 level, whereas those of teacher educators from Private Colleges and University Departments of Education are. It is really surprising that the teacher educators in Government Colleges do not perceive this item as a part of their duty. Probably it is due to the fact that the security of their jobs or frequent transfers from place to place has resulted in developing in them a sense of indifference to research.

Item No.11 relates to directing the work of printing, typing and binding of the dissertation. This item is perceived by 80% of the teacher educators working in the university Departments of Education as a part of their duty and this percentage is significant at .01 level. But teacher educators working in Government and Private Colleges do not regard this item as their duty because their percentages are not significant at .01 level.

V Organisational Responsibilities

Under this area of "Organisational Responsibilities", as many as thirteen items have been identified. The responses of 308 teacher educators are presented in the following table along with the chi-square values ai for all the 13 items of the category.

Table No.XIII

Showing the responses of Teacher Educators about the functions in organisational Responsibilities

* Shows the trends towards "Normally I do."
** Show the trend towards "I don't do and I feel a teacher educator should not be expected to do it."

S.No.	Functions	Normally I do	Occa-sionally I do	I do, but I believe that a teacher educator should not be expected to do it	I don't do but I believe a teacher educator should do it	I don't do and I believe that a teacher educator should not be expected to do it.	Chi-square	level of significance	Direction of trend
1.	Help in evolving admission Criteria.	125	70	11	58	21	143.961	.01	*
2.	Associate myself with the preparation of text books.	53	60	9	133	31	153.501	.01	*
3.	Guide and supervise school projects and experiments.	67	84	12	104	21	110.367	.01	*
4.	Contribute papers to educational journals.	71	109	8	83	12	141.362	.01	*
5.	Associate myself with the education officers in drawing up district level or state level development plans of education.	36	46	15	145	38	186.175	.01	*

6. Guide school complex programmes.	44	64 65	11	134	29	160.086	.01	*
7. Prepare plans for organising workshops, seminars or seminar reading programmes.	83	108	8	78 71	21 16	152.075	.01	*
8. Work as a resource person in workshops and seminars.	88	100	9	78	12	132.040	.01	*
9. Review my performance and work at the end of the session.	144	74	8	49	11	217.459	.01	*
10. Help in editing a professional journal.	86	72	15	94	21	95.366	.01	*
11. Participate in the deliberations of the faculty meetings and staff meetings.	128	83	13	36	11	187.651	.01	*
12. Prepare for & participate in the professional discussion in the meetings or conferences or committees outside the college.	93	96	11	56	14	124.775	.01	*
13. Cooperate with the visiting educationists and research workers and discuss their problems with them.	139	97	7	26	6	261.196	.01	*

From the table it is clear that all the 13 items show a positive trend towards "Normally I do". This is clear from the fact that in each case the total responses for the positive options (viz. 1,2 and 4) are much larger than the total responses for the negative options (viz. 3,5 and those who did not care to check the items concerned). All the items have values far higher than that required at .01 level (viz. 13.277). Thus we reject the 'equal response' hypothesis and conclude that our group really favours the positive aspects of all the propositions, i.e. the group as a whole regards all the items as their duty.

Let us now find out the exact number of teacher educators who perceive the various items of this area as their duty and those who do not regard them as their duty.

Table No.XIV

Percentage of Teacher Educators regarding the items of Organisational Responsibilities as their duty and as not their duty

S.No.	Organisational responsibilities	I No. perceiving as duty	II % of Col. I	III No. not perceiving as duty	IV % of III
1.	Review my performance and work at the end of the session.	267	86.7	41	13.3
2.	Work as a resource person in workshops and seminars.	266	86.4	42	13.6
3.	Contribute papers to educational journals.	263	85.4	45	14.6
4.	Prepare plans for organising workshops, seminars or seminar reading programmes.	262	85.1	46	14.9

5. Cooperate with the visiting educationists and research workers and discuss their problems with them.	262	85.1	46	14.9
6. Guide and supervise school projects and experiments.	255	82.8	53	17.2
7. Help in evolving admission criteria.	253	82.1	55	17.9
8. Help in editing a professional journal.	252	81.8	56	18.2
9. Participate in the deliberations of the faculty meetings and staff meetings.	247	80.2	61	~~18.18~~ 19.8
10. Associate myself with the preparation of text books.	246	79.9	62	20.1
11. Prepare for and participate in the professional discussion in the meetings or conferences or committees outside the college.	245	79.5	63	20.5
12. Guide school complex programmes.	243	78.9	65	21.1
13. Associate myself with the education officers in drawing up district-level or state-level development plans of education.	227	73.7	81	26.3

It is clear from the table given above that all the 13 items of the area of 'organisational responsibilities' are perceived by at least 73.7% teacher educators as their duty, the minimum percentage needed for significance at .01 level being 58 only.

There are three items which are not regarded as their duty by more than 20% teacher educators. These are the association of teacher educators in preparing district-level and state level educational plans, guiding school complex programmes, and participation in meetings of professional associations outside the college. Presumably, these teacher educators regarded duty in its strict official sense and not in the sense of 'moral obligation'.

Let us now study the perception of the various categories of teacher educators, viz. those belonging to the universities, Private Teachers' Colleges and Government Teachers' Colleges with regard to the various items of the area.

Table No. XV

Perceptions of the Teacher Educators belonging to Government Teachers' Colleges, Private Teachers' Colleges and Universities about the various items of the area of Organisational Responsibilities

S.No.	Functions	Categories of T.T. Colleges	No. perceiving as their duty	%	No. not perceiving as their duty	%
1.	Help in evolving admission criteria.	Govt.	58	74.1	20	25.9
		Pri.	153	~~83.1~~ 85	27	15
		Uni.	42	84	8	16
2.	Associate myself with the preparation of text books.	Govt.	59	75.3	19	24.7
		Pri.	144	80	36	20
		Uni.	43	86	7	14
3.	Guide and supervise school projects and experiments.	Govt.	59	75.3	19	24.7
		Pri.	151	83.8	29	16.2
		Uni.	45	90	5	10
4.	Contribute papers to educational journals.	Govt.	63	80.3	15	19.7
		Pri.	149	82.7	31	17.3
		Uni.	45	90	5	10
5.	Associate myself with the Education officers in drawing up district level development plans of education.	Govt.	52	66.7	26	33.3
		Pri.	135	75	45	25
		Uni.	40	80	10	20
6.	Guide school complex programmes.	Govt.	57	73.3	21	26.7
		Pri.	144	80	36	20
		Uni.	42	84	8	16
7.	Prepare plans for organising workshops and seminars.	Govt.	62	79.2	16	20.8
		Pri.	156	86.7	24	13.3
		Uni.	44	88	6	12
8.	Work as a resource person in workshops and seminars.	Govt.	66	84.2	12	15.8
		Pri.	154	85.5	26	14.5
		Uni.	46	92	4	8

9. Review my performance and work at the end of the session.	Govt.	64	82.1	14	17.9
	Pri.	157	87.2	23	12.8
	Uni.	46	92	4	8
10. Help in editing professional journals	Govt.	58	74.1	20	25.9
	Pri.	152	84.5	28	15.5
	Uni.	42	84	8	16
11. Participate in the deliberations of the faculty meetings and staff meetings.	Govt.	61	78.8	17	21.2
	Pri.	140	77.7	40	22.3
	Uni.	46	92	4	8
12. Prepare and participate in the professional discussions in the conferences outside the college.	Govt.	61	78.8	17	21.2
	Pri.	138	76.7	42	23.3
	Uni.	46	92	4	8
13. Cooperate with the visiting educationists and research workers and discuss their problems with them.	Govt.	60	77.0	18	23.0
	Pri.	155	86.2	25	13.8
	Uni.	47	94	3	6

Thus the percentage of all three categories of teacher educators who regard each item of the area of organisational responsibilities as their duty is higher than 66.3, the minimum needed for significance at .01 level being only 58%. The conclusion reached in the two preceeding tables is supported by this table also.

There are, however, a few items where the perception of the different categories of teacher educators differs to some extent. While only 66.3% of teacher educators from Govt. Teachers' Colleges regard their association with the education authorities in district level planning as their duty, 75% teacher educators of Private Teachers' Colleges

and 80% teacher educators from the universities do so.

The percentages of teacher educators from the universities who regard the various items of this area as their duty ranges from 84 to 94. This range is from 75% to 87.2% in the case of the teacher educators from Private Teachers' Colleges and from 66.3 to 84.2 % in the case of teacher educators from Government Teachers' colleges.

Negatively, ten out of thirteen items of the area are not recognised as their duty by more than 20% teaher educators of Government Teachers' Colleges. The association with the education authorities in preparing district level educational plans is not regarded as their duty by as many 33.7% teacher educators fromGovt. Teachers' Colleges, 25% teacher educators from Private Teachers' Colleges and 20% teacher educators from the universities.

These differences in perception are no doubt due to the fact that several items do not formally belong to the official duties assigned to the teacher educators. They may be regarded as their duties in a broad sense of moral obligation.

VI Curriculum Development

Under this sixth major category as many as thirteen functions of teacher educators were identified. The following table gives a summary of the responses of the teacher educators together with their chi-square values with their level of significance.

Table No.XVI

Showing the responses of teacher educators about the functions in curriculum development

* shows trend towards "Normally I do."
** Show the trend towards "I don't do and I believe a teacher should not be expected to do it"

S.No.	Functions	Normally I do.	Occasionally I do	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	Chi-Square	level of significance.	Direction of trend
1.	Study theories and principles of curriculum development, study the recommendations of commissions, committees and educationists about the aims and objectives of teacher education.	176	80	7	28	4	352.881	.01	*
2.	Study reports and observations about the defects & limitations of the teacher education programme in vogue.	169	98	2	20	5	362.359	.01	*
3.	Formulate or revise functional objectives of the part of the curriculum under development.	89	90	9	89	16	121.315	.01	*

4. Study various duties and responsibilities being performed by teachers in schools.	121	103	5	52	13	164.706	.01	*
5. Study the difficulties and problems faced by teachers after training.	109	113	5	58	9	184.226	.01	*
6. Assist in the selection of students for admission to the colleges and various faculties.	142	61	9	67	18	187.493	.01	*
7. Collect donations, contributions, information, etc. when needed.	71	56	12	42	107	85.853	.01	**
8. Maintain students' progress records and cumulative records.	121	43	10	90	51	135.098	.01	*
9. Look after the administrative affairs such as establishment, accounts, correspondence, etc.	83	53	12	41	9[illegible]	79.759	.01	*

10. Attend to student welfare activities, such as board, lodging, transportation, etc.	103	~~55~~ 65	13	66	40	75.137	.01	*
11. Acquaint pupil teachers with college conventions and traditions.	167	77	7	31	13	298.167	.01	*
12. Explain administrative difficulities, problems and limitations to student teachers.	141	95	5	26	24	227.605	.01	*
13. Advise students for offering specialised or optional courses.	154	106	6	30	7	290.015	.01	*

From the above table it is clear that all the thirteen items show a positive trend towards "Normally I do" because the chi-square values for all the items are significant at .01 level. Thus we can safely reject the 'equal response' hypothesis and conclude that the group really favours the positive aspects of all the propositions and regards all the items as its duty.

Let us now find out the percentages of the teacher educators who regard each item as a part of their duty and those who do not regard it as their duty.

Table No. XVII

Percentages of Teacher Educators regarding the items of 'Curriculum Development' as their duty and those regarding them as not their duty

S.No.	Functions	No. perceiving as duty	%	No. not perceiving as duty	%
1.	Advise students for offering specialised optional courses.	290	94.1	18	5.9
2.	Study reports and observations about the defects and limitations of the teacher education programme in vogue.	287	93.2	21	6.8
3.	Study theories and principles of curriculum development, study the recommendations of the commissions, committees and educationists about the aims and objectives of teacher education.	284	92.2	24	7.8

4. Study the difficulties and problems faced by the teachers after training.	280	90.9	28	9.1
5. Look after the administrative affairs such as establishment, accounts, correspondence, etc.	177	57.5	131	42.5
6. Study various duties and responsibilities being performed by teachers in schools.	276	89.6	32	10.4
7. Acquaint pupil teachers with college conventions and traditions.	275	89.3	33	10.7
8. Assist in selection of students for admission to the colleges and various faculties.	270	87.7	38	12.3
9. Collect donations, contributions, information etc. when needed.	169	54.5	139	45.5
10. Formulate or revise functional objectives of the part of the curriculum under development.	268	87.0	40	13.0
11. Explain administrative difficulties, problems and limitations to student teachers.	262	85.1	46	14.9
12. Maintain students' progress records and cumulative records.	259	84.1	49	15.9
13. Attend to student welfare activities as such as board, lodging, transportation, etc.	234	75.9	74	24.1

It is evident from the above table that eleven out of thirteen items listed under the area of curriculum development are perceived by the teacher educators as their duty. The percentages in favour of the propositions range from 75.9% to 94.1%. These percentages are significant at .01 level. More than 90% of the teacher educators regard the following items as their duty: advising students for offering specialised optional courses, studying reports and observations about the defects and limitations of the teacher education programme, studying theories and principles of curriculum development and trying to be in touch with the difficulties and problems faced by the teachers after training. Studying various duties and responsibilities performed by teachers in schools, acquainting pupil teachers with college conventions and traditions, providing assistance in the selection of students for admission to the college and various faculties, formulating or revising the functional objectives of the curriculum under development, explaining administrative difficulties, problems and limitations to student teachers, and maintenance of students' progress records, etc. are perceived by 84% to 90% of teacher educators as their duty. Attending to student welfare activities is regarded by 75.9% teacher educators as their duty. There are two items, viz., collecting donations, contributions, information, etc. when needed and looking after establishment, accounts, correspondence, etc. where the percentages of teacher educators regarding them as their duty is not significant at .01 level.

Let us now study the perceptions of teacher educators from the universities, government and private teachers' colleges about each item of the area of curriculum development.

Table No. XVIII

Perceptions of Teacher Educators working in Universities, Government and Private Teachers' Colleges about the various items of curriculum development

S. No.	Functions	Categories of T.T. colleges	No. perceiving as their duty	%	No. not perceiving as their duty	%
1.	Study theories and principles of curriculum development, study the recommendations of commissions about the aims of teacher education.	Govt. Pri. Uni.	68 168 48	87.2 93.3 96	10 12 2	12.8 6.7 4
2.	Study reports and observations about the defects and limitations of the teacher education programme in vogue.	Govt. Pri. Uni.	67 173 47	85.5 96.1 94	11 7 3	14.5 3.9 6
3.	Formulate or revise functional objectives of the part of the curriculum under development.	Govt. Pri. Uni.	62 160 46	79.9 88.8 92	16 20 4	20.1 11.2 8
4.	Study various duties and responsibilities being performed by teachers in schools.	Govt. Pri. Uni.	69 161 46	88.8 89.4 92	9 19 4	11.2 10.6 8
5.	Study the difficulties and problems faced by teachers after training.	Govt. Pri. Uni.	65 163 47	83.3 90.5 94	13 17 3	16.7 9.5 6
6.	Assist in the selection of students for admission to the colleges and various faculties.	Govt. Pri. Uni.	62 161 47	79.5 89.4 94	16 19 3	20.5 10.6 6
7.	Collect donations, contributions, informations. etc. when needed.	Govt. Pri. Uni.	45 103 21	57.7 57.2 42	33 77 29	42.3 42.8 58

8. Maintain students' progress records and cumulative records.	Govt. Pri. Uni.	55 162 42	70.1 90 84	23 18 8	29.9 10 16
9. Look after the administrative affairs such as establishment, accounts, correspondence, etc.	Govt. Pri. Uni.	46 102 29	58.8 56.6 58	32 78 21	41.2 43.4 42
10. Attend to student welfare activities, such as, board, lodging, etc.	Govt. Pri. Uni.	55 142 37	70.1 78.8 74	23 38 13	29.9 21.2 26
11. Acquaint pupil teachers with college conventions and traditions.	Govt. Pri. Uni.	64 165 46	82.2 90.1 92	14 15 4	17.8 9.9 8
12. Explain administrative difficulties, problems, etc. to the pupil teachers.	Govt. Pri. Uni.	64 153 45	82.2 85 90	14 27 5	17.3 15 10
13. Advise students for offering specialisation or optional courses.	Govt. Pri. Uni.	69 174 47	88.5 96.6 94	9 6 3	11.5 3.4 6

All the three categories of teacher educators regard eleven out of thirteen items as their duty, their percentages being significant at .01 level. There are, however, two items, viz. collecting donations, contributions, informations etc. when needed and looking after the administrative affairs such as establishment, accounts, correspondence, etc. where the percentage of teacher educators of all categories individually who regard them as their duty is not significant at .01 level. We may thus conclude that only eleven out of thirteen items of this area are regarded as their duty by all the teacher educators belonging to the universities, government Teachers' Colleges and Private Teachers' Colleges.

VII. Professional Growth and Professional Leadership

As many as fourteen possible functions of teacher educators were identified in this area of professional growth and professional leadership. The following table gives the responses of all the 308 teacher educators to each item, along with their chi-square values and their levels of significance.

Table No. 4.15

Showing the responses of teacher educators about the functions in Professional Growth and Professional Leadership

* Shows trend towards 'Normally I do'.
** Show trend towards 'I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it'.

S.No.	Functions	Normally I do	Occasionally I do	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it	I don't do but I believe a teacher educator should do it	I don't do & I believe a teacher educator should not be expected to do it	Chi-square	Level of significance	Direction of trend
1.	Keep myself [in touch] with the changes & innovations in education in my special field through reading research journals, books and periodicals.	227	55	4	9	5	611.204	.01	*
2.	Keep myself well informed about the changes in the administrative structure, activities and programmes of school education and teacher education.	208	66	4	18	3	502.985	.01	*

3. Keep in touch with the activities and educational programmes of the agencies such as secondary education board, Education Dept., University concerned, UGC., NCERT, S.I.E., etc.	185	65	3	23	4	40[illegible].004	.01	*
4. Try to understand school problems through surveys and research projects.	108	98	5	72	13	154.09[illegible]	.01	*
5. Acquaint teachers and headmasters with the innovations in methodology and teaching.	105	97	9	71	15	137.021	.01	*
6. Give expert assistance to school staff in solving their problems by preparing model lessons and unit plans, supervising school work and academic progress, etc.	94	92	6	69	17	1[illegible]0.622	.01	*
7. Select and organise curriculum items.	97	75	1	96	25	12[illegible].060	.01	*
8. Suggest teaching learning situations.	115	96	7	58	13	161.225	.01	*

9. Determine priorities to be given to each item in the curriculum.	119	83	4	69	25	144.21.	.01	*
10. Examine the existing curiculum critically.	129	108	6	40	11	217.256	.01	*
11. Select and prepare a list of books for intensive study and reference.	151	96	7	34	5	274.252	.01	*
12. Recommend to the Principal to provide for equipment and material facilities.	128	111	5	36	11	226.989	.01	*
13. Undertake research work to assess the needs and interests of the children.	72	81	8	115	17	139.151	.01	*
14. Discuss curriculum items with the colleagues.	120	126	6	34	7	244.330	.01	*

From the table it is clear that all the fourteen items of the area show a positive trend towards 'Normally I do' with a chi-square value which is much higher than the minimum needed for significance at .01 level, viz. , 13.277. So we can safely reject the equal response hypothesis and conclude that our group of 308 teacher educators regards all the 14 items as their duty.

Let us now find out the percentages of teacher educators who regard ~~regard~~ each item as a part of their duty and those who do not regard it as their duty.

Table No.XX

Percentages of Teacher Educators who regard the various items of the area of Professional Growth and Professional Leadership as their duty or not as their duty

S.No.	Professional Growth and Professional Leader-ship	No. perceiving as their duty	%	No. not perceiving as their duty	%
1.	Keep in touch with the activities and educational programmes of the agencies such as secondary education Board, Education Department University concerned, U.G.C., NCERT, S.I.E., etc.	293	95.1	15	4.9
2.	Keep myself well informed about the changes in the administrative structure, activities and programme of school education and teacher education.	292	94.8	16	5.2
3.	Keep myself in touch with changes and innovations in education in my special field through reading research journals, books and periodicals.	291	94.5	17	5.5

4. Select and prepare list of books for intensive study and reference.	281	91.2	27	8.8
5. Discuss curriculum items with colleagues.	280	90.9	28	9.1
6. Try to understand school problems through surveys and research proj ects.	278	90.2	30	9.8
7. Give expert assistance to school staff on solving their professional problems by preparing model lesson and unit plans, supervising school work and academic progress.	275	89.3	33	10.7
8. Examine the existing curriculum critically.	277	89.9	21	10.1
9. Recommend to the Principal to provide for equipment and material facilities.	275	89.3	33	10.7
10. Acquaint teachers and headmasters with the innovations in methodology and teaching.	273	88.6	35	11.4
11. Determine priorities to be given to each item in the curriculum.	271	87.9	37.	12.1
12. Suggest teaching learning situations.	269	87.3	39	12.7
13. Select and organise curriculum items.	268	87.0	40	13.0
14. Undertake research work to assess the needs and interests of the children.	268	87.0	40	13.0

It is clear from the table that all the 14 items of the area are perceived as their duty by between 87 and 95% teacher educators, the minimum percentage needed for significance at .01 level being only 58.

What is surprising is that a small percentage of teacher educators, although this percentage is not statistically significant, should not regard as their duty even such items as selecting and organising curriculum items, examining the existing curriculum critically, ~~examining~~ selecting and preparing lists of books for intensive study and reference, etc. They may have done so because these are not the ordinary day-to-day routine of functions that the teacher educators are expected to perform.

We shall now study the perceptions of our three categories of teacher educators about the various items of this area of Professional Growth and Professional Leadership The following table summarises the responses of each category of our teacher educators to various items of the area.

Table No.XXI

Perceptions of Teacher Educators belonging to Government Teachers' Colleges, Private Teachers' Colleges and Universities about the various items of the area of Professional Growth and Professional Leadership

S.No.	Functions	Catego-ries of Colleges	No.perceiving as their duty	%	No.not perceiving as their duty	%
1.	Keep myself in touch with the changes and innovations in education in my special field through reading research journals, books and periodicals.	Govt. Pri. Uni.	70 173 48	89.9 96.1 96	8 7 2	10.1 3.9 4
2.	Keep myself well informed about the changes in the administrative structure, activities and programmes of school education and teacher education.	Govt. Pri. Uni.	70 173 49	89.9 96.1 98	8 7 1	10.1 3.9 2
3.	Keep in touch with the activities and educational programmes of the agencies such as secondary education board, Education Dept., University concerned, UGC., NCERT., S.I.E.,etc.	Govt. Pri. Uni.	70 174 49	89.9 96.6 98	8 6 1	10 3.4 2
4.	Try to understand school problems through surveys and research projects.	Govt. Pri. Uni.	66 163 49	84.2 90.5 98	12 17 1	15.8 9.5 2
5.	Acquaint teachers and headmasters with the innovations in methodology and teaching.	Govt. Pri. Uni.	62 166 45	79.2 92.2 90	16 14 5	20.8 7.8 10
6.	Give expert assistance to school staff in solving their professional problems by preparing model lesson and unit plans, supervising school and academic progress, etc.	Govt. Pri. Uni.	63 167 45	80.3 92.7 90	15 13 5	19.7 7.3 10
7.	Select and organise curriculum items.	Govt. Pri. Uni.	66 163 46	84.2 90.5 92	12 17 4	15.8 9.5 8

8. Suggest teaching learning situations.	Govt.	65	83.1	13	16.9
	Pri.	157	87.5	23	12.5
	Uni.	46	92	4	8
9. Determine prioritiesto be given to each item in the cirriculum.	Govt.	67	85.3	11	14.7
	Pri.	156	86.6	24	13.4
	Uni.	46	92	4	8
10. Examine the existing cirriculum critically.	Govt.	68	87.7	10	12.3
	Pri.	155	86.1	25	13.9
	Uni.	48	96	2	4
11. Select and prepare the lists of books for intensive study and reference.	Govt.	68	87.7	~~20~~ 10	12.3
	Pri.	157	87.2	23	12.8
	Uni.	49	98	1	2
12. Recommend to the Principalto provide for equipment and material facilities.	Govt.	66	84.6	12	15.4
	Pri.	168	93.3	12	6.7
	Uni.	47	94	3	6
13. Undertake research work to assess the needs and interests of the children.	Govt.	60	~~74.4~~ 77	18	~~25.6~~ 23
	Pri.	158	87.7	22	12.3
	Uni.	50	100	0	0
14. Discuss curriculum items with colleagues.	Govt.	62	79.4	16	20.6
	Pri.	158	97.7	22	12.3
	Uni.	50	100	0	0

From the table it is clear that all the functions of this area are recognised as their duty by at least 74.4% teacher educators of all categories, the minimum percentage required (in the case of the teacher educators belonging to Private Teachers' Colleges) being 60 for significance at .01 level. Most of the functions are perceived as their duty by between 80 and 100% teacher educators.

Thus from all the three tables in this area it may be safely concluded that all the 308 teacher educators as a whole and the various categories of teacher educators generally regard all the items of the area as their duty.

VIII Guidance and Participation in Co-Curricular Programmes

As many as fourteen functions of teacher educators were identified under the area of Guidance and Participation in Co-curricular Programmes. The following table gives a summary of the responses of the teacher educators together with their chi-square values at .01 level of significance.

Table No. XIII

Showing the responses of teacher educators about the functions in Guidance and Participation in Co-Curricular Programmes

* Shows trends towards "Normally I do."
** Show trend towards "I don't do, and I believe a Teacher educator should not be expected to do it"

S.N.	Functions	Normally I do	Occasi-onally I do	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it	Chi-Square	Level of Signifi-cance	Direc-tion of trend
1.	Prepare programme for co-curricular activities.	135	95	5	43	14	210.052	.01	*
2.	Decide the nature and the Scope of the co-curricular activities.	132	86	6	49	17	185.635	.01	*
3.	Guide and counsel pupil teachers to choose and participate in a co-curricular activity.	134	92	7	52	9	205.515	.01	*
4.	Assist the Principal in assessing the facilities available and needed for organising co-curricular programmes.	130	89	6	52	10	194.698	.01	*

5. Lelp and advise students for drawing out the plan and targets for the session.	118	85	7	66	13	156.082	.01	*
6. Guide students in planning the budget proposals and fixing targets for the session.	86	65	7	84	49	72.085	.01	*
7. Suggest to the students the appropriate literature or person or source for improving participation in co-curricular activity.	88	115	5	59	25	137.793	.01	*
8. Participate in co-curricular programme.	139	86	7	47	12	209.324	.01	*
9. Lelp and guide students in selection and screening the items of the co-curricular activities.	105	103	10	58	14	146.102	.01	*
10. Guide the students in correspondence work, obtaining material, accommodation etc. needed.	79	90	7	71	39	80.291	.01	*

11. Observe pupil teachers' performance in the co-curricular activity to diagnose their handicaps and limitations and suggest remedial steps.	109	93	7	57	24	130.756	.01	*
12. Identify the qualities of pupil teachers to provide scope for growth.	110	95	7	65	13	158.428	.01	*
13. Guide students in evaluating the organisation of the activity.	91	89	11	79	20	105.928	.01	*
14. Prepare a report of the programme to improve its quality.	77	86	4	89	28	104.151	.01	*

From the above table it is clear that all the fourteen items under this category show a positive trend towards "Normally I do" as the chi-square values of all the items are significant at .01 level. Thus we can safely reject the 'equal response' hypothesis and conclude that the group really favours the positive aspects of all the propositions and regards all the items as its duty.

Let us now find out the percentages of teacher educators who regard each item as a part of their duty and those who do not regard it as their duty.

Table XXIII

Percentages of Teacher Educators regarding the items of Guidance and Participation in Co-Curricular Programmes as their duty and those regarding them as not their duty

S.No.	Guidance and participation in Co-curricular Programme.	No. Perceiving as their duty	%	No. not perceiving as their duty	%
1.	Prepare programme for co-curricular activities.	273	88.6	35	11.4
2.	Decide the nature and scope of the co-curricular activities.	269	87.3	39	12.7
3.	Guide and counsel pupil teachers to choose and participate in a co-curricular activity.	278	90.2	30	9.8
4.	Assist the Principal in assessing the facilities available and needed for organising co-curricular programmes.	271	87.9	37	12.1
5.	Help and advise students for drawing out the plan and targets for the session.	269	87.3	39	12.7

6. Guide students in planning the budget proposal and fixing targets for the session.	235	76.3	73	23.7
7. Suggest to the students appropriate literature or person or source for improving participation in co-curricular activity.	262	85.1	46	14.9
8. Participate in the co-curricular programmes.	272	88.3	36	11.7
9. Help and guide students in selection and screening the items of co-curricular activities.	266	86.4	42	13.6
10. Guide the students in correspondence work, obtaining material, accommodation, etc. needed.	240	77.9	68	22.1
11. Observe pupil teachers' performance in the co-curricular activity to diagnose their handicaps and limitations and suggest remedial steps.	259	84.1	49	15.9
12. Identify the qualities of pupil teachers to provide scope for growth.	270	87.7	38	12.3
13. Guide students in evaluating the organisation of the activity.	259	84.1	49	15.9
14. Prepare a report of the programme to improve its quality.	252	81.8	56	18.2

It is evident from the above table that all the fourteen items under the area of Guidance and Participation in Co-curricular Programmes are perceived by teacher educators as their duty, the propositions being significant at .01 level. The highest percentage is 90.2% which concerns the teacher educators' duty of providing guidance and counselling to pupil teachers to choose and participate in a co-curricular activity whereas the lowest percentage is 77.9% and this relates to providing guidance to the students in correspondence work, obtaining material, accommodation, etc. The rest of the items are perceived by between 81% and 89% teacher educators as a part of their duty.

Let us now study the perception of teacher educators from the universities, Government and Private Teachers' Colleges about each item of the area of Guidance and Participation in Co-curricular Programme.

Table XLIV

Perceptions of Teacher Educators working in Universities, Government and Private Teachers Colleges about the various items of Guidance and Participation in co-curricular programmes

S. No.	Functions	Category of T. T. colleges	No. perceiving as their duty	%	No. not perceiving as their duty	%
1.	Prepare programme for co-curricular activities.	Govt.	58	74.4	20	25.6
		Pri.	159	88.3	21	11.7
		Uni.	46	92	4	8
2.	Decide the nature and scope of the co-curricular activities.	Govt.	64	82.2	14	17.8
		Pri.	162	90.~~18~~	18	10
		Uni.	43	86	7	14
3.	Guide and counsel pupil teachers to choose and participate in a co-curricular activity.	Govt.	67	85.4	11	14.6
		Pri.	163	90.5	17	9.5
		Uni.	48	96	2	4
4.	Assist the Principal in assessing the facilities available and needed for organising co-curricular programmes.	Govt.	67	~~85.4~~ 85.9	11	~~14.6~~ 14.1
		Pri.	159	88.3	21	11.7
		Uni.	45	90	5	10
5.	Help and advise students for drawing out the plan and targets for the session.	Govt.	66	84.6	12	15.4
		Pri.	158	~~87.7~~ 93.3	12	~~12.3~~ 6.7
		Uni.	45	90	5	10
6.	Guide students in planning the budget proposals and fixing targets for the session.	Govt.	55	70.2	23	29.3
		Pri.	142	78.8	38	21.2
		Uni.	38	76	12	24
7.	Suggest to the students appropriate literature or person or source for improving participation in co-curricular activity.	Govt.	63	80.2	15	19.7
		Pri.	165	91.6	15	8.4
		Uni.	34	68	16	32
8.	Participate in the co curricular programme.	Govt.	67	85.4	11	14.6
		Pri.	157	87.2	23	12.8
		Uni.	45	90	5	10

9. Help and guide students in selection and screening the items of the co-curricular activities.	Govt.	64	82.2	14	17.8
	Pri.	158	87.7	22	12.3
	Uni.	44	88	6	12
10. Guide the students in correspondence work, obtaining material, accommodation etc. needed.	Govt.	59	75.3	19	24.7
	Pri.	142	78.8	38	21.2
	Uni.	39	78	11	22
11. Observe pupil teachers' performance in the co-curricular activity to diagnose their handicaps and limitations and suggest remedial steps.	Govt.	56	71.3	22	28.7
	Pri.	151	83.8	29	16.2
	Uni.	42	84	8	16
12. Identify the qualities of pupil teachers to provide scope for growth.	Govt.	67	79.2	16	20.8
	Pri.	163	90.5	17	9.5
	Uni.	45	90	5	10
13. Guide students in evaluating the organisation of the activity.	Govt.	63	80.3	15	19.7
	Pri.	151	83.8	29	16.2
	Uni.	45	90	5	10
14. Prepare a report of the programme to improve its quality.	Govt.	61	78.8	17	21.2
	Pri.	149	82.7	31	17.3
	Uni.	42	84	8	16

It is clear from the table given above that all the three categories of teacher educators working in Government and Private Teachers' Colleges and University Departments of Education regard each item of the area of Guidance and Participation in Co-curricular programmes as their duty as the columns in each case show a higher percentage than required at .01 level of significance. Most of the functions are perceived as their duty by more than 80 percent of teacher educators.

From an analysis of the data in this chapter, we have found that almost all the functions of teacher educators located under the eight areas are accepted as their duties by all the three categories of teacher educators from Government and Private Secondary Teachers' Colleges and from the University Departments of Education. This acceptance has been statistically found significant at .01 level. It has been interesting to find that there is always a small number of teacher educators (statistically insignifiant) who deny almost every item to be a part of their duty, but some of these functions are expected to be universally acceptable, e.g. teaching the concepts of lesson plans and unit plans, giving demonstration lessons, prepari g or using a tool for observation of teaching, etc.

C H A P T E R IV

Views about the Duties of Teacher Educators and Observation of their Actual Programmes

The two research assistants visited 15 teachers colleges of some standing in the three states of Rajasthan, Panjab and Madhya Pradesh, five in each state. They interviewed altogether 15 principals of teachers colleges, 50 teacher educators, 50 student-teachers and 20 secondary school headmasters. The main purpose of the visits and interviews was to collect questionnaires to verify responses and to get the opinions of the persons concerned about the various duties and responsibilities of teacher educators.

One of the research assistants attended the First Asian Conference on Teacher Education held at Bangalore in the middle of June, 1971 and interviewed some of the eminent educationists who had gathered there to attend the conference. At a later stage of the investigation, the other research assistant also approached four educationists of some repute and collected their views with regard to the various duties and responsibilities of teacher educators.

Almost all the educationists agreed that teacher educators should change the stereotyped methods and techniques of teaching in consonance with the changing social order. In class-room teaching the predominance of lecture should be reduced to the minimum and more emphasis should be laid on discussions, seminars, assignments and other techniques of small group instruction. The teacher educators should make thorough preparation of the subject matter, divide the subject into units and circulate outlines of the topics to the student teachers.

As regards student teaching the consensus of opinion centred round the necessity of orientation programmes and demonstration lessons before the student teaching actually began. Some of the educationists laid stress on the familiarity of the student teachers with school environment and needs of the children. They should be properly initiated in the technique of lesson planning. One educationist was of the opinion that guidance and supervision of the lessons should be done by subject specialists only. Each lesson should be properly discussed and student teachers should be advised to incorporate the suggestions in the next lesson. Another educationist suggested that student teaching programme should be developed in collaboration with the headmasters of practising schools.

About tutorials, all the educationists agreed that it should form one of the essential duties of teacher educators. The purpose of tutorials should be to pay individual attention to students and to improve their academic competence. Discussions should be held on materials handled in big classes as well as on assiggments given to the students. As regards the composition of the tutorials, there was no unanimity of opinion. The number might vary from 10 to 20. They, however, agreed that tutorial groups should be organised on the basis of the interests of the students and attended to by the teacher educators by rotation.

In order to equip the student teachers with the skill and resourcefulness to organise co-curricular activities in the schools the educationists opined that these should be arranged around curricular programmes. Both the teacher educators and the student teachers should draw schemes for the organisation of such activities jointly and devise ways and means for their implementation.

As regards the area of guidance in research, the educationists suggested that the teacher educators' duty was to initiate and train the students in the methodology of research so that they might be able to collect data, analyse it and reach appropriate conclusions. With a proper understanding of the academic background and competence of the research worker, the teacher educator should suggest suitable literature for locating and attacking a problem and guide and supervise his work at different levels of the progress of the research work.

To be a successful teacher educators, it was essential, the educationists felt, that they should read widely, keep themselves in touch with the current educational research and publications, write articles in the area of their interest, undertake investigations into various problems of education, attend well-conducted seminars and conferences. These activities are conducive to their professional growth and provide opportunities for professional leadership.

As regards curriculum development, the teacher educators' duty was to do constant thinking on the needs of the community, to study the curriculum changes in India and abroad and to make frequent evaluation of the curricular programmes in the light of their own experiences.

As non-participant observers, they also observed 25 classroom lectures, 15 periods of guidance in lesson planning, 10 tutorials, 10 periods of guidance in research and 10 curricular programmes.

From the small amount of actual observation made, it is not possible to draw any valid or reliable conclusions about the actual performance by teacher educators of the various functions which they theoretically perceive as their duties. The replies of the teacher educators at the time of the interviews are not very different from their written responses in the questionnaires, although quite a few of them admitted privately that they did not perform 50% of the functions which they have accepted as their duty in writing.

There was another serious limitation to the observation made by the research assistants. In observing a lecture period or period meant for guidance in lesson planning, all the aspects of the relevant fields could not possibly come up. Indeed, only two or three aspects could be observed about each area during a period. So it is not possible to compare what the teacher educators actually did with what they believed to be their duty. So the observations about the performance of the teacher educators may be regarded as isolated examples and not as a general practice of what the techer educators as a group normally do.

Student Teaching

Fifteen periods were observed when the teacher educators were guiding the trainees in lesson planning. Six lecturers were discussing the theoretical aspects of the school subjects, the division of the syllabus into units, need of planning lessons, etc.; five presented model lesson plans and discussed these with the trainees, and four were actually correcting the lesson plans prepared by the students.

All the three aspects are important, but it could not be ascertained, through observation, how effectively lessons are guided, improved and supervised. Indeed, what the lecturers regarded as their duty, but did not do was beyond the scope of actual observation.

Theory Lectures

Twentyfive lecture periods were observed. Fifteen lecturers had notes before them out of which they read extensively and occasionally dictated portions. Five of these got annoyed when any questions were asked or any explanations were demanded by the trainees. Five lecturers discussed various problems, but most of them did not seem to have prepared their lectures and repeated very general and commonly known facts.

Tutorials

Out of ten tutorial classes, observed, only three appeared to be engaged in something worthwhile. The trainees read the essays written by them earlier for discussion by the group and the lecturer. The remaining classes had a kind of entertainment like songs,gossips or tea.

Guidance in Research

Ten periods where the staff were supposed to guide research work at the M.Ed. level were observed. These were not regular classes attended by groups of students. Students in ones or twos came and sought clarification about certain points in their dissertations. In three classes, students sought clarification about the scope of their dissertation topics, in two classes they needed help in selecting a suitable topic and the lecturer

gave the few points to be borne in mind - about the time factor, availability of the data required, etc.; in five classes the students reported satisfactory progress and the periods were spent in general discussion or the students went to work in the college library with the permission of the lecturer.

Participation in Cocurricular Activities

Ten cocurricular programmes in all were observed - three games, two debates, 2 poetry recitation, one social 'get-together' and two light music. The programmes were organised by the students with whatever help that they might have needed ~~xxx~~ from the lecturers at the planning stage.

Thus the data, obtained from observation, about the duties actually performed by teacher educators during their normal working hours in the college is not very illuminating. On its basis we are not in a position to conclude anything about what duties teacher educators perform and what duties they do not perform. We can get only a general idea about what actually went on in the individual classes that were actually observed.

The Views of Teachers' College Principals, Headmasters and Trainees on Student Teaching

All the 15 teachers' college principals, 20 school headmasters and 50 student teachers who were interviewed agreed about the importance of the 'Orientation Programme' before the practice lessons in schools. This must be an important part of the duty of all teacher educators. They, however, differed about the duration of this programme. The duration suggested by them ranged from one to three weeks.

All the 15 teachers' college principals wanted demonstration lessons, but 9 of them felt that these should be given by experienced school teachers. This feeling was no doubt due to the fact that most of the teacher educators in teachers' colleges have no teaching experience and cannot give effective demonstration lessons.

All the twenty headmasters interviewed also regarded demonstration lessons by teachers' college staff as an important part of their duty.

While all the fifty student teachers also regarded demonstration lessons as important, but wanted greater mastery of subject matter and greater emphasis on actual classroom situations on part of teacher educators giving. This indicates that in the opinion of the trainees, some teacher educators were not well up in the subjects they taught and that some lessons were not related to actual classroom situations.

With regard to the guidance on lesson planning and in the supervision of practice teaching nearly fifty percent student teachers felt that they were not effectively done.

Theory Teaching

All the principals of the training colleges and the headmasters of the schools expressed their dissatisfaction with the way theory teaching was handled in training colleges. Predominance of lecture method in theory teaching was the root cause of the evil. The majority of the principals and the headmasters suggested that teacher educators should adopt different methods and techniques for initiating the student teachers in the theoretical side of training. Some of the methods and techniques suggested were lectures followed by seminars, and tutorials, written assignments, depth study and team teaching. While three principals of training colleges were of the views that teacher educators should teach different papers by rotation, two of them suggested that each lesson should start with testing questions of five minutes' duration and be followed by teacher educator's providing a brief summary or synopsis along with references at the end.

Most of the headmasters who were interviewed were of the opinion that the teacher educators should be familiar with evaluation techniques and they should take recourse to only those methods in theory teaching which were of practical utility.

Tutorials

Almost all the principals of training colleges, headmasters of the schools and teacher trainees agreed about the efficacy of tutorials in the teacher education programme. They regarded tutorials as one of the important duties of teacher educators. However, they differed about the duration of the programme. Some of them suggested that tutorials should be held at least once a week while others thought it proper to hold tutorials once a month only.

In the opinion of the principals the purpose of the tutorials was to pay individual attention to the student teachers and remove their difficulties. As regards actual performance of tutorials in their colleges, eight principals confessed that tutorials were not held in their institutions. Wherever tutorials were actually held, the practice followed was to give topics to the student teachers and then discuss them in the group.

All the headmasters also regarded tutorials as a part of teacher educators' duties, while only 39 out of 50 student teachers considered it as the duty of the teacher educators. Of the 50 student teachers interviewed, 39 admitted that there was no provision for tutorials in their institutions. Where tutorials were actually held, paper reading and discussions were followed by tea and song.

Guidance in Research

Guidance in Research was regarded by all the college principals and school headmasters as an important duty of the teacher educators. It was expected that they were fully conversant with the latest researches in the field of education. With this background they would be able to help the students at every stage of the progress of the research work. It was their duty, the principals of training colleges and headmasters of the schools suggested, to help the students in locating the problems, in preparing tools and in collecting, processing, analysing and interpreting the data. For this purpose they should organise workshops and seminars frequently.

As regards the duty of the teacher educators undertaking research works themselves, opinion of the principals and the headmasters varied. Two principals of the training colleges and two headmasters of the schools said that it was not expected of the teacher educators to undertake research work. For this purpose, there should be separate staff, they suggested.

Curriculum Development

All the training colleges principals and the headmasters of the schools agreed that it was the duty of the teacher educators to work for the improvement of the curriculum. At the end of every academic session they should suggest changes in the existing curriculum in the light of their experiences. For this purpose, however, they should remain in touch with the changes taking place in the field of curriculum planning in India and abroad.

Professional Growth and Professional Leadership

All the 15 college principals and the 20 secondary school headmasters agreed that teacher educators should keep in touch with current educational research and publications, write articles, attend workshops, seminars and educational conferences, take part in in-service programmes, become members of professional organisations and take interest in the activities of old boys associations and alumni associations.

Guidance and Participation in Co-curricular Programmes

All the 15 college principals, 20 school headmasters and 50 pupil teachers who were interviewed by the research assistants agreed that it was the duty of the teacher educators to provide guidance to the pupil teachers in organising co-curricular programmes. They also suggested that the educators should take part in these programmes.

As regards the role of teacher educators in organising these activities, 9 principals wanted that teacher educators should bear major share of responsibility, whereas the other six were of the opinion that the teacher educators should simply provide guidance and the whole responsibility for organising these programmes should be the concern of a few trainees selected on the basis of their performance and organising skill.

The opinion of the headmasters was quite different from those of the principals. The teacher educators' duty was, the headmasters agreed, to help the trainees in organising the co-curricular programmes, because they were the persons who would be expected to organise such activities when they go to their respective schools.

Thirty-three out of 50 pupil teachers interviewed also wanted the teacher educators simply to guide them while the actual organisation should be in their own hands.

Thus the views of the educators, teachers' college principals, school headmasters, etc. about the duties of teacher educators and the observation of the actual programmes carried out by the teacher educators have not revealed much beyond what is a matter of common knowledge. They have, however, brought out very clearly, the big gap between what is desirable and what is actually happening. Most of the teacher educators are not performing well, on their own admission, even fifty per cent of their normal duties and responsibilities. This is no doubt partly due to their defective programme at the M.Ed. level.

C H A P T E R V

Review of the Existing Courses in "Teacher Education" in various universities

We wrote to all the universities in India which have an Education Department and offer courses at the B.Ed. and M.Ed. levels for a copy of their M.Ed. syllabuses. Only twentyfive universities responded, out of which only the following offer "Teacher Education" as an optional course at the M.Ed. level.

1. Sardar Patel University, Vallabh Vidyanagar.
2. Kurukshetra University, Kurukshetra.
3. Vishwa Bharati, Shantiniketan.
4. Vikram University, Ujjain.
5. Delhi University, Delhi.
6. M.S. University, Baroda.
7. University of Kashmir, Srinagar.
8. Jiwaji University, Gwalior.
9. University of Indore, Indore.
10. Jamia Millia Islamia, New Delhi.
11. University of Udaipur, Udaipur.

The M.Ed. syllabus prepared by the National Association of Teacher Educators was also studied.

The M.Ed. syllabus generally consists of two or three compulsory papers and three or two optional papers to be chosen from one or two special fields, like Educational Psychology,

Educational Planning, Administration and Finance, Teacher Education, Guidance and Counselling, etc. In several M.Ed. syllabuses, "Teacher Education" area has a single paper, while in others it has a number of papers, two to five, out of which a candidate has to select one or two papers, if he has to specialise in this area. In addition to five theory papers each candidate has to write a dissertation on a topic selected from his field of specialisation, to develop a deeper insight into the problems of his special area. There is also a viva-voce examination covering not only the dissertation but also the theory papers offered by the candidates.

In this investigation we are not concerned with the general pattern of the M.Ed. course in different universities, but with the syllabuses of the special area of 'Teacher Education' which is optional.

Very few syllabuses of the teacher education course discuss the aims and objectives of the course or the various papers in this special area. Some of the main objectives of the teacher education course, according to the various syllabuses are as follows:-

1. "To educate teacher-educators for pre-service and in-service teacher education".
2. To provide "for intensive study of important issues and problems faced in the preparation of teachers both for primary and secondary schools".
3. "To equip him to work as a teacher educator" (This is too vague and means more or less the same as No. 1 above)

4. "To acquaint the student teachers with the new ideology, principles and practices in teacher-education at different levels". (This plans to give a theoretical knowledge of the items of No. 2 above)

Probably the best discussion of the objectives of the various papers of the field of teacher education has been given in the M.Ed. syllabus prepared by the National Association of Teacher Educators at its Eigth Conference. Some universities (e.g. the University of Udaipur) have copied these objectives with minor changes of a few words or phrases here and there. According to the NATE syllabus, the objectives of the "Teacher Education Course" are:

The field of 'Teacher Education' consists of four papers, viz.,

(i) Basic Paper on Teacher Education.

(ii) Organisation and Administration of a Secondary Teacher Education Institution or an Elementary Teacher Education Institution.

(iii) Teaching methods in one subject-matter field.

(iv) Inservice Education of Teachers and Teacher Educators.

The aims of the Basic Paper on Teacher Education are:

(i) to make a study of the changing concepts of teacher education during the various periods of educational development in this country,

(ii) to acquaint the trainees with the teacher education programmes at all levels,

(iii) to develop awareness of the problems of teacher education; and

(iv) to develop ability in locating and utilising professional resources in solving professional problems".

The aims of the second paper on Organisation & Administration of a Secondary or an Elementary Teacher Education Institution are:

"(i) to acquaint principals/heads with the responsibilities pertaining to the organisation of a teacher education institution;

(ii) to develop necessary skills for planning and organisation of functions for effective school management;

(iii) to develop a sense of professional and congenial attitude to work and good human relations with the staff; and

(iv) to provide some practical experiences with a view to make him aware of some of the essential technical knowledge of his job."

The aims of the third paper on "Teaching methods in one subject-matter field" are:

"(i) to develop leaders in methods fields who will be competent in syllabus construction and improvement;

(ii) to help them to analyse the organisation of personnel, materials and facilities for effective work in this area; and

(iii) to acquaint them with the latest researches in their instructional field".

The aims of the fourth paper on "Inservice Education of Teachers and Teacher Educators" are -

(i) to orient the teacher educator to make a study of the changing concepts in in-service education in India and abroad;

(ii) to help him to appreciate basic tools for organising inservice education;

(iii) to acquaint him with various techniques of inservice education programme; and

(iv) to give him a fresh thinking and a current outlook on the recent trends and issues in inservice education".

The reports of the two conferences, one at Bhopal (October 8-10, 1974) and Delhi (March 22 and 23, 1975) organised by Department of Teacher Education, N.C.E.R.T., New Delhi for the revision of M.Ed. programme were also studied.

The report of the conferences organised by Department of Teacher Education, N.C.E.R.T., New Delhi for the revision of the M.Ed. programme discusses the general purposes of the M.Ed. programme based on the M.Ed. programme prepared by a Task Force of the Education Commission (1964-66) and published by NATE, 1970. It refers to only one objective in the field of teacher education, viz. "To prepare teacher educators for pre-primary, elementary and secondary teacher education institutions"

Thus from the objectives given at the beginning of some papers in the field of teacher education, it appears that the main aim is to produce suitable staff for the training institutions at the primary and secondary levels, specially at the latter level. But the specific responsibilities for

which the staff of the teacher training institutions has to be prepared have nowhere been indicated. Indeed, most of the syllabuses of the various papers of the teacher education course contain items of knowledge of general problems of education for discussion. ~~An analysis of such items is appended for ready reference.~~ Only a few universities have prescribed any practical work for teacher education candidates. Even the model M.Ed. syllabus prepared by the National Association of Teacher Educators does not suggest any practical work to be done by the candidates offering Teacher Education. Some universities like those of Udaipur, Sardar Patel University, Vallabh Vidyanagar, etc. do have a few items of practical work for teacher education candidates such as "Supervision and Guidance of practice teaching of three student teachers for 10 lessons each", "Teaching of five periods to a S.T.C. or N.C.Ed. Diploma class", etc. Even the items under "Sessional work or practical work are essentially theoretical requiring the writing of essays or term papers based on actual study of an aspect of the working of teacher training institutions, for example, "One term paper on a topic connected with the paper", "A study of one college for professional preparation of teachers", "Critical study of the co-curricular activities of two colleges of teacher education."

Thus we see that the existing syllabuses of the various papers under Teacher Education at the M.Ed. level in various universities aim at imparting knowledge about the history and problems of teacher education in the country and elsewhere, and incidentally require the candidates to make a study of the

working of teacher training institutions or some aspects of their programmes. They generally do not seek to give any practical experience of the numerous responsibilities that teacher educators have to undertake in teacher training institutions. We have analysed these activities in an earlier chapter under eight major areas, viz., Student Teaching, Theory Teaching, Tutorials, Guidance in Research, Organisational Responsibilities, Curriculum Development, Professional Growth, Professional Leadership and Guidance and Participation in co-curricular programmes. Only some teacher education syllabuses inadequately try to cover part of the area of student teaching, while all other areas have been completely ignored by them. It shall be our endeavour in the last chapter to remedy this major defect.

C H A P T E R VI

Developing a Tentative Syllabus in "Teacher Education" at the M.Ed. Level

The M.Ed. course in Indian Universities generally consists of the following:

(1) Two or three compulsory papers;

(2) Three or two papers from different fields of specialisation;

(3) A dissertation on a topic, generally from the field of students' specialisation; and

(4) A viva-voce covering not only a candidates' dissertation but all the papers studied by him.

Among the general aims of the M.Ed. course are:

(i) To prepare competent personnel to staff the institutions for teacher education at different levels;

(ii) To train persons for specialised areas of professional work, such as educational administration, educational and vocational guidance, curriculum development, etc.

(iii) To prepare, through advanced studies and systematic research, personnel who will contribute to the development of educational literature and to the growth of education as a discipline.

It is beyond the scope of the research project to examine the entire scope of the M.Ed. course or to make any suggestions in its pattern. The basic pattern suggested by the National Association of Teacher Educators is quite elastic and suitable and any number of special areas or papers in any one special area may be added in keeping with our changing and expanding

needs the knowledge. In this chapter we shall confine ourselves to the field of specialisation known as 'teacher education' at the M.Ed. level.

Field of Specialisation - Teacher Education

We have examined the existing teacher education syllabuses of various universities and found that almost all of them are too theoretical and do not prepare teacher educators for the multifarious responsibilities that they have to carry out at the colleges of education at the secondary level. We have studied these responsibilities in some detail and any satisfactory programme of preparing personnel for the special field of teacher education must include many of these items. We have therefore proposed two papers in this area. Each paper has two parts - Theoretical and Practical. The second part aims at covering the important aspects of the Teacher Educators' jobs which have been so far almost entirely neglected in the Teacher Education syllabuses at the M.Ed. level.

It is expected that as many of these practical activities may be included as possible according to the situations and circumstances of the colleges concerned.

We present below a tentative plan for trial and modification in the light of further experience.

Paper I. Theory and Principles of Teacher Education

Objectives

(1) To acquaint the students with the theory and principles of teacher education.

(2) To acquaint them with the changing concepts of student teaching, evaluation and research in teacher education.

(3) To develop in them the ability to plan, guide and conduct student teaching and curricular activities.

(4) To develop in them ability to plan, guide and conduct research in the field of teacher education.

Syllabus

Section I - Theoretical

1. Need for teacher education.

2. Aims and objectives of teacher education, scope of teacher education.

3. Development of teacher education in India.

4. Teacher education for specific fields such as physical education, craft, basic education and diversified courses.

5. Principles of curriculum development in Teacher Education.

6. Critical study of training courses at undergraduate and graduate levels.

7. Student teaching:-concepts, supervision and evaluation of student teaching. Block practice teaching and internship in teaching.

8. Inservice education:- aims, scope and problems. Roles of training institutions, secondary education boards and state departments of education.

9. Recent researches in the field of teacher education with particular reference to

(a) curriculum,
(b) student teaching,
(c) off-campus teaching,
(d) evaluation, and
(e) classroom communication.

10. Training college as a centre of guidance, research and extension.

Section II - Practical

1. Student teaching and curricular activities.

(a) Planning and giving a demonstration lesson and conducting discussion.
(b) Guiding and supervising 10 lessons of each of 3 B.Ed. trainees (supervision to be based on observation schedule).

(2) Theory teaching and tutorials.

(a) Giving 10 lectures to B.Ed. students on any two or three topics - lecture notes and bibliography to be prepared and approved.

(b) Taking five tutorial classes to discuss students' difficulties.

(c) Setting question papers for class tests.

(d) Giving individual guidance based on case study.

(3) Guidance in research

(a) Writing dissertation on a problem from the area of teacher education.

(b) Helping B.Ed. students in writing critical reports based on observation of college programmes and study of syllabuses in school subjects.

(4) One term paper and five abstracts of recent articles in research journals on the topics connected with the paper.

Paper II - Practices and Programmes of Teacher Education in India and other countries

Objectives

(1) To acquaint the students with the pattern of administration and organisation of teacher education institutions in India.

(2) To familiarise them with the practices and programmes of teacher education in developing and developed countries of the world.

(3) To develop in them the ability to critically appraise the problems related to teacher education.

(4) To develop in them a healthy attitude towards the teaching profession and foster a sense of responsibility to work for good human relations.

Syllabus

Section I - Theoretical

1. Various patterns of organisation of teacher education in India.

2. Types of teacher education institutions and their integration.

3. Selection of candidates for training, criteria for selection. Methods for selection of candidates.

4. Methods and programmes of teacher education institutions at various levels:

   (a) The equipment;

   (b) The time table;

   (c) Instructional methods;

   (d) Tutorials, seminars and workshops;

   (e) Assignments;

   (f) Practice teaching;

   (g) Demonstration and criticism lessons;

   (h) Co-curricular activities;

   (i) Evaluation of theory and practice of teaching.

5. Role of various agencies in education: N.C.E.R.T., S.I.T.E., U.G.C., I.A.T.E., N.C.C.T.E., etc.

6. Review of the contribution of various committees and commissions on teacher education in India.

7. Professional organisation of teachers in India.

8. Practice and programmes of teacher education in U.S.A., U.K., U.S.S.R. and any other developed country of Asia.

Section II - Practical

1. Student teaching and curricular activities.

   (a) Helping practising schools in an experimental project;

   (b) Organising remedial work with B.Ed. students;

(c) Participation in staff meetings particularly with academic agenda;

(d) Organising co-curricular programmes such as students' union, debates, cultural evenings, etc.

(e) Participation in school complex programmes.

2. Critical evaluation of existing B.Ed. syllabus.

3. Hostel responsibilities - attendance, arrangement for meals and other amenities.

4. Acquaintance with professional organisations of teachers - study groups, etc.

5. Case study of one institution of teacher training.

Note:

This proposed syllabus is meant to be tried out in one or two teachers' colleges and modified in the light of experience. All activities suggested for practical work may not be done by every candidate. Only 50% activities may be done by each candidate. All candidates need not do the same activities. The weightage suggested between the two parts is 60 marks for Part I and 40 marks for Part II.

CHAPTER VII

SUMMARY AND CONCLUSIONS

The improvement in the quality of education in our primary and secondary schools presupposes a qualitative improvement in the professional knowledge and efficiency of our teachers at both these levels. And the quality of school teachers can be improved only if there is improvement in the quality of the teacher educators in our teachers' training colleges. But the surveys conducted in recent years reveal that the quality of our teacher educators is generally poor; their intellectual and academic calibre is not high; they receive a uniform pattern of professional education; and even the specialised courses at the B.Ed. or at the M.Ed. level do not cater to their professional needs.

In recent years, however, some efforts have been made to reorganise the syllabus of the M.Ed. course on the lines suggested by the Kothari Commission (1964-66) or on the basis of the model syllabus prepared by the All India Association of Teacher Educators. The report of the Conference held at Bhopal (October 8-10, 1974) and Delhi (March 22-25, 1975) for the revision of the M.Ed. programme is just out. But in most cases either these programmes are borrowed from practices in other countries or are the result of armed chair theorising. An effective course in any field like teacher education should be based on the findings of scientific research. With this end in view it was proposed to study the actual duties and responsibilities of the teacher educators in our secondary teachers' colleges, examine

the existing courses for their training and suggest a more realistic programme for them.

It should be borne in mind that the main purpose of the specialised course at the M.Ed. level called "Teacher education" is to produce effective teacher educators for our primary and secondary training colleges. It should not be confused with the general meaning of the term 'teacher education' which includes the entire programme of a teachers' training institution meant to produce suitable teachers for primary and secondary schools.

Objectives of the Study

The major purpose of the study was to develop a realistic programme for teacher educators specially for our secondary teachers' colleges in India on the basis of an analysis of their professional jobs. More specifically the objectives were:-

1. To analyse the job of a teacher educator in a secondary teachers college from the following three angles: (a) expectations of the Education Code, Principals of Teachers' Training Colleges, educationists and teacher-trainees; (b) the teacher educators' own perception of his job; and (c) the job actually performed by him/the teachers' college.

2. To examine critically the existing syllabuses of the specialised courses in teacher education at the M.Ed. level; and

3. To prepare a tentative syllabus in teacher education for a try-out and finalisation at a later stage or in a subsequent research project.

/in

Procedures, Tools and Techniques

The persuance of these objectives involved the study of expectations of the authorities about the duties of teacher educators, development of techniques for the reliable assessment,

of teacher educators' perception of their own jobs and responsibilities, observation of the actual duties performed by them, critical examination of the existing syllabuses and finally preparation of a tentative syllabus.

The data for the study was collected with the help of a questionnaire-cum-rating scale, interview schedules and observation. The questionnaire-cum-rating scale (appendix II) comprised eight areas or jobs of teacher educators, namely, student teaching, theory teaching, tutorials, guidance in research, organisational responsibilities, curriculum development, professional growth and professional leadership and guidance and participation in co-curricular programmes. These areas or jobs were identified on the basis of the study of relevant literature (appendix I), interviews with a number of teacher educators and observation of their actual work in the teachers' colleges. In the preparation of the questionnaire-cum-rating scale all the steps of tool construction were meticulously gone through.

Interview schedules (appendix III) were prepared for educationists, teachers' college principals, authorities of the state departments of education, trained secondary school teachers and B.Ed. trainees to find out their expectations from teacher educators and their opinion and suggestions about the jobs of teacher educators.

For the purpose of observation of teacher educators at work in their classrooms, observation schedules (appendix IV) were prepared. Teacher educators were observed in three specific situations, viz., during lectures, during guidance and supervision of student teaching and during guidance in research work.

The suggestion of the NCERT that this observation should be done by more than one person by associating local people could not be implemented. The observations were done by the research assistants on the basis of approved observation schedules.

Sample

Fifteen colleges from the states of Rajasthan, the Madhya Pradesh, the Punjab and Haryana were selected on the basis of their standing and variety of management for personal visits by the research assistants for observations and interviews. For the purposes of collecting data through the questionnaire-cum-rating scale, all the teachers colleges of some standing in other states also were included.

Expectations from Teacher Educators

In order to find out what is expected from teacher educators, educational codes of the states of Rajasthan, Madhya Pradesh and Punjab and circulars of the state departments of education of these states were studied and 15 educationists, 20 education department officials, 15 teachers' college principals and 50 teacher educators were interviewed. The study of the education codes and circulars revealed that the teachers should have healthy attitudes, use methods tailored to the needs of individual students, provide opportunities for group activities, equip themselves with the latest knowledge, participate actively in co-curricular activities, enlist cooperation of students' guardians, maintain records of students' achievement, avoid negative measures of punishments, etc.

Interviews with the educationists, teachers' college principals, officers of the state departments of education and others could not be very fruitful as far as expectations from teacher educators in specific terms were concerned. In most cases they tried to circumvent the issues by perfunctory remarks. However, there was universal agreement that a teacher educator should know his subject well, should be acquainted with the latest researches in his field, should have first hand knowledge and experience of school teaching, should be familiar with the latest methods of teaching school subjects, in short, he should be able to produce good and successful teachers for our schools.

In addition to these, the study of various reports of workshops and seminars organised in India and abroad to define the objectives of the training courses for secondary school teachers indirectly helped us in determining what to expect from teacher educators. These objectives mainly pertain to the development of knowledge and understandings, skills and abilities, attitudes and interests and other personality traits and professional skills in teacher trainees. All these requirements of education of secondary school teachers throw a flood of light upon what is expected of teacher educators. They should not only possess these qualities themselves but should also be able to cultivate these among the teachers under training.

The Perception of Teacher Educators about the Requirements of their Jobs

In order to find out the teacher educators' perception of their job requirements, five copies of the questionnaire-cum-rating scale were sent to each of 165 secondary teachers' colleges with a stamped self-addressed envelope for their return. In all 815 questionnaires were despatched, out of which 326 questionnaires were returned. Eighteen questionnaires had to be rejected because contradictory options were filled in them.

An analysis of the responses to the questionnaire-cum-rating scale mainly involved two statistical operations. Chi-square values were calculated in order to test the hypothesis of 'equal response'. Secondly, the significance of percentages was calculated to see the trend towards "normally I do" or 'I don't do'.

Student Teaching

Statistical analysis of the responses to the questionnaire-cum-rating scale under the area of student teaching revealed that the group as a whole regarded all the items as their duty as chi square values on all the 30 items were significant at .01 level.

A percentage wise breakup of the responses to the items under student teaching showed that all of them were perceived as by at least 60% teacher educators as their duty. The first 17 items which relate to the objectives of student teaching, observation of practice lessons, guidance and supervision of lessons, correction of lesson and unit plans, etc. were

perceived by more than 90% teacher educators as their duty. Items 18 to 26 which concerned the preparation of the practice teaching programme, securing school cooperation, helping and guiding the trainees in school programmes other than teaching, preparation of the tools of observation and evaluation, ensuring that trainees give and correct home assignments, etc. were regarded as their duty by 80% to 90% teacher educators. The last four items which concern the coordination of the assessment by various lecturers, intervening in the middle of a lesson for correction, guiding and supervising community survey work, etc. were regarded as their duty by 60 to 73 per cent teacher educators.

A comparison of the perceptions of teacher educators working in university, government and private teachers' colleges about the various items of student teaching showed that teacher educators from government teachers' colleges perceived the largest number of items of student teaching as their duty followed by teacher educators from university colleges or departments of education and private teachers' colleges. But there were small variation in percentages of teacher educators from different training institutions who perceived or did not perceive certain items as their duty. These variations pertained to items 2,20,23 and 26. More than 50% teacher educators from private colleges did not regard explaining concepts of practice teaching, block practice teaching, internship, etc. (item No.2) as a part of their duty. Guiding and supervising community survey work (item No.23) was also not regarded by more than a third of teacher educators from private colleges as a part of their duty. Nearly a third

of the teacher educators from all the three categories did not regard intervening in the process of wrong teaching and demonstrating correct teaching (item No.20) as a part of their duty. Between a third and a half of teacher educators of all categories of teachers' colleges did not regard "coordinating the evaluation of practice teaching made by my colleagues and moderating their marking (item No.26)" as a part of their duty.

Theory Teaching

Under the area of theory teaching too, the group as a whole showed a positive trend towards "normally I do". In other words the group as a whole regarded all the items as its duty. The first eleven items which concern the study of the syllabus and relevant literature, grading syllabus items in the order of their difficulty, selecting and adopting suitable techniques of teaching, encouraging students to get their difficulties removed, locating and removing individual weakness, etc. were regarded as their duty by over 90 per cent teacher educators. Items 12 to 18 which concern providing enrichment programmes for gifted students, suggesting suitable literature to students, preparing and giving suitable achievement tests, maintaining discipline, preparation of results, dictating important points and quotations, etc. were regarded as their duty by between 80 and 90 per cent teacher educators. Dictating summaries of lectures was regarded as duty by 67.8% teacher educators.

All the three categories of teacher educators from government, private and university teachers' colleges regarded 17 items out of 19 from the field of theory teaching as a part of their duty, their percentages being significant at .01 level. Items like "circulate the summary of lecture." (item 6) and "set test and examination papers" (item 16) are the only exceptions. The percentages of teacher educators from government and university teachers' colleges who regarded item 6 as their duty was not significant, while that of teacher educators from private teachers colleges was. The practice of circulating old notes, year after year, is not good and is presumably followed by the staff of private teachers' colleges to boost up the results.

While the percentages of teacher educators from government and university teachers' colleges was significant at .01 level, that of teacher educators from private teachers' colleges (i.e. 37.7%) was not so. Presumably a majority of teacher educators from private teachers' colleges are not associated with testing and evaluating the achievements of trainees.

Tutorials

In the area of tutorials, the same trend was observable. All the items were perceived by teacher educators as their duty. The percentages in favour of items ranged from 75.3% to 90.2%. The items which concern understanding and solving trainees' problems, teaching, explanation and illustration of the concepts of assignments, preparation of the list of topics to be assigned, providing help in developing outlines of essays or term papers and completing of other types of assignments, initiating discussion on current issues and

finally observing and noting the behaviour and conduct of pupil teachers were perceived by more than 50% teacher educators as their duty. Eighty to 85% teacher educators were concerned with providing guidance and help in developing bibliographies, with evolving criteria and objectives of tutorials, with evaluating the functioning of the tutorials programmes and with extending assistance in formation of tutorial groups. Selecting and supervision of recreational programmes organised in the tutorials for a change was the least favoured item under this head. It was regarded by 75.5% teacher educators as their duty.

Variations in the perceptions of the teacher educators from all the three categories of teachers colleges were noticed in the field of tutorials. The highest percentage of teacher educators belonging to government teachers' colleges did not perceive as many as eleven out of thirteen items as their duty, their percentages ranging from 12.8 to 26.9. The percentages of teacher educators from university teachers' colleges, who did not perceive the various items of this area their duty was the lowest. The teacher educators belonging to private teachers' colleges occupied the middle position. In this conext it is surprising to note that there is not a single item where there is universal agreement. Even such an item as selecting topics and questions for discussion was not regarded as duty by 14.70% government college teacher educators, 10% private college teacher educators and 8% university college teacher educators.

Guidance in Research

Under the area of guidance in research all the items showed a positive trend towards "normally a duty", that is, all the respondents to the questionnaire-cum-rating scale regarded all the items as their duty, their chi square values being significant at .01 level. More than 80% teacher educators regarded reading the latest research studies conducted in the field of education at various levels and listing research problems in education that deserve attention as their duty. Items such as assessing the interests and depth of insight of pupil teachers, suggesting suitable literature for locating problems of research, guiding them in formulating and delimiting the problems, preparing plan of attack, formulating objectives, etc. and helping them in the selection of samples, discussing anticipated problems in the course of the study, providing guidance and help in the preparation of tools, collection, processing, analysis and interpretation of the data, arriving at certain conclusions and checking and correction of the report were regarded by between 72% and 79% teacher educators as their duty. The least favoured item under this head was directing the work of printing, typing and binding of the dissertation. It was regarded by 60.7% teacher educators as their duty.

A comparison of the responses of teacher educators from government, private and university teachers' colleges showed that providing guidance and help in the collection of data, processing and analysis of data and interpretation, etc. of the data (item 8) was regarded by 64.4% teacher educators

The percentages of teacher educators from university teachers' colleges who regarded the various items of this area as their duty ranged from 84 to 94%. This range was from 75% to 87.2% in the case of the teacher educators from private teachers' colleges and from 66.3% to 84.3% in the case of teacher educators from government teachers' colleges.

Negatively, ten out of thirteen items under this area were not recognised as their duty by more than 20% teacher educators from government teachers' college. The association with education authorities in preparing district level educational plans was not regarded as their duty by as many as 55.7% teacher educators from government teachers colleges, 25% teacher educators from private teachers colleges and 20% teacher educators from the universities.

These differences in perception are, no doubt, due to the fact that several items do not formally belong to the official duties assigned to the teacher educators. They may be regarded as their duties in a broad sense of 'moral obligation'.

Curriculum Development

All the thirteen items under this area were regarded by the group as its duty as chi square values were significant at .01 level. But the percentage-wise breakup of the responses to the various items showed that eleven out of thirteen items were perceived by the teacher educators as their duty, percentages being significant at .01 level. Items such as collecting donations, contributions, information, etc. when needed (item 7) and looking after establishment of accounts,

correspondence, etc. (item 9) were not regarded by between 35.5% and 4[illegible]% teacher educators as a part of their duty.

The discrepancy in the results from the test of the "goodness of fit" and significance of percentages is due to the fact that in calculating percentages total group including those who did not care to check the item was taken into consideration, while in calculating chi-square values only those teacher educators were taken into account who had checked the items.

<u>Professional Growth and Professional Leadership</u>

All the fourteen items under this head were regarded by teacher educators as a part of their duty as the chi-square values showed a positive trend towards "normally I do". All the items were perceived as their duty by between 87 and 95% teacher educators.

The comparison of the group of teacher educators from government teachers' colleges, university teachers' colleges and private teachers' colleges showed the same trend. At least 74.4% teacher educators of all categories regarded the functions of this area as their duty. What is surprising is that even a small percentage of teacher educators should not regard as their duty even such items as selecting and organising curricular items, examining the existing curriculum critically, selecting and preparing lists of books for intensive study and reference, etc. They might have done so because these are not the ordinary routine functions that the teacher educators are expected to perform from day to day.

they should do wide reading, keep themselves in touch with the current educational researches, write articles, undertake investigations into various problems of education, do constant thinking on the needs of the community, study the curriculum changes and make frequent evaluation of curricular programmes in the light of their own experience.

Interviews with the teachers' college principals, school headmasters and student teachers corroborated above items. They also agreed that orientation programmes and demonstration lessons should be organised before the practice teaching actually began; theoretical training should be provided in different methods and techniques of teaching; tutorials should be organised to give individual attention to the student teachers; guidance in research should be regularly given; curriculum should be improved in the light of the changing needs of the society. The teacher educators should try to work for their own professional growth and provide guidance to the student teachers in the organisation of co-curricular programmes.

Concomitantly, the data from the interviews was supplemented by the observation of teacher educators at work. As non-participant observers, the research assistants observed 35 classroom lectures, 15 periods of guidance in lesson planning, 10 tutorials, 10 periods of guidance in research and 10 co-curricular programmes. On the basis of this small amount of observation no valid or reliable conclusions about the actual performance of teacher educators can be drawn.

Review of the Existing Courses

The study of the perception of teacher educators about the requirements of their own jobs and the expectations of educationists, teachers' college principals, headmasters and student teachers about their functions and responsibilities entailed upon us the duty to find out what curricular and co-curricular programmes have been provided for teacher educators in the syllabuses of the various universities. The review of the syllabuses of these universities and the model syllabus prepared by the NATE and also the syllabus recently circulated by the Department of Teacher Education, NCERT, New Delhi revealed that in several M.Ed. syllabuses "Teacher Education Area has a single paper, while in others it has a number of papers, two to five, out of which a candidate has to select one or two papers, if he has to specialise in this area". The NATE has mentioned four papers in its model syllabus for the Teacher Education Course. The papers are:(i) Basic Paper on Teacher Education, (ii) Organisation and Administration of a secondary teacher education institution or an Elementary Teacher Education institution, (iii) Teaching Methods in one subject matter field and (iv) Inservice Education of Teachers and Teacher Educators. The M.Ed. syllabus recently prepared by the Department of Teacher Education, NCERT, New Delhi consists of three papers, viz.,

1. Principles of Teacher Education and Student Teaching.
2. Practices and Programmes of Teacher Education in India, and other countries - U.K. or U.S.A., or U.S.S.R., or Japan; and
3. Specialisation in Teacher Education at Primary/Pre-primary or secondary stage.

Very few syllabuses of the teacher education course, except that of the NATE have discussed the aims and objectives of the ciurse or the various papers in this specialised area. However, some of the main objectives of the teacher education course according to these syllabuses pertain to (i) educating "teacher-educators for pre-service and in-service teacher education", (ii) providing for "intensive study of important issues and problems faced in the preparation of teachers both for primary and secondary schools," (iii) equippi[ng] them "to work as a teacher educator" and (iv) acquainting them "with the new mthodology, principles and practices in teacher education at different levels," etc.

It was clear to us from the study of the objectives and the contents of the syllabuses in the field of teacher education that their main aim was to produce suitable staff for training institutions. But almost all of them were too theoretical and did not prepare teacher educators for the specific responsibilities that they had to carry out at the colleges of education at the secondary level.

We have analysed the activities in Chapter III under eight major heads, viz., Student Teaching, Theory Teaching, Tutorials, Guidance in Research, Organisational responsibilities, curriculum development, Professional Growth and Professional Leadership, and Guidance and Participation in Co-curricular Programmes. Only some of teacher education syllabuses try to cover a part of the area of student teaching, while all other areas have been completely ignored. But any programme of preparing personnel for the special field of teacher

education must include many of these items. The syllabus proposed by us consists of two papers, viz., Theory and Principles of Teacher Education, and (ii) Practices and Programmes of Teacher Education in India and other countries. Each paper has two parts - theoretical and practical. The second part aims at covering the important aspects of the teacher educators' job which have been so far almost entirely neglected in the Teacher Education syllabuses at the M.Ed. level. All the activities suggested for practical work may not be done by every candidate. Only 50% activities may be done by each candidate. All candidates need not do the same activities. The weightage suggested between the two parts is 60 marks for Section I and 40 marks for Section II.

This is simply a tentative plan. It should be tried out in one or two teachers' colleges and modified in the light of experience.

The main contribution of this research project has been the location of the specific jobs which teacher educators have to perform in their colleges and which generally do not find any place in the current syllabuses of the Teacher Education courses at the M.Ed. level which aims at preparing efficient teacher educators.

A study at a larger scale, covering other areas of specialisation at the M.Ed. level, is needed. A number of teachers' colleges may do so on a cooperative basis, one college taking up one area.

APPENDIX I

BIBLIOGRAPHY

15. Gage, N.L. — Handbook of Research in Training, Chicago Rand McNally & Co., 1965.

16. Murray, P. — Education and Training of Teachers London, Longmans, 1963.

17. Harris, Chester W. — Encyclopaedia of Educational Research New York: Macmillan Co., 1960.

18. Henry, N.B. (Ed) — Inservice Education of Teacher Supervisors and Administrators; Chicago: University of Chicago Press, 1957.

19. Jeffreys, M.C. — Revolution in Teacher Training London: Pitman, 1961.

20. Ministry of Education, Govt. of India. — Report of the Indian Education Commission Delhi.

21. Ministry of Education. — Report of the Study Group on the Education of Secondary Teachers in India, 1964.

22. Ministry of Education, Govt. of India. — India; Draft Revised Syllabus for Secondary Teachers Training, Delhi; Manager of Publications, Civil Lines, 1959.

23. [illegible].C.Gooch, [illegible] — Direct Experiences in Teacher Education, New York, Columbia University, 1956.

24. Mukerji, S. — Comparative Education for Students and Educationists, Kitab Mahal, 1964.

25. Mukerji, S.N. — Education of Teachers in India, New Delhi, S.Chand & Co., 1968.

26. Mukerji, S.N. — Administration and Organisation of Teacher Training Institution, Delhi, N.C.E.R.T., 1965.

27. N.C.E.R.T. — Survey of Teacher Education in India, 1963.

28. National Institute of Basic Education. — Report of the Workshop on Improvement of the Teacher Education in Post-Graduate Basic Training Colleges, New Delhi, The Institute, 1961.

29. N.C.E.R.T. — Internship in Teaching, Regional Colleges of Education, Delhi, Publication Unit, NCERT, 1954.

Vidya Bhawan G. S. Teachers College, Udaipur

Department of Research

No. VBTC/RP/ Dated

Dear Sir,

This college has undertaken a research project entitled "Developing a Realistic Programme for Teacher Educators on the Basis of an Analysis of their Professional Jobs" Your kind cooperation is solicited in this endeavour.

I know that you are a busy person and I would not ordinarily like to encroach upon your well-earned hours of leisure but the project cannot be completed without the help and co-operation of experienced people like you. I am sure, you will kindly spare a little time to complete this questionnaire All information supplied by you will be kept strictly confidential.

Kindly fill in this questionnaire and pass it to your Principal who may get these despatched in a common cover.

Thank you in anticipation for your kind co-operation.

Yours faithfully,

(B. D. Srivastava)

Reader in Education

Chief Investigator

General Information

Name..Age.........................

Qualifications...Designation ....

Teaching Experience

(a) Graduate Classes.........................Years.

(b) Post-Graduate Classes.................Years.

Name of the College...

INSTRUCTIONS

The following is a list of the functions a teacher educator normally performs or may be expected to perfo m. You may agree or disagree with any of them, depending upon your experience and opinion..

Please put a tick (✓) against each item in appropriate columns, These columns provide five positions which a respondent may take. You have to select two of these.

If any other function is not specified in the list, but is actually performed by you or you believe it should be performed by a teacher educator, please mention it in the space provided for the purpose at the end of each area.

Normally I do	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	**STUDENT TEACHING**
					– Teach the aims and objectives of student teaching programme.
					– Explain concepts of practice teaching, block--practice teaching, internship programme, etc
					– Teach the] concepts of lesson plans and unit plans.
					– Acquaint pupil teachers with methods and techniques of teaching.
					– Acquaint pupil teachers with problems that may arise during teaching and suggest solutions.
					– Remove doubts and misunderstandings expressed by pupil teachers regarding the teaching process.
					–Give demonstration lessons.
					– Guide and assist cooperating teachers in giving demonstration lessons.
					– Initiate and guide discussion on demonstration lessons.
					– Encourage and motivate pupil teachers for purposeful discussion.
					– Prepare and use a tool for observation of teaching.
					– Guide and check observation of lessons.
					– Develop and revise model unit plans and lesson plans.
					– Guide students in the preparation of lesson plans and unit plans, and check and corrent them.
					– Encourage experimentation in the planning of lessons.
					– Prepare programme of practice teaching.
					– Ensure possible co-operation of the school staff for student teaching.
					– Observe student teaching in process and write supervisory remarks.
					– Explain and illustrate the remarks given in the lesson plan note-book.
					– Intervene during the process of wrong teaching and demonstrate correct teaching.
					– Guide student teachers in performing other non-teaching functions (like maintaining attendance registers, cumulative records, etc.)
					– Ensure that pupil teachers give assignments to their classes and correct them.
					– Guide and supervise community survey work.

Normally I do.	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	**STUDENT TEACHING**
					- Develop and revise criteria and tools for the evaluation of student teaching.
					- Evaluate the teaching of student teachers.
					- Co-ordinate the evaluation of practice teaching made by my colleagues and moderate their marking.
					- Motivate and help pupil teachers in self evaluation.
					- Try to locate the teaching skill deficiencies and suggest appropriate steps.
					- Help and guide student teachers in observing and participating in school and community activities.
					- Deal with problem student teachers psychologically.
					______________________________
					______________________________
					______________________________
					THEORY TEACHING
					- Study the syllabus and the relevant literature.
					- Prepare an annotated bibliography and suggest it to the students.
					- Organise and grade the instructsional material.
					- Prepare and revise lecture notes.
					- Dictate noteworthy points, quotations, etc.
					- Circulate the summary of the lectures.
					- Select and use different devices for introducing the matter.
					- Select suitable techniques of presenting the instructional material and adopt them.
					- Explore the use of visual presentations like diagrams, tables etc. and use illustrative aids.
					- Encourage students to get their doubts and difficulties removed or clarified.
					- Give suitable home assignment and correct it.
					- Assist students in locating suitable literature in the library.
					- Try to handle cases of discourtesy and use various devices for maintaining discipline.

Normally I do.	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	
					- Locate subject matter weaknesses and suggest remedies.
					- Provide enrichment programme for gifted students or high achievers.
					- Set test and examination papers.
					- Examine answer books.
					- Prepare achievement tests.
					- Tabulate and enter marks and prepare result sheets,
					______________________
					______________________
					TUTORIALS
					- Teach, explain and illustrate the concepts of assignments to be done, such as case study, survey, action research, achievement test, etc.
					- Prepare a list of topics or approve topics for writing essays and term papers.
					- Guide and help in preparing a bibliography of related literature.
					- Guide and help in developing an outline or synopsis of an essay or term paper.
					- Help and guide students in completing thevarious assignments such ascase studies, surveys, achievement tests, etc.
					- Select topics and questions for discussion to supplement theory teaching.
					- Initiate discussion on current academic issue.
					- Screen and supervise recreational programmes organised in the tutorials for a change.
					- Evaluate the functioning of the tutorial programmes by means of a tool evolved by me/the college.
					- Help in evolving criteria and objectives of tutorials.
					- Assist in the formation of tutorial groups.
					- Observe and note the behaviour and conduct of individual pupil teachers.

Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
2	3	4	5	
				– Try to understand and appreciate the difficulties, problems and grievances of the pupil teachers and help them sympathetically.
				GUIDANCE IN RESEARCH
				– Read the latest research studies conducted in the field of education at various levels.
				– List research problems in education that deserve attention.
				– Assess the interests and depth of insight of the pupil teachers seeking guidance.
				– Suggest suitable literature for locating and attacking problems of research, i.e , Encyclopaedias, Yearbooks, Reports of Commissions, Committees & Conferences, Dissertations, etc.
				– Guide in formulating and delimiting the problem, preparing plan of attack, formulating objectives & hypotheses or assumptions, the selection of sample, etc.
				-- Anticipate and discuss problems likely to be experienced during the research work
				-- Help in preparing or adapting tools.
				-- Guide and help in the collection of data, processing and analysis of data, presentation and interpretations, etc.
				-- Guide and help in drawing conclusions and suggesting measures as solutions.
				-- Check and correct the report.
				– Direct the work of printing, typing and binding of the dissertation.
				-- Develop tools for evaluating dissertations.
				ORGANIZATIONAL RESPONSIBILITIES
				– Help in evolving admission criteria,

Normally I do.	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	
					– Associate myself with the preparation of text books.
					-- Guide and supervise school projects and experiments.
					-- Contribute papers to educational journals.
					-- Associate myself with the education officers in drawing up district-level or state-level development plans of education.
					-- Guide school complex programmes.
					-- Prepare plans for organising workshops, seminars or seminar reading programmes.
					-- Work as a resource person in workshops and seminars.
					-- Review my performance and work at the end of the session.
					- Help in editing a professional journal.
					-- Participate in the deliberations of the faculty meetings and staff meetings.
					-- Prepare for and participate in the professional discussion in the meetings or conferences or committees outside the college.
					-- Cooperate with the visiting educationists and research workers and discuss their problems with them.
					______
					______
					______
					CURRICULUM DEVELOPMENT
					-- Study theories and principles of curriculum development, study the recommendations of commissions, committees and educationists about the aims and objectives of teacqer education.
					- Study reports and observations about the defects and limitations ofthe teacher education programme in vogue.
					- Formulate or revise functional objectives of the part of the curriculum under development.
					- Study various duties and responsibilities being performed by teachers in schools.
					- Study the difficulties and problems faced by teachers after training.

Normally I do	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it	I don't do but I believe a teacher educator should do it.	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	
					– Assist in the selection of students for admission to the college and various faculties.
					-- Collect donations, contributions, information, etc., when needed.
					-- Maintain students' progress records and cumulative records.
					-- Look after the administrative affairs such as establishment accounts, correspondence, etc.
					-- Attend to student welfare activities, such as board, lodging, transportation, etc.
					-- Acquaint pupil teachers with college conventions, and traditions.
					-- Explain administrative difficulties, problems and limitations to student teachers.
					-- Advise students for offering specialized or optional courses.
					PROFESSIONAL GROWTH & PROFESSIONAL LEADERSHIP
					– Keep myself in touch with the changes and innovations in education in my special field through reading research journals, books & periodicals.
					-- Keep myself well-informed about the changes in the administrative structure, activities and programmes of school education and teacher education.
					-- Keep in touch with the activities and educational programmes of the agencies such as Secondary Education Board, Education Department, University concerned, U.G.C ,NCERT, S.I.E., etc.
					-- Try to understand school problems through surveys and research projects
					-- Acquaint teachers and headmasters with the innovations in methodology and teaching.
					-- Give expert assistance to school staff on solving their professional problems by preparing model lesson and unit plans, supervising school work and academic progress, etc.

Normally I do.	Occasionally I do.	I do, but I believe a teacher educator should not be expected to do it.	I don't do but I believe a teacher educator should do it	I don't do and I believe a teacher educator should not be expected to do it.	FUNCTIONS
1	2	3	4	5	
					– Select and organise curriculum items.
					– Suggest teaching learning situations.
					– Determine priorities to be given to each item in the curriculum.
					– Examine the existing curriculum critically.
					– Select and prepare list of books for intensive study and reference.
					– Recommend to the principal to provide for equipment and material facilities.
					– Undertake research work to assess the needs and interests of the children.
					– Discuss curriculum items with colleagues.
					Guidance & Participation in Co-Curricular Programmes
					– Prepare programme for co-curricular activities.
					– Decide the nature and scope of the co-curricular activities.
					– Guide and counsel pupil teachers to choose and participate in a co-curricular activity.
					– Assist the principal in assessing the facilities available and needed for organising co-curricular programmes.
					– Help and advise students for drawing out the plan and targets for the session.
					– Guide students in planning the budget proposal and fixing targets for the session,
					– Suggest to the students appropriate literature or person or source for improving partcipation in co-curricular activity.
					– Participate in the co-curricular programmes.
					– Help and guide students in selection and screening the items of the co-curricular activities.
					– Guide the students in correspondence work, obtaining material, accommodation etc. needed .
					– Observe pupil teachers' performance in the co-curricular activity to diagnose their handicaps and limitations and suggest remedial steps.
					– Identify the qualities of pupil teachers to provide scope for growth.
					– Guide students in evaluating the organization of the activity.
					– Prepare a report of the programme to improve its quality.

Appendix [illegible] ([illegible])

Interview Schedule for Educationists

S.No.	Questions	Comments by an Educationist

B. CLASS TEACHING

1. Generally in teachers' colleges, lecture method or very rarely discussion-cum-lecture method is adopted. Well, looking to the needs of the training colleges, which type of teaching may be the most effective and desirable?

2. What type of preparations, what types of dealings in the classroom and what type of follow up do you expect teacher educators should do?

3.

3. What is your concept of tutorials in training colleges?

4. How these tutorials should be organised and what should be teacher educator's role?

C. STUDENT TEACHING

1. What are the major defects and weaknesses of student teaching programme you have noted?

2. What in your opinion should be the nature and scope of student teaching programme?

3. What type of knowledge and skill should necessarily be imparted to student teachers before they are exposed to real teaching? How should it be imparted?

4. There is a difference of opinion as to ~~what~~ who should give demonstration lessons - teacher educators or cooperative teachers? What is your opinion? What is teacher educators' role in each case?

5. For systematic and good teaching unit planning and lesson planning techniques are essential for prospective teachers. How can teacher educators guide them in these in the best way?

6. What help or assistance do you expect teacher educators to give during actual practice teaching?

7. Some people say that not only training in the methods of teaching but also training in how to deal with children with different needs should be given to pupil teachers? If you agree with this, what should be the appropriate way of giving this training.

D.E. Co-Curricular Activities

1. Co-curricular activities are organised in training colleges. What should be the objectives, nature and scope of such programmes? What should be the teacher educator's role?

E. Guidance in Research

1. What in your opinion is the appropriate process of guidance in research?

2. Do you think that a teacher educator himself should take up some such work? If yes, what should be its nature and scope?

F - Professional Growth

1. What efforts and measures should the teacher educators essentially take for their own professional growth?

G - Extension Work

1. Should teacher educators keep in touch with school staff and be aware of school problems? How can teacher educators do so? How can they guide school staff in solving their problems?

I - <u>Development of Curriculum</u>

1. What specific efforts do you expect teacher educators to take for the modification of the curriculum?

J - <u>General</u>

1. What are the fundamental differences in the objectives of B.Ed. and M.Ed. courses? What do you expect of those who have got their M.Ed. degree?

2. What are the major weaknesses of the M.Ed. course? In what directions would you like them to be reorganised?

Appendix III ([illegible])

Interview Schedule for Principals of Trg. Colleges

---

1. Which of your administrative responsibilities do teacher educators share? What more do you expect from them?

2. Which activities, in your opinion, should be related to teacher educators' supervisory roles?

   (a) Which additional duties or changes in teacher educators' duties can bring about better and more effective guidance of trainees in planning lessons?

   (b) What modifications or changes in the supervisory duties of teacher educators may be more effective?

   (c) What follow-up activities to practice teaching do you expect from the trainees for the effectiveness of their supervision?

3. What changes or additions in the tasks and duties of teacher educators will, in your opinion, help them to be more effective and efficient class room teacher?

4. What role do you expect from a teacher educator in the development of programme for teacher education?

5. What specific job do you expect from teacher educators in the task of conducting examination, evaluation and appraisal?

6. What type of extra-class and co-curricular programmes do you expect for teacher educators to organise and plan in the college? What role should they play in extra class and co-curricular programmes?

7. What research activities do you expect from teacher educators?

8. How should teacher educators provide diagnostic and remedial programmes?

9. ~~What research activities do you expect from teacher educators?~~

10. ~~How should teacher educators provide diagnostic and remedial programmes?~~

9. A teacher educator is regarded as a professional leader, what activities and programmes, do you believe, a teacher educator should necessarily undertake to maintain this status?

10. What additional duties or tasks do you suggest for teacher educators for playing more effective roles in their job area?

11. Are there any unnecessary duties being performed by teacher educators which should not form a part of their job? Please elaborate.

Appendix III (C)

INTERVIEW SCHEDULE FOR TEACHERS (TRAINEES)

1. By virtue of his status a teacher educator is a professional leader. What expectations do you have from him which he should necessarily fulfil as part of his job?

2. What changes or programmes would you like to to suggest to make a teacher educator's job more real and practical?

3. What changes or modifications do you suggest to make teacher educators' supervisory role more real, practical and effective?

4. As a classroom instructor, what tasks should a teacher educator perform?

5. A teacher educator provides guidance in (a) research, (b) lesson planning, (c) organising co-curricular activities.

   What modifications or changes in his guidance programme will suit your expectations?

6. Which out-of-class activities and programmes should a training college organise for pupil teachers to have any bearing on their professional growth? What part should a teacher educator play there in?

7. Which functions, or duties actually performed by a teacher educator should not, in your opinion, be a part of his job?

8. What part should a teacher educator play in the organisation of field activities?

9. What duties should a teacher educator perform in the evaluation and examination programmes in the college? What changes would you like to suggest in his duties?

10. Do you expect that teacher educators of training colleges should help and guide you even after your training programme is over? Please indicate the situations in which you expect his help..

Appendix III (d)

Interview Schedule for Teacher Educators

Questions	Hints

1a. **Orientation Programmes**

1. How do you orient the newly admitted pupil teachers?

2. What is the duration of such programme?

3. Have you to provide counselling and guidance services to pupil teachers at this stage? What are they?

4. Have you to collect any information or particulars from the students? How do you do it?

5. What more, in your opinion, should a teacher educator do to orient the pupil teachers?

2, B. **Student Teaching**

6. Does your college organise orientation lectures? What knowledge do you impart in such lectures? What more knowledge should be imparted at this stage?

7. Do you have any special programme in your college to train pupil teachers in the observation of teaching before demonstration lessons start?

8. What directions and drill do you give pupil teachers for meaningful and objective observation?

9. Have you to evolve any tool for this observation? What measures do you take to develop such tools?

10. How do you ascertain that student teachers observe lessons on right lines? How should it be done?

11. Is the series of demonstration lessons given by you exclusively? What functions do you perform in this connection?

12. In case a cooperating teacher gives demonstration lesson, how do you guide him?

13. What difficulties do you often experience in giving demonstration lessons and in guiding the cooperating teacher who gives the demonstration lessons?

14. What efforts do you make to maximise the benefits of the demonstration lessons to the pupil teachers?

15. How do you systematise the discussion that follows a demonstration lesson? How can it be made more useful?

16. If given full freedom, what additional steps would you take to improve the programme of demonstration lessons.

3. Student Teaching (Planning)

17. What duties do you perform for the placement visits of student teachers in schools for practice teaching?

18. What procedure do you adopt for guiding pupil teachers in unit planning and lesson planning?

19. What additional measures may be taken by a teacher educator for more effective guidance in unit and lesson planning?

20. What problems do student teachers bring to you during the planning of lessons and units? How do you deal with them?

21. What considerations do you keep in mind while approving or rejecting a lesson or unit plan?

22. Do you think that a teacher educator should prepare a few model unit and lesson plans? If yes, how would you like to make use of these?

23. What measures do you take that the pupil teachers follow your directions properly for planning units and lessons?

4.3. Student Teaching (Supervision)

24. What help or assistance do you extend to student teachers in the schools before they enter their classrooms for teaching?

25. What help do you give during their teaching?

26. Do you think that a teacher educator should intervene to demonstrate the right teaching and proper handling of the class, if you find student teachers' performance below satisfaction?

27. What factors do you keep in mind while writing down the remarks?

28. What dimensions of teaching do you observe there?

29. What steps do you take to ensure that pupil teachers are punctual and follow your instructions properly?

30. What difficulties do you experience in your supervision? How do you overcome them?

5. 5. <u>Student Teaching (Evaluation)</u>

31. What functions have you to perform for the evaluation of student teaching?

32. Do you record the weaknesses or deficiencies of the pupil teachers in writing?

6. <u>[illegible] School Life and [illegible] School [illegible]</u>

1. In addition to the practice teaching, do you provide any other opportunities to pupil teachers to participate in other aspects of school life? If not, should there be such opportunities? If yes,
2. What are those aspects of school life in which the pupil teachers participate?

3. How do you supervise such participation?

4. What problems do the student teachers and you often face in the programmes facilitating participation in school life? How do you handle such problems?

5. If yes, do you have any programme for pupil teachers to undertake survey of community resources?

6. What programmes are these? If not, do you think there should be any such programmes? Please elaborate.

7. What steps do/should you take that the maximum amount of local material is used by student teachers in preparing instructional materials? Do you think, student teachers should get the training to prepare instructional materials of the local stuff? If yes, what is your opinion on the suggestion that a teacher educator should take some periods in the schools to keep in touch with the subject, staff, curriculum and refresh his teaching skill to be able to give demonstration lessons more effectively.

8. Do you organise any programmes so that students may get training in handling the deviant and problem students? What programmes do you have?

9. If not, do you think that conducting a case study will help pupil teachers in knowing how to deal with the problem children in a more effective way?

10. How do you guide case study work?

11. Do you have any other research work for pupil teachers during the student teaching programme? Please elaborate the items.

    School survey critical study of a school programme.

12. How do you guide such research work for B.Ed. students? How do you supervise?

13. What problems or difficulties do you face in guiding the research programmes for B.Ed. students?

7. Classroom Teaching (Lectures)

    1. What preparations do you make for class lectures? What literature do you generally consult? What should actually be done for such preparations?

    2. How do you introduce your lectures? How can it be better introduced?

    3. What aids do you use for teaching?

    4. Do you often check that what you are teaching is being followed by pupil teachers? How do you check it?

    5. How often and how much home assignment do you give? How often and how much should home assignment be given?

    6. How do you check home assignment?

    7. Do you take any steps to ensure that pupil teachers do their home assignment properly and regularly? What steps do you take?

    8. Do you take note of the backward and gifted students while teaching? How do you do it?

    9. What problems do you experience in your class teaching? How do you take them?

    10. Do you evaluate the scholastic achievement of the pupil teachers? How often?

11. How do you evaluate it?

5. Tutorials

1. How do you organise tutorials in your college? How often? What criteria for grouping? How do they function fixed/rotating?

2. What type of activities and programmes do you have in the tutorials?

3. Do the tutorials help in the college administration in any way? How?

4. Do the tutorials help you in diagnosing any deficiencies or weaknesses of the pupil teachers? How do you diagnose? What type of deficiencies do you diagnose? If given freedom, do you think a teacher educator should diagnose? How should it be done?

5. Do you undertake any remedial programme in the tutorials? Please elaborate the nature and scope of such programmes? If given freedom, should teacher educators undertake such programmes? How should he do?

6. What type of problems of student teachers do you try to solve in the tutorials?

7. What difficulties do you experience in organising and running the tutorials? How do you overcome them?

8. Do you evaluate the functioning of the tutorials at the close of the session for modifications and improvements for the next year? How do you do it?

6. Guidance and participation into-curricular programmes

1. Which are the co-curricular activities and programmes organised in your college? Please specify their nature and scope?

2. Which co-curricular activities are you associated with?

3. What role do you perform in the organisation of the co-curricular activities?

4. Do you counsel or guide pupil teachers to participate in a certain activity? On what basis do you counsel them?

5. Do you actually participate in any co-curricular programme? What is the nature and scope of your participation? If not, what should be the nature and scope of teacher educator's participation in such activities?

6. What help and assistance do you extend to the pupil teachers in conducting a co-curricular programme?

7. Do you give any knowledge or skill to the pupil teachers for effective organisation of co-curricular programmes? Please elaborate this point.

8. If given full freedom, how can teacher educator perform his role better as guide for organising co-curricular activities?

9. What problems or difficulties do you face in organising such programmes? How do you deal with them?

10. What problems do students often experience in conducting co-curricular activities? What is the nature and scope of your help in such situations?

11. What problems do students often experience in conducting co-curricular activities? What is the nature and scope of your help in such situations?

10. Development of Curriculum

1. What type of literature have you to study for revising or developing curriculum - syllabi, researches, reports, note on experiences. Needs facilities experiences.

2. Do you undertake any research work for gathering any data for curriculum development? What data do you or/and should you collect?

3. Whom do you consult for this work? What is the nature and scope of this consultation.

4. What difficulties do you experience in the task of developing curriculum? How do you overcome them?

5. Ideally, what steps should a teacher educator take for developing or revising curriculum?

11. Professional Growth

1. Do you think that it is the duty of a teacher educator to grow professionally?

2. What efforts do you make for your professional growth?

2. How do you guide pupil teachers

    a) in the selection and formulation of the problem
    b) in developing a plan
    c) in deciding, developing and administering tools and techniques
    d) collection of data
    e) analysis of data
    f) interpretation of data
    g) reporting.

3. What other help, in addition to guidance, do you extend to the pupil teachers?

4. What difficulties do pupil teachers generally experience in research work? How do you help them?

5. What problems do you experience in guiding pupil teachers in research?

6. How do you evaluate the research work of your pupil teachers?

7. What preparation have you to make for guidance in research?

8. If given full freedom, how will you guide pupil teachers in research?

9. Do you ascertain that your guidance is effective? How do you do it?

15. <u>Examination</u>

1. What examination responsibilities do you perform?

2. Do you think any of this work is not justified to be included in your duties? If yes, please specify?

16. <u>Miscellaneous</u>

1. What more duties and responsibilities do you discharge as teacher educator that we have not discussed so far?

2. In addition to what we have discussed so far, what should a teacher educator do to perform his job more effectively?

3. Which of the discussed functions of teacher educators in your opinion, are not justified for inclusion in his job?

Appendix IV

Observation Schedule for Class Lectures

1. The T.E. takes attendance.

2. T.E.'s verbal behaviour

Gives aims

Defines terms.

Explains:

a) Fact.
b) Teaching aid.

Asks:

a) Designates students, asks questions.
b) Asks questions, designates students.
c) Class question.
d) For questions

Answers:

a) Own questions.
b) Student question.

Repeats:

a) Student answer.
b) Key point.
c) Pet word.

Gives examples.

Gives direction.

Asks recapitulatory and testing questions.

Suggests reference literature.

Suggests problems/topics

Assigns home work

In the capacity of a supervisor -

What functions and how differently a lecturer perform?

3. T.E.'s non-verbal behaviour

Stands:

a) Behind desks.
b) At board.

Examination Preparation

1. For discussion important/significant questions are selected.

   a) by the T.E.

   b) by the P.T.s

   c) mutually on the basis of certain important topics.

   d) on the basis of the problem pointed out by the P.T.s

2. Discussion is initiated.

   a) by the T.E.

   b) by the P.T.s

   c) through mutual participation.

3. Suggestions for the proper answer to the questions are given by the T.E. about -

   a) the matter.

   b) the presentation.

   c) the language.

   d) Time factor.

   e) Length of answer.

A Checklist for observation of guidance to Student Teachers in the preparation of lesson plan by the T.E.

1. The T.E. initiates the problem of preparing lesson plans.

2. The T.E. talks to the P.T.s about the necessity of formulating the objectives of the lesson to be taught.

3. The T.E. classifies the exemplary objectives in terms of behavioural output.

4. The T.E. talks of the need of lesson being split into certain units.

5. The T.E. teaches the concept of a unit.

6. The T.E. teaches the procedure of preparing a unit plan.

7. The T.E. demonstrates an example of a unit plan.

8. The T.E. answers the questions of the P.T.s

9. The T.E. evolves a unit plan with the help of the P.T.s

10. The talks of T.E. for the division of unit plan into sub-topics.

11. The T.E. discusses and pin-points significant points of the unit plan.

12. The T.E. teaches the evaluation of the unit plan.

13. The T.E. corrects unit plan -

    a) At home.

    b) In presence of the P.T.s

    c) In his free periods.

A Check List for Observation of Supervision of Practice Teaching

1. The T.E. makes school contacts.

2. The T.E. visits the classroom of the P.T.

3. The T.E. writes down comments and suggestions in the P.T.'s lesson note book.

4. The T.E. evaluates the practice teaching on the basis of -

   A. Preparation of the Lesson

      i) Clarity of objectives.

      ii) Appropriateness of subject matter to class level.

      iii) Relatedness of subject matter of objectives.

      iv) Adequacy of the subject matter.

      v) Organisation of the subject matter.

      vi) Provision for appropriate activity.

      vii) Provision for teaching aids.

   B. Teaching of Lesson

      i) Appropriateness of method employed.

      ii) Appropriateness of introduction, development and application.

      iii) Classroom motivation.

      iv) Techniques of questioning.

      v) Classroom use of teachigg aids.

      vi) Pupil participation.

      vii) Class supervision.

viii) Blackboard work.

ix) Class discipline.

x) Home and class assignment.

C. Classroom Management

i) Attention of class cleanliness.

ii) Postures of students.

iii) Seating arrangement.

iv) Light and ventilation.

D. Teacher's Personality Factors

i) Self confidence.

ii) Voice.

iii) Restraint in speech.

iv) Appearance.

v) Manners.

vi) Poise in teaching.

vii) Attitude to pupils.

E. Human Relationship in the classroom

i) Attention to individual needs of students.

ii) Sense of humour.

iii) Emotional stability.

iv) Dealing with response of students.

v) Objectivity.

vi) Democratic leadership.

vii) Skill in cooperation.

F. Skill in Measuring

i) Diagnosis of pupil's difficulties.

ii) Appropriateness of recapitulatory questions.

G. Overall impression of the teaching - Needs rapport and more discussion.

i) The T.E. discusses the comments/observation with the P.T. after the class is over.

ii) The T.E. clarifies his comments/observations to the P.Ts

A check list for observation of guidance to student teachers in the preparation of lesson plan

By T.E.

1. The T.E. initiates the problem of preparing lesson plans.
2. The T.E. talks to the P.T.s about the necessity of formulating the objectives of the lesson to be taught.
3. The T.E. clarifies the exemplary objectives in terms of behavioural.
4. The T.E. talks of the need of the lesson being split into certain units.
5. The T.E. teaches the concept of a unit.
6. The T.E. teaches the procedure of preparing a unit plan.
7. The T.E. demonstrates an example of a unit plan.
8. The T.E. answers the queries of the P.T.s
9. The T.E. evolves a unit plan with the help of the P.T.s
10. The T.E. talks of the division of unit plan into sub topics.
11. The T.E. discusses and pinpoints significant points of the unit plan.
12. The T.E. teaches the evaluation of the unit plan.
13. The T.E. corrects unit plans -

    a) At home.

    b) In the presence of the P.T.s

    c) In his free periods.

Check List for Observation of Guidance in Research

Stages of Reseach Activity	Task Behaviour											Socio-emotional Behaviour					
	Problem solving								Critical			Positive reaction			Negative reaction		
	Suggestion	Gives opinion	Gives information	Corrects	Improves	Discusses	Enlightens	Refers lit/ person/tool, etc.	Disapproveness	Criticises	Questions	Keeps calm	Agrees	Encourages	Disagrees	Shown tension	Discourages
1. Location of Problem area.																	
2. Selection of Problem.																	
3. Plan of attack.																	
4. Foundation of Problem.																	
5. Method and Procedure																	
6. Tool developing-adapting/ adopting.																	

7. Sampling.

8. Data collection.

9. Analysis.
   a) Description
   b) Statistical
   c) Figurative.

10. Interpretation.

11. Reporting.

12. Typing, printing, sequencing of matter, bindig.

13. Action research.

14. Case study.

15. Project.

16. Viva Voce.

College are expected to prepare such teachers. These expectations were categorised as follows:-

1. Skills and abilities.
2. Knowledge and understanding.
3. Attitudes and interests; and
4. Other expectations.

The implications of the data are that a training college programme should be based on these needs. On the basis of the study, the investigator suggested some changes in the syllabus of the B.Ed. course.

i) Replacement of the annual theory examination by sessional work and viva voce and greater emphasis on internal assessment.

ii) New methods of teaching should be demonstrated. More practice of effective teaching with emphasis on assignment, correction should be given. Block Practice teaching be adopted. More practice in blackboard writing and sketching should be given.

iii) Researches should be conducted for evolving suitable methods of teaching.

iv) Provision of practical experience for preparing, administering and assessing the results of new type tests, practical knowledge of intelligence tests, study of individual differences among children and how to deal with them in classroom situation.

v) Knowledge of school accounts and maintenance of school records, practical training in the organisation of co-curricular programmes, knowledge and experience of using community resources for the development of the school.

vi) More emphasis on tutorials should be given. Discussion and seminar methods should be given due place.

A similar study was made by Mr. S.K. Mittal: 'A Study of Expectations of Secondary School Teachers from the Teachers' College Programmes'[2]. The author recommended

---

2. S.K.Mittal: M.Ed. Dissertation submitted to the University of Udaipur in 1966.

greater emphasis on and the extension of the period of practice teaching programme.

Another study was made by M.K.Kapoor on "An investigation of the impact of Teacher Education Programme on the Teaching Practice of Trained Teachers"[3].

While assessing the impact of teacher education programme on the teaching practice of trained teachers, the author suggested the following which have bearing on the roles of teacher educators:-

(i) Practical training in the preparation and administration of intelligence, ability, personality and achievement tests should be provided;

(ii) Programme of practice teaching should be of longer duration;

(iii) Inservice education programme should be organised to keep the teacher abreast of the new changes and trends in education.

(4) Miss Usha Sundari Jain made a study of "Supervision and Evaluation of Practice Teaching Programme in a Teachers' Training College.[4]

On the basis of the data collected through interviews and questionnaire, the author evolved a comprehensive criteria for evaluating practice teaching programme which the author thinks the teacher educators should use. The criteria include the following points:-

---

3. M.K.Kapoor: "An Investigation into the impacts of Teacher Education Programme on the Teaching Practice of Trained Teachers" M.Ed. Dissertation submitted to the University of Udaipur in 1966.

4. Usha Sundari: "Supervision and Evaluation of Practice Teaching Programme in a Teachers Training College". M.Ed. Dissertation submitted to the University of Rajasthan in 1966.

present in the school for whole school time.

The student teachers take attendance of the classes and ~~rem~~ maintain attendance registers, cumulative records, etc.

The student teachers acquaint themselves with the cultural background of the school children and submit~~s~~ one essay each on one of the activities of the school. These essays become a basis of the study of the school as a social institution.

The student teachers organise trips and excursions.

They prepare achievement tests and administer them.

They give demonstration lessons and discuss the methods of teaching various school subjects with the cooperating teachers.

6. Dr. S.N. Mukerji's article on "Professional Preparation of Teacher Educators and Educational Administration"[6] traces the history of the education of teacher educators and educational administrators. The author points out that the teacher educators are inadequately prepared for their job and emphasises the need for reform. The author also refers to the work done by the N.C.T.E. and the recommendations of the Kothari Commission Report and the Report of the Working Group for preparing a model syllabus for M.Ed.

---

6. Mukerji, S.N.: "Education of Teachers in India Vol. I (ed. S.N. Mukerji) New Delhi: S. Chand & Co. 1968 Pp 40/422.

He would later become a teacher in the training college. He may observe the lecturer concerned at work and assist him in that work; he may assist him in the correction of notes and discuss with him the why and the how of every step; he may participate in the supervision of criticism lessons and practice teaching and learn the tricks of the trade. He may do of direct action research; design project work, lead excursions, etc. He should also be made to teach a few periods in the school every week and observe the teaching of selected teachers with a view to a critical discussion of their work with them after the lesson.

The lecturer in a training college should not only possess up-to-date knowledge of his own field, but he should also be able to put into practice his theoretical knowledge in actual school and class room situations; for instance, lecturers in Psychology are deeply absorbed in the coverage of the syllabus without indicating the practical applications of the theories of pupils growth or reaction. The laws of learning, the curve, the plateau, etc. are all so many isolated fragments of information. All that is attempted is to memorise the material.

[illegible]. Prof. P.K. Roy has made a study on 'Suggestions for a Programme of Practical Training for Pupil Teachers in Secondary Training Colleges'.[8]

---

8. P.K. Roy; Symposium on Teacher Education in India, I.A.T.E., Ambala Cantt. The Indian Publications. 1964.

1. It is worthwhile to examine the usual theory course for the B.Ed./B.T. examinations of Indian universities from the point of view of the actual needs of the teachers in schools.

2. There should be a systematic and comprehensive programme of practical work which should include:-

i) Practice teaching.

ii) Observations of pupils and lessons.

iii) Criticism lessons.

iv) Study of different types and grades of schools.

v) Organisation and participation in co-curricular activities.

vi) Follow up assignments given to school children.

vii) Preparation of case studies.

viii) Construction and administration of scholastic achievement tests.

ix) Blackboard work.

x) Sociometric study of groups in the classroom.

Shri R.D.Rowsam in his article "Revolution in Teacher Education"[14] after discussing the limitations of teacher education in vogue, emphasises the need of a changed teacher education programme and identifies the following main tasks for the college of education:-

1. To exemplify and practice what is advocated.

---

14. R.D.Rowsam: Revolution in Teacher Education, Vol.II, No.3, (April, 1968).

2. To test and demonstrate the best teaching practices, innovations for the elementary and secondary schools of the nation.

3. To re-examine the professional components of teacher education so as to ensure that relevant insights from the social and behavioural sciences are included in professional education courses.

4. To develop laboratory training programmes, utilising the latest technologies and insights and to make preparations programme more effective.

Shri S. Ahluwalia in his paper on "Modernisation in India and the Role of Teacher Education"[15].

After underlying the need and inevitability of the process of modernisation, the author treats teacher education as one of the most significant factors in the process of modernisation. Regarding the roles of the teacher educator in the context of social change and modernisation, the author observes that teacher educators have to play an important role on accelerating the process of modernisation..... through grounding in pedagogical methods, a basic understanding of political, economic, psychological and cultural roles of education in the modernisation process there is need to identify and introduce improved procedures of teacher education and teacher preparation........ An attempt be made to make the syllabus of teacher education science based. At the end the author says:-

---

15. S. Ahluwalia: Modernisation in India and the Role of Teacher Education: A paper read at the First Asian Conference on Teacher Education held at Bangalore between 14th and 19th June, 1971.

Research Assistants

1. Panna Lal Varma
2. S.K.Gangopadhyaya